Download PDF file from http://is.gd/varniji

सहजानंद शास्त्रमाला

प्रवचनसार प्रवचन

भाग 6

रचयिता

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री

पूज्य श्री क्षु० मनोहरजी वर्णी "सहजानन्द" महाराज

प्रकाशक

श्री सहजानंद शास्त्रमाला, मेरठ

एवं

श्री माणकचंद हीरालाल दिगम्बर जैन पारमार्थिक न्यास

गांधीनगर, इन्दौर

Online Version : 001

Download PDF file from http://is.gd/varniji

आत्म-कीर्तन

शान्तमूर्ति न्यायतीर्थ पूज्य श्री मनोहर जी वर्णी "सहजानन्द" महाराज
द्वारा रचित

हूँ स्वतन्त्र निश्चल निष्काम । ज्ञाता द्रष्टा आतमराम ।।टेक।।

[१]

मैं वह हूं जो हैं भगवान, जो मैं हूं वह हैं भगवान ।
अन्तर यही ऊपरी जान, वे विराग यहँ राग वितान ।।

[२]

मम स्वरूप है सिद्ध समान, अमित शक्ति सुख ज्ञान निधान ।
किन्तु आशावश खोया ज्ञान, बना भिखारी निपट अजान ।।

[३]

सुख दुख दाता कोई न आन, मोह राग रुष दुख की खान ।
निजको निज परको पर जान, फिर दुखका नहिं लेश निदान ।।

[४]

जिन शिव ईश्वर ब्रह्मा राम, विष्णु बुद्ध हरि जिसके नाम ।
राग त्यागि पहुँचू निजधाम, आकुलताका फिर क्या काम ।।

[५]

होता स्वयं जगत परिणाम, मैं जगका करता क्या काम ।
दूर हटो परकृत परिणाम, 'सहजानन्द' रहूँ अभिराम ।।

—:०:—

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

आत्मा मन्दिर

सहजानन्द शास्त्रमाला

प्रवचनसार-प्रवचन षष्ठ भाग

[प्रवक्ता—पूज्य श्री १०५ क्षु० मनोहर जी वर्णी सहजानन्द महाराज]

दव्वट्ठियेण सव्वं तं दव्व पज्जयट्ठियेण पुणो ।
हवदि य अण्णमणण्णं तक्कालं तम्मयत्तादो ॥ ११४॥

इस आत्माका शरण वस्तु-स्वरूपका सम्यक् ज्ञान है। इसलिए मनोयोग सम्भाल करके कल्याणार्थी पुरुषको वस्तु-स्वरूपका सम्यक् ज्ञान कर लेना चाहिए। वस्तु-स्वरूपके जाननेकी दो मुख्य दृष्टियाँ हैं। एक तो सामान्यदृष्टि और दूसरी विशेषदृष्टि। न केवल समान्य दृष्टिसे वस्तुका पूरा ज्ञान होता है और न केवल विशेष दृष्टिसे वस्तुका पूरा ज्ञान होता है, क्योंकि वस्तु सामान्यविशेषात्मक है; द्रव्यपर्यायात्मक है। जैसे यहाँ किसी चीजका निर्णय करना है तो उसमें भी याने लोकव्यवहारके पदार्थमें भी सामान्य-विशेषात्मक बात रहती है।

सामान्य विशेष बतानेके लिये मनुष्यका दृष्टान्त—देखो भैया ! ये सब जो मनुष्य बैठे हैं इन सब मनुष्योंको केवल मनुष्यकी दृष्टिसे देखो तो शुद्ध मनुष्यकी परख सामान्य दृष्टिसे मिलती है और इन्हीं मनुष्योंको प्रयोजनवश बिशेष-विशेष दृष्टिसे देखो तो यदि कुछ लेन देनका काम है तो साहूकार इनमें से छांटे जाते हैं। कुछ से शारीरिक काम करानेका भाव है तो जो पहलवान से हैं, जो कामको मना नहीं कर सकते, ऐसे आदमी छांटे जाते हैं। कोई व्याख्यान कविता कराना हो तो पढ़े लिखे सुशिक्षित, बोल सकने लायक मनुष्यको छाँटते हैं। इस तरह कई दृष्टियोंसे मनुष्यकी छाँट होने लगती है। तब कहते हैं कि यह साहूकार हैं यह पण्डितजी हैं, यह स्वयंसेवक हैं इत्यादि। देखलो, अब विशेष दृष्टि करनेसे इनमें नाना विशेषताएँ नजर आने लगती हैं।

सामान्य विना विशेषका अभाव—सामान्यको तोड़ दो, अलग कर दो, अर्थात् वह मनुष्य सामान्य ही न रहे तो पण्डितपना, साहूकारपना कहाँ विराजेगा ? सामान्य तो होना ही चाहिए तब तो पण्डितजी बनें या अन्य-अन्य कहलाएँ। अन्य-अन्य साहूकार आदि न हों और सामान्य भर मानें तो यह क्या बन जायगा ? और कुछ भी न होवे, न पण्डितजी हों, न साहूकार हों, न गरीब हों, न त्यागी हों, न गृहस्थ हों, न कमजोर

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

हैं, न बलवान हों; कुछ भी दशा नहीं हो, ऐसा भी कोई मनुष्य है क्या ? नहीं, नहीं। उनमें से जब मात्र मनुष्यत्वकी दृष्टिसे देखा जाय तो सामान्य नजर आयगा और जब अर्थक्रियाकारिताकी दृष्टिसे देखा जाय तो विशेष नजर आयगा। इसी प्रकार प्रत्येक पदार्थ सामान्यविशेषात्मक है।

जीवोंकी परख करो, सब जीव एक हैं या भिन्न ? यहाँ भी सामान्य दृष्टिसे देखा तो जीवोंमें जो सामान्य तत्त्व है वही ज्ञानमें आया। जो सबमें बिना कुछ अन्तरके, बिना कुछ विलक्षणताके पूर्णरूपेण एक बात हो, वही सामान्य तत्त्व है। ऐसा सामान्य तत्त्व एक चैतन्य स्वभाव है। चैतन्य स्वभाव ज्ञेय तत्त्व है। वह जाना जा सकता है, किन्तु चैतन्य स्वभावका वर्णन किया जायगा तो विशेषताओंको लगाकर किया जा सकता है। हम चैतन्य स्वभावका जैसा कि वह स्वयं है, उसी रूपमें उपस्थित करना चाहें तो हम उसी रूपमें उपस्थित नहीं कर सकते। उसकी जानकारीके लिए विशेषताएँ बतानी होंगी। उन विशेषताओंको जानकर अपने आपमें यह निर्णय करलें कि इन सब विशेषताओंमें जो समान्यरूपसे है, शक्तिरूपसे है, ध्रुव है, वह सामान्य है।

विशेषके बिना सामान्य नहीं—जैसे सब मनुष्योंमें हम मनुष्य सामान्यको बनाना चाहें, मनुष्य सामान्य जैसा यथार्थ है उस ही रूपमें आपको दिखाना चाहें तो न दिखा सकेंगे, पर इनकी विशेषताएँ बताकर फिर यह सुझाव दें, कि इन सब विशेषताओंका जो आधार है, जो इन सब विशेषोंमें सामान्यरूपमें रहता है वह मनुष्य कहलाता है। जैसे ये बच्चे हैं और वे बढ़कर बड़े हुए तो अब जवान है और बड़े हुए तो बूढ़े हुए। देखो जो मनुष्य बच्चा था वही मनुष्य जवान हुआ; जो मनुष्य जवान हुआ वही मनुष्य बूढ़ा हुआ। तो देखो उस बच्चेकी दशा में, जवानीमें और बुढ़ापे में, इन सब दशाओंमें जो एक रहा, उन सब दशाओंका जो आधार रहा वही शुद्ध मनुष्य है। इस तरहसे बतला कर उपयोगको सामान्य तक पहुँचाया जा सकेगा। किन्तु मनुष्य सामान्यको जैसा वह सामान्य है, वस्तुरूपमें उपस्थित करना चाहें, बताना चाहें तो न बता सकेंगे।

भैया ! शकल रहित कोई मनुष्य आपने देखा हो तो बतला दो ? ऐसी ही बात सर्वत्र है। सामान्यका किसी दूसरेको बोध करना चाहें तो कुछ विशेष बातें कहीं जाँयगी। उन विशेष बातोंको सुनाकर फिर सामान्यका निर्णय सामान्यदृष्टि करके कर सकते हैं। वैसे तो देखो भैया ! किसी भी वस्तुका शुद्ध याने विशेष्य रूप नाम ही नहीं है। सारे शब्द विशेषण हो रहे हैं। एक जीवका भी कोई ऐसा नाम नहीं है जिससे हम सीधा जान सकें कि वह स्वयं क्या पदार्थ है, सामान्य क्या है ? ऐसा कोई शब्द नहीं है जिसे बोलकर हम सामान्य रूपसे जीव जैसा है वैसा ही सीधा कह सकें।

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

किन्हीं किन्हीं विशेषण शब्दोंका ही नामशब्द बन जाना—देखो जीवके अनेक नाम हैं। जीव, आत्मा, चैतन्य, प्राणी, ज्ञाता, ज्ञायक आदि अनेक नाम हैं मगर वे सबके सब जीवोंकी विशेषताका वर्णन करने वाले हैं। जीवका जो सामान्य रूप है उसका बताने वाला कोई शब्द ही नहीं है। जीवका अर्थ यह है कि जो प्राणोंको ले करके जीवे और परमार्थ दर्शनमें चले-तो जो ज्ञान दर्शन प्राण करि जीवे उसे जीव कहते हैं। जीवके इस अर्थमें विशेष ग्रहण किया गया या सामान्य ? विशेष ही ग्रहण किया गया।

आत्माका शब्दार्थ—आत्माका क्या अर्थ है ? "अतति सततं जानाति इति आत्मा" जो निरन्तर जानता रहता है उसे आत्मा कहते हैं। जानता रहता है ऐसी बात कहनेमें विशेषतत्त्व आया या सामान्यतत्त्व आया ? विशेष आया। प्राणी वह है जो प्राण धारण करें, इसमें साफ स्पष्ट ही विशेष आ गया। इस आत्माको ज्ञाता कहा जाय, जाननहांर कहा जाय तो यह भी विशेष है। ऐसे गुणोंको, इसकी विशेषता को इन शब्दोंने बता दिया। कोई शब्द ऐसा नहीं है जो वस्तुका असली नाम बता दे। वह शब्द तो कुछ विशेषता करके अर्थ बताता है सो विशेषण बन गया। वस्तुका सीधा नाम बताने वाला कोई शब्द नहीं है। अच्छा, यहीं की चीजोंका नाम बतल वो जो सिर्फ नाम हो, उसकी विशेषता बतलाने वाला न हो।

शब्दोंकी विशेषता—आप कहेंगे, लो बतला दिया यह चौकी है। चौकी तो नाम नहीं है। चौकी उसे कहते हैं जिसमें चार कोने हों। आप कहेंगे यह है चटाई। चटाई नाम नहीं है, इसे कहेंगे चट आई याने यों पकड़ी और चट आई, तो लो हो गयी यह चटाई। किसी वस्तुका सीधा नाम बताने वाला कोई शब्द ही नहीं हैं। आप कहेंगें किवार 'कि' माने किसीको 'वार' माने 'रोकना' अर्थात् किसीको भी रोकना। कुत्ता, बिल्ली इत्यादिको रोकनेका जो काम करे उसे किवार कह दिया। आप कहेंगे भींट, तो भी के मायने भींच करके, ईंट के माने ईंट, अर्थात भींचकर ईंट रख दिया उसीको भींट कह दिया। सारे शब्द वस्तुकी विशेषता बतलाने वाले हैं। आप कहेंगे दूकान, तो सुनो जिसमें दो कानोंका काम पड़े उसको दूकान कहते हैं। एक ग्राहकका कान और दूसरा वस्तु बेचने वालेका कान। आप कहेंगे मकान। म के माने मत और कानके माने कान, अर्थात जिसमें दूसरेका कान न जाय सो मकान। कौनसा शब्द ऐसा है जो वस्तुका नाम बतला सके। भैया ! सब शब्द वस्तुकी विशेषता बतानेवाले हैं। उन ही शब्दोंके सहारे सामान्य दृष्टि बनाकर सामान्य तत्त्व निरख लिया जाता है। तब जीवोंके जाननेमें भी ये दो दृष्टियाँ काम करेंगी। एक सामान्यदृष्टि और दूसरी विशेषदृष्टि। सामान्यदृष्टिका नाम है द्रव्यार्थिकनय और विशेषदृष्टिका नाम है

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

पर्यायार्थिकनय। जिसका केवल शुद्ध द्रव्य स्वरूप निरखनेका प्रयोजन हो, उसे द्रव्यार्थिकनय कहते हैं। जिस दृष्टिका प्रयोजन पर्यायभेद, विशेषता दिखानेका हो उसे पर्यायार्थिकनय कहते हैं।

जुदे-जुदे नेत्रोंसे देखनेपर फूट निकलनेवाला विविध परिणाम—चूँकि समस्त वस्तुयें सामान्यविशेषस्वरूप हैं इस कारण वस्तुका स्वरूप देखनेवाला, समझनेवाला जो महापुरुष है, समझनेके लिये उसकी क्रमसे दो आँखें काम करती हैं। यहाँ आँख का मतलब चमड़ेकी आँखसे नहीं, ज्ञानकी आँखसे है। ज्ञान की दो आँखें होती हैं। एक द्रव्यार्थिकनय नेत्र जो वस्तुके सामान्य तत्त्वका अवगम करता है और दूसरा पर्यायार्थिकनय नेत्र जो वस्तुके विशेषका अवगम करता है। यही दो दृष्टियाँ होती हैं; इन दोनों दृष्टियोंमें से जब हम पर्यायार्थिक दृष्टिको बन्द करलें और द्रव्यार्थिक नेत्रको खोल लें तो वहाँ केवल शुद्ध चैतन्य स्वभाव प्रतीत होता है और इस दृष्टिमें समस्त जीवलोक एक जीव द्रव्य मालूम होता है। इस ही दृष्टिसे परमार्थ ब्रह्मस्वरूप जाना जाता है।

जैसे रोजगार बहुत तरह के हैं, पर जो सरल रोजगार हैं उनमें आमदनी कम है और जो दुस्तर रोजगार है उनमें अधिक आय हो सकती है। सो अधिक आयकी चाह करने वाले उसमें घबड़ाते नहीं हैं। किन्तु व्यापारके करनेमें हिम्मत बढ़ाये चले जाते हैं। इसी तरह इस ज्ञानकी भी ऐसी ही बात है। जो मजा देनेवाला ज्ञान है, मौज उड़ानेवाला ज्ञान है, किस्सा कहानियोंवाला अथवा दिल बहलानेवाला ज्ञान है उससे लाभ इतना ही रह जाता है कि उस समय कल्पनानुकूल मन प्रसन्न हो गया, दिल खुश हो गया। बड़ा अच्छा संगीत हुआ, बड़ा अच्छा गानतान हुआ, बहुत अच्छी हँसीकी बात कही उससे दिल खुश हो गया, यहीं तक ही बात रहेगी, पर जो तात्त्विक ज्ञान है उसका उपार्जन करना कठिन है। उसकी बात यदि बड़े उपयोगसे सुनें तो ग्रहणमें रहती है। जरा भी उपयोग तितर-वितर किया वहाँ तात्त्विक वातावरण गन्दा हो गया। अब उस तात्त्विक उपयोगको ग्रहण करना कठिन हो गया।

तत्त्वज्ञानकी शरण गहनेका फल शाश्वत आनन्द—यह तात्त्विक ज्ञान ऐसा लाभकारी है कि यदि यह समझमें आ जाय, अनुभवमें आ जाय तो बेड़ा पार हो जाय, संसारके दुःखोंसे सदाके लिए छूट जाय। इस जीवको इन झूँठे गन्दे विचारोंने पागल बना दिया है, चंचल बना दिया है, मायाकी ओर झुकने वाला बना दिया है, सत्यानन्दसे दूर कर दिया है। विषय प्रसंग, विषयके साधन, ये सब जीवके पतनके साधन हैं। पतनके साधनकी ओर जाते हुए तुम्हें सरलता मालूम हो रही है और ज्ञानका उपयोग बना रहे यह बात कठिन मालूम हो रही है। पर भाई! यह रफ्तार तो अनादिसे

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

चली आ रही है, रागद्वेष, मोह आदि चिपटे हुए चले आ रहे हैं तो बताओ फिर उद्धार कैसे किस भवमें किया जायगा। स्त्री, पुत्र इत्यादिसे मोह करते हुए ही जीवन बिताना है तो सूकर, गधा, कुत्ता बनकर भी तो यह काम पूरा किया जा सकता है। विषय भोगोंका भोगना ही जीवनमें सार है तो कुत्ता, गधा, घोड़ा, सूकर इत्यादि बनकर भी तो भोगा जा सकता है। ऐसा उत्तम मनुष्य भव पाकर क्या लाभ उठाया ? सोचो तो सही कि यह जीव कितना अंधेरेमें है, मोहमें है। अनेक शास्त्रोंमें गुरुदेवोंने इतनी हितकी बातें लिख दीं कि जिन्हें हम अपने आप उपार्जन करके पाना चाहें तो बड़ी कठिन तपस्यासे अन्तरंग ज्ञानमें जुटनेका महान संयम करें, तब कहीं उन बातोंका पता पड़ सकता है।

आचार्य देवने हितकी बातोंको स्पष्ट ग्रन्थमें लिख दिया, किन्तु हम ऐसे कुपूत बन गए कि सामने पड़ी हुई निधिको भी हम उठाना नहीं चाहते। अर्थात् ग्रन्थोंमें स्पष्ट रूपसे अमृत तत्त्व भरा है, फिर भी हम उसे पीना नहीं चाहते। भैया, कोई पुरुष दुःखी, भूखा आलसी हो, जिसके सामने अनेक व्यंजनोंसे पूर्ण थाल रख भी दिया जावे, फिर भी वह इतना आलस्य करे कि खानेकी इच्छा न करे, मुखमें हाथसे उठाकर रखना भी पसन्द न करे तो इसे बेवकूफी कहोगे या बुद्धिमानी। कोई यह कह दे कि अच्छा, हम हाथसे उठाकर तुम्हारे मुँहमें धरे देते हैं और फिर भी वह यह कहे कि ग्रास चबानेमें आलस्य है तो इससे बढ़कर और क्या बेवकूफी हो सकती है। ग्रन्थोंमें स्पष्ट आचार्य देवने सब लिख दिया है किन्तु उनका स्वाध्याय न किया, गप्पोंमें ही समय बिता दिया तो क्या आप समझते हैं कि यह बुद्धिमानी है ? नहीं, अविवेक है।

दो आँखोंके द्वारा चार प्रकारका दर्शन—यहाँ आचार्य देव वस्तुस्वरूपको सर्वतोमुखी व्यक्त कर रहे है, वस्तुके स्वरूपको समझनेके लिए द्रव्यार्थिक दृष्टि और पर्यायार्थिक दृष्टिकी मुख्यता व गौणता कराकर ज्ञानमें उद्यम करा रहे है। देखो—भैया जैसे मनुष्यकी दो आँखें है, सो बायीं आँख बंद करके दायीं आंखसे देखें तो देखा जा सकता है, दायीं आँख बंद करके बायीं आँखसे देखें तो देखा जा सकता और दोनों दृष्टियोंको एक साथ पसार कर देखें तो देखा जा सकता है तथा दोनों आँखोंको बंद करके भीतरमें कुछ देखना चाहें तो भी कुछ देखा जा सकता है। देखनेकी पद्धति चार हैं। इसी तरहसे चेतनके कार्य होनेकी विधियाँ भी चार हैं। द्रव्यार्थिक नयके नेत्रसे देखो अथवा पर्यायार्थिक नयके नेत्रोंसे देखो-ये हैं नय, अथवा दोनोंका आश्रय करके देखो, यह है प्रमाण, अथवा नय और प्रमाण इन सबको गौण करके मात्र अनुभव करो। इस तरह चार बातें है। द्रव्यार्थिक नयसे सामान्यतत्त्वका ज्ञान होता है, पर्यायार्थिक नयसे विशेषका ज्ञान होता है तथा दोनोंके प्रमाणसे प्रमेय ज्ञात होता

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

है और इन सबको गौण करके परम विश्राममें रह जाय तो आत्माके स्वयं सर्वस्व का अनुभव जगता है।

यहाँ दोनों नयोंकी बात चल रही है। द्रव्यार्थिकनय कहते हैं उसे, जो सामान्यको विषय करे और पर्यायार्थिक नय कहते है उसे, जो विशेषको विषय करे। ये दर्शनशास्त्रकी तात्त्विक बातें चल रही हैं। भैया, समझमें नहीं आता हो तो इतना ही विश्वास रखो कि वस्तुस्वरूपके समझनेकी पद्धति जैन दर्शनमें अनौखी है, ऊँची है। कुछ तो ज्ञान हो ही रहा होगा। उन दोनों दृष्टियोंमें से जब पर्यायार्थिक नय नेत्रको गौण कर दिया अर्थात् वर्तमान उपयोगमें बिल्कुल बंद कर दिया, उसकी दृष्टि ही न रक्खी और केवल द्रव्यार्थिक नयके नेत्रको ही उघाड़ा, द्रव्यार्थिक नय नेत्रकी दृष्टि ही रक्खी तो उसमें इस संसारके समस्त जीवोंमें जोकि कोई नारकी है, कोई तिर्यञ्च हैं, कोई मनुष्य हैं और कोई देव हैं तथा संसारसे परे जो पवित्र मुक्त आत्मा हैं इन ५ प्रकारके समस्त जीवोंमें इन ५ प्रकारकी समस्त परिणतियोंमें, इन सब विशेषताओंमें रहने वाला जो जीव सामान्य है वही देखा जाता है। भैया? वस्तु सामान्य विशेषात्मक होती हैं। जैसे मनुष्य सामान्य और सेठ, दरिद्र, राजा, प्रजा, रंक, पंडित, मोही इत्यादि विशेष हैं। तो इसमें जब सामान्यको निरखें तो मनुष्य-मनुष्य में कोई भेद नजर नहीं आता है और जब विशेषको निरखें तो उसमें परस्पर भेद नजर आता है। इसी तरह जब जीवसामान्यको देखते हैं तो निगोदसे लेकर सिद्ध-पर्यन्त तक सब प्रकारके जीवोंमें कुछ भी अन्तर नहीं नजर आता, एक चेतन सामान्य ही उसके उपयोगमें रहता है। इस दृष्टिमें जीवसामान्य एक देखा जाता है सो जीव सामान्य जिन पुरुषोंने देखा उनको उस समय विशेषका अवलोकन नहीं हुआ। वह वहाँ विशेष, भेद, पर्याय या गुण में दृष्टि नहीं डालता।

ऐसे ज्ञानी पुरुषोंको यह समस्त जीव लोक एक जीव द्रव्य ही प्रतिभात होता है। जैसे यहाँ बहुतसे बैठे हुए मनुष्योंको यदि जातिका कुलका, धनी निर्धनीपने का, ज्ञानी अज्ञानीका कोई भेद न रक्खा जाय तो सारे मनुष्य एकसे ही नजर आते हैं। उनमें अन्तर नहीं नजर आता है।

दृष्टिका प्रताप—भैया, सामान्य दृष्टि या विशेष दृष्टि करनेसे अब देखलो क्या फल मिलता है। जब सब मनुष्यको एक मनुष्यके निगाहसे ही देखा ये उस समय यों सामान्य मनुष्य देखने वालोंको कोई आकुलता नहीं रहती और जहां विशेष विशेष भेद देखे गये वहां पर आकुलताएँ हो जाती हैं। किसीको देखा यह बड़े सेठ हैं, यों विशेष देखने वाला उनके सम्मानका यत्न करेगा, अपनेको हीन देखेगा और उसको दूसरोंसे भी बड़ा निरखेगा, अपनेमें क्षोभ उत्पन्न कर लेगा और स्वार्थवश

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

कुछ चापलूसी सी भी करेगा। सारा कष्ट करना पड़ेगा उसे, क्योंकि उसने विशेष देख लिया। इतना ही नहीं, उसने विशेषकी रुचि भी करली। सामान्यको ही निरखे तो वहां कोई क्लेश नहीं है। बड़े योगीजन आध्यात्मिक पुरुष करते क्या हैं? यही कोशिश करते हैं कि हमारी कुछ चैतन्य स्वभावमें ही दृष्टि जाय, इसी यत्नके रखने वालेको ही आध्यात्मिक योगी कहते हैं। इसका कारण यह नहीं है कि द्रव्यमें पर्याय नहीं है। द्रव्य पर्यायशून्य होता ही नहीं है। पर्याय नहीं होगा तो द्रव्यका भी अभाव होगा। जैसे किसी शक्लके बिना कोई मनुष्य नहीं होता है। मनुष्यकी तो कुछ न कुछ शक्ल भी होती है, चाहे वह लम्बी शक्ल हो, चाहे गोल हो, चाहे बेढब चेहरा हो, किसी भी शक्लका होगा तो वह विशेष चीज है और मनुष्यपना सामान्य चीज है। वह मनुष्य क्या जिसमें शक्ल बिल्कुल कुछ न हो। इसी तरह पर्यायके बिना द्रव्य कुछ नहीं है। पदार्थ है तो उसका कोई न कोई परिणमन अवश्य है और होता रहेगा। पर्याय हैं, वे रहें, यहां तो दृष्टिका प्रताप कह रहा हूँ। उस पर्यायमें यदि द्रव्यदृष्टि करलो, यही स्वभाव है, यही सर्वस्व है, ऐसा विशेष दृष्टिमें करलो तो वह मोह है और उसका फल संसारमें रुलना है। भैया! यह बात ठीक है ना, और कोई द्रव्यदृष्टिका एकान्त करले कि जिसको परिणमन ही नहीं है, केवल एक चैतन्य है, ब्रह्म है, सर्वव्यापक है, परिणति उसकी होती ही नहीं है ऐसा एकान्त द्रव्यस्वरूप मात्र माना जाय तो वहाँ कुछ ग्रहणमें ही नहीं आता, केवल कल्पनाओंमें ही बन्धन रहता है। इससे द्रव्य पर्यायात्मक वस्तुका ज्ञान होनेपर ही सम्यग्ज्ञान जग सकता है।

सो सम्यग्ज्ञान जगा कर भी जब तक इस प्रकारके लोकका संग रहता है और अनेक तर्क-वितर्कोंमें ही फंसा रहता है उपयोग, ऐसा ही चंचल चल रहा है मन, इस पर्यायसे इस विशेषका भारी संग बन रहा है, तब तक ऐसी स्थितिमें तुम्हारे भीतर यह प्रयत्न बनना चाहिए कि कभी-कभी इन विशेषोंको गौण करके इस एक जीवत्व सामान्य अमृत तत्त्वका पान किया करें। हां, जो जीव वीतरागी है विश्वका ज्ञाता द्रष्टा है उसको विशेषदृष्टि गौण करके सामान्यदृष्टिकी मुख्यता करनेका यत्न नहीं करना पड़ता है। वह तो सब प्रकारके विकल्पोंसे परे है, मात्र ज्ञाता द्रष्टा है। पर जिसकी ज्ञाता द्रष्टा बने रहनेकी स्थिति नहीं है उसको तो यह यत्न करनेकी आवश्यकता ही है और इस यत्नसे उसे लाभ ही है।

द्रव्यार्थिक नेत्र द्वारा दर्शन—भैया! जब पर्यायार्थिकनय नेत्र बन्द करके द्रव्यार्थिकनय नेत्रसे देखा जाय तो जीव सामान्य स्वरूप नजर आता है। और इस नजरसे सर्व जीव एक जीव द्रव्य ही प्रतिभात होता है। चूंकि यह दृष्टि स्वहितके बड़े कामकी है, इस कारण इसका ही एकान्त करके कोई अभेद अद्वैतका दर्शन मान लेते हैं

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

तो वह अधूरी ही बात है, क्योंकि पर्यायशून्य केवल द्रव्यकी बात करना कल्पनाएं करना ही मात्र है। वहां वस्तु या चीज नहीं बन पाती है। यह है द्रव्यार्थिकनय की दृष्टिकी बात।

पर्यायार्थिक नेत्र द्वारा दर्शन— अब आगे चल कर देखो कि जब द्रव्यार्थिकनय का नेत्र बन्द कर लिया जाय और पर्यायार्थिकनयके नेत्रसे देखें तो वहां जीव द्रव्यमें रहनेवाले नरक, तिर्यंच, मनुष्य, देव, सिद्ध ये पर्याय नजर आते हैं, पर्यायात्मक विशेष ही नजर आते हैं सो उन विशेषोंको जो लोग देखते हैं वे सामान्यको नहीं देख रहे हैं। ऐसी दृष्टिमें ये भिन्न-भिन्न जीव नजर आ रहे हैं। ये जीव अन्य हैं, ये जीव अन्य हैं, ये जीव अन्य हैं। यह तिर्यक् सामान्यके मुकाबिलेमें तिर्यक् विशेषकी अपेक्षा बात कही गयी है।

सामान्य तत्त्वके दर्शन की दो पद्धतियां—सामान्य तत्त्व देखनेके दो तरीके हैं। जैसे एक मनुष्यसामान्यको देखना है तो एक तो यों देखा जा सकता है कि उन सब मनुष्योंको विशेषकी दृष्टि गौण करके एक सामान्यमनुष्यत्वकी दृष्टिसे निहारना और एक यों देखा जा सकता है कि एक ही मनुष्यको देखे, वह बालक हो, जवान हो, या बुड्ढा हो इन सब अवस्थाओंमें रहनेवाला जो एक है उसको देखे, वह सामान्य मनुष्य है। इसे कहते हैं ऊर्द्ध्वता सामान्य और सब मनुष्योंको मनुष्यसामान्य देखना इसे कहते हैं तिर्यक् सामान्य। एक ही वस्तुकी सब अवस्थाओंमें उसको एक वस्तुसामान्य देखना ऊर्द्ध्वता सामान्य कहलाता है। यह दर्शनशास्त्रकी पद्धति है, जिसके द्वारा हम वस्तुका स्पष्ट लक्षण समझ पाते हैं। सो अब ऊर्द्ध्वता सामान्यकी अपेक्षा नजर करें तो एक ही जीवमें अनादि अनन्त जो स्वरूप है, वह स्वरूप द्रव्यार्थिकनयसे देखा जाता है और एक ही जीवकी समय-समयकी होने वाली जो हालत है वह सब परिणतिविशेष पर्यायार्थिकनयसे देखा जाता है।

जो कर्ता वही भोक्ता, कर्ता अन्य भोक्ता अन्य—अब देखलो इन दृष्टियोंके एकान्त करनेका फल, जिन्होंने सामान्यका ही एकान्त किया उनकी निगाहमें एक ब्रह्मवाद ही नजर आया और जिन्होंने पर्यायार्थिकनयका एकान्त किया उनके यहां क्षण-क्षणमें अन्य-अन्य जीव होते नजर आये। इसे कहते हैं बौद्ध दर्शन और उसे कहते हैं वेदान्त दर्शन। यहाँ सामान्य एकान्त व विशेष एकान्त के, भेद और अभेद एकान्तके दर्शन हुए। किन्तु जैनदर्शनमें ये दोनों ही दर्शन हैं।

द्रव्यार्थिकनय दृष्टिसे तो यह सब एक जीव द्रव्य दीखा और पर्यायार्थिकनय दृष्टि से वे सब भिन्न-भिन्न जीव दीखे। यदि यह पूछा जाय कि बतलावो जो करता है वही भोगता है या कोई दूसरा भोगता है। यह प्रश्न सामने रक्खा। क्या उत्तर दोगे? एक

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

दृष्टिमें यह उत्तर आएगा कि जो करता है वही भोगता है, कोई दूसरा नहीं भोगता है, जिस जीवने किया उस जीवने भोगा। एक जीवके करनेका फल दूसरा जीव कैसे भोग सकता हैं। जिसने किया उसने ही भोगा यह उत्तर आया है। यह भी उत्तर सही हो सकता है कि जो करता है वह नहीं भोगता है। मनुष्यने तो तप किया, व्रत पाला, दान किया, परोपकार किया और उसका फल किसने भोगा ? यह मनुष्य देव बन कर भोगेगा ना। तो किसने भोगा ? क्या मनुष्यने भोगा ? नहीं, देवने मजा लिया, यह भी सही है। ये दोनों ही उत्तर सही हैं। जब द्रव्यार्थिकनय दृष्टिसे उत्तर सोचो तो यह आता है कि जो करता है वही भोगता है पर जब पर्यायार्थिक नयकी ओर दृष्टि दें तो उत्तर होगा कि करने वाला और है व भोगने वाला और है। किया तो मनुष्यने और भोगा देवने। तो ये दोनों ही उत्तर ठीक हैं। कोई कहे कि सही बात तो बताओ, तो कहोगे कि सही बात तो यह भी है और यह भी है। दृष्टिकी बात है सब।

द्रव्यार्थिक व पर्यायार्थिकका व्यापी अर्थ—इससे आगे और समस्याओंको सुलझावो तो द्रव्यार्थिकनयका नाम है अभेद दृष्टि और पर्यायर्थिकनयका नाम है भेद दृष्टि। अभेद दृष्टिमें अभेद नजर आता है और भेद दृष्टिमें भेद नजर आता है। जैसे किसीने पूछा कि भाई ! बतलाओ जीव नित्य है कि अनित्य ? नित्यका अर्थ है सदा रहनेवाला और अनित्यका अर्थ है होनेवाला और मिटनेवाला। बतलावो कि जीव नित्य है या अनित्य है? इसके समाधानमें दोनों उत्तर आयेंगे। जीव नित्य है और अनित्य भी है। जब अभेद दृष्टिसे देखें तो जीव वही है अनादि अनन्त और भेद दृष्टिसे देखें तो जैसा जीव सुबह था वैसा दोपहरमें नहीं रहा। सुबह तो शान्त था और भगवानका नाम ले रहा था मगर अब भूख-प्यासकी कल्पनामें अधीर बैठा है। जो सुबह पर्याय था वह अब नहीं रहा। भेददृष्टिसे, पर्यायदृष्टिसे क्षण-क्षणमें उत्पाद व्यय करनेवाला है। इसलिये जीव नित्य है और अनित्य भी है। जीव एक है कि अनेक हैं ? क्या उत्तर होगा ? दोनों उत्तर होंगे। अभेददृष्टिसे देखो तो जीव एक नजर आता है और भेददृष्टिसे देखो तो जीव अनेक नजर आवेंगे।

इसी प्रकार जितने भी प्रश्न किये जायें उत्तर देनेके लिए भेददृष्टि और अभेददृष्टि दोनोंका आश्रय किया जायगा। और इसीके अनुसार उत्तर आता है। जैसे एक मनुष्यके विषयमें पूछे कि यह कौन है तो कहा जाता है कि फलानेका पिता है तो यह तो उत्तर ठीक है और यदि यह कहा जाय कि यह फलानेका पुत्र है तो यह भी उत्तर सही है। यह अपेक्षाकी बात कही जाती है। अपेक्षा पहले दिमागमें आती है और पीछे बतलायी जाती है बात। तो पदार्थोंका उत्तर अपेक्षासे आता है।

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

इसलिये अपेक्षा लगाकर उनका ज्ञान करना चाहिये। इससे ही सम्यग्ज्ञान होगा। सम्यग्ज्ञानसे ही शुद्ध दृष्टि जगेगी और उस शुद्ध दृष्टिसे ही इस जीवका कल्याण होगा।

जीव स्वरूपकी अपेक्षा एक व अर्थक्रियाकी अपेक्षा अनेक—भैया! जितने भी पदार्थ होते हैं वे निरन्तर परिणमन करते हैं। सो यही निश्चय कीजिये कि पदार्थ तो हमेशा रहते हैं उनकी दशा बदलती रहती है। आज कुछ दशा है कल कुछ दशा है, ऐसी प्रतिसमय उनकी अवस्था बदलती रहती है, किन्तु है प्रत्येक वस्तु वही का वही। अब उसमें द्रव्यको देखो तो वह एक है और जब पर्यायको देखो तब वह भिन्न-भिन्न है; आज कुछ है कल कुछ है। जब जीवको द्रव्यार्थिकनय-दृष्टिसे देखो तो वह एक द्रव्य ही मालूम होता है और जब पर्यायार्थिकनयदृष्टिसे देखो तब वह भिन्न-भिन्न मालूम होता है। जैसे एक तुम ही जीव हो, आज मनुष्य हो, पहिले और कुछ थे, आगे और कुछ होगे; तो वह भिन्न-भिन्न हो गया। पर्यायार्थिकनयदृष्टिसे देखो तब वे भिन्न-भिन्न चीजें हैं। यहाँ कोई प्रश्न कर सकता है कि पर्याय भिन्न-भिन्न होती या द्रव्य? द्रव्य तो भिन्न-भिन्न नहीं होता। जैसे यही जीव द्रव्यसे तो एक है पर पर्यायसे अनेक है। तो पर्याय अनेक हैं कि जीव अनेक हैं। अगर कहें कि पर्याय अनेक हैं, जीव अनेक नहीं हैं तो जीवमें फिर यह नहीं घटा कि जीव अनेक हैं। उसका उत्तर श्री अमृतचन्द्र आचार्य यह दे रहे हैं कि जो द्रव्य होता है और उस द्रव्यके पर्याय होते हैं सो पर्यायके समयमें वह द्रव्य पर्यायसे कुछ जुदा नहीं होता, वह पर्यायसे तन्मय है। पर्यायात्मक जो विशेष होते हैं, उन उन विशेषोंमें द्रव्य तन्मय है। जीवकी जो पर्यायें हैं, उन पर्यायोंसे जीव पर्यायके समयमें तन्मय है। इसी बातको प्रवचनसारमें भी कहा है कि "परिणमदि जेण दव्वं तक्कालं तम्मयत्ति पण्णत्तं।"

द्रव्यकी पर्यायकालमें पर्यायसे तन्मयता—द्रव्य जिस रूपसे परिणमता है उस कालमें वह द्रव्य तन्मय हो जाता है। जब जो पर्याय व्यक्त है, उस पर्यायमें द्रव्य तन्मय है। जिस समय जो पर्याय है उस समय द्रव्य उससे तन्मय है। अतः जब पर्यायको देखा कि भिन्न-भिन्न है और पर्यायसे द्रव्य है तन्मय, सो पर्यायकी मुख्यतासे यदि द्रव्यको देखा जायगा तो वह पदार्थ भी भिन्न-भिन्न कहा जायगा, क्योंकि उस वस्तुको पर्यायकी मुख्यतासे देखा है। सो यह नहीं कहा जायगा कि सर्व पर्याय भिन्न-भिन्न है, क्योंकि पदार्थोंको तो देख रहे हैं, हाँ, पर्यायकी दृष्टिकी मुख्यतासे देख रहे हैं तो यह कहा जायगा कि पर्याय भिन्न-भिन्न हो गया है। जैसे कि अग्नि कोयलेमें लगी है, अग्नि काठमें लगी है, अग्नि पत्रोंमें लगी है, अग्नि तिनकेमें लगी है तो सर्वत्र अग्निका स्वरूप गर्मी है, कंडेमें हो तो अग्निका स्वरूप गर्मी है कोयला काठ आदि में हो तो अग्निका स्वरूप गर्मी है। और भी सोचो अग्नि कोयलेमें लगी है, तो

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

उस कोयला ईधनका जो पिंड है उससे अग्नि तन्मय है कि नहीं ? जब जिस ईंधनमें अग्नि है तब उस ईंधनमें अग्नि तन्मय है सो यही अग्नि भिन्न-भिन्न कही जायगी। तभी यह कम तेज अग्नि है, यह ज्यादा तेज अग्नि है, उनमें यह भेद पड़ जाता है।

इसी तरह समझलो जीव तो एक ही द्रव्य है। जिस समय पर्यायको वह अंगीकार करता है उस समय वह पर्यायसे तन्मय होगा। वह पर्याय कहीं भिन्न द्रव्यसे, भिन्न क्षेत्रसे नहीं आयी। उस समय वह द्रव्य ही उस पर्यायरूपमें उपस्थित हुआ है। द्रव्य प्रति समय किसी न किसी पर्याय रूपमें ही उपस्थित होता रहता है। ऐसा हो द्रव्यका वह स्वतःसिद्ध गुण है।

दृष्टिके अनुकूल तत्त्वविज्ञान—द्रव्य पर्यायसे तन्मय है उस पदार्थको जब पर्याय दृष्टिसे देखें तो वह द्रव्य भिन्न-भिन्न मालूम होगा और द्रव्य दृष्टिसे देखें तो एक ज्ञात होगा। इस तरह पदार्थोंके निरखनेकी दो प्रकारकी दृष्टियाँ हैं। (१) द्रव्यार्थिकनयदृष्टि और (२) पर्यायार्थिकनयदृष्टि। इन दोनों दृष्टियोंसे देखो तो सत् का सर्वावलोकन होता है। उस सत् को ऐसी दृष्टिसे देखें कि जिसकी दृष्टिमें द्रव्य ही प्रयोजन है, सामान्य ही जिसका लक्ष्य है तो उस दृष्टिमें वही सत् एक दीखा, नित्य दीखा और उस ही सत् को जब पर्यायदृष्टिसे याने पर्याय ही जिसका प्रयोजन है इस दृष्टिसे देखते हैं तो उसमें विशेष विशेष दीखा, अनित्य दीखा, भिन्न-भिन्न दीखा। वही सत् द्रव्यदृष्टि द्वारा देखे जानेसे एक नित्य और वही पर्यायदृष्टि द्वारा देखे जानेसे अनेक और अनित्य दीखा। जब जिस दृष्टिसे देखें तब सत् में वही दीखता है। इसका कारण यह है कि पदार्थ जितने हैं, वे हैं और परिणमते रहते हैं। यह बात तो पदार्थोंमें स्वतः सिद्ध है। यह खासियत किसी दूसरेकी कृपासे नहीं आई है। यह पदार्थ है तो इसमें ये दो बातें है ही। वे हैं और परिणमते रहते हैं। वहाँ न तो "है पना" छूटता है और न परिणति छूटती है। प्रत्येक समय हैं और प्रत्येक समय परिणमते है। जब हम शुद्धदृष्टिसे देखते हैं तो वह एक मालूम होता है और जब परिणमनकी दृष्टिसे देखते हैं तो भिन्न और अध्रुव मालूम होते हैं। ये वस्तुओंके जाननेके मुख्य तरीके हैं। यह पद्धति स्याद्वादकी देन है। स्याद्वादके बिना वस्तुका यथार्थ ज्ञान नहीं किया जा सकता है। ये विषय तो दोनो दृष्टियोंके अलग-अलग प्रताप हैं। जब द्रव्यदृष्टिसे देखें तो सामान्यतत्त्व देखनेमें आया और जब पर्यायदृष्टिसे देखें तो विशेष तत्त्व देखनेमें आया ; पर जिस समय दोनों ही दृष्टियों को एक ही साथ खोलें, द्रव्यार्थिकनयदृष्टि और पर्यायार्थिकनयदृष्टि दोनों दृष्टियोंको एक साथ पसारें और सत् को देखें तो एक ही साथ सामान्य और विशेष दोनों तत्त्व दीख जाते हैं।

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

नारकी, तिर्यञ्च, मनुष्य, देव और सिद्धपना, इन पर्यायोंमें रहनेवाला जीवसामान्य है और जीवसामान्यमें रहनेवाले नारक, तिर्यञ्च, मनुष्य देव और सिद्धपना विशेष है। जब पर्यायार्थिकनय और द्रव्यार्थिकनय इन दोनोंके द्वारा वस्तुधर्म एक ही साथ देखे जाते हैं तब वस्तुका "है पना" और वस्तुका परिणातिरूप विशेष ये दोनों ही एक साथ नजर आते हैं। यदि एक-एक दृष्टिसे देखते हैं तो उस अवगमको तो नय कहते हैं और दोनों नयोंको एक साथ देखें तो उस अवगमको प्रमाण कहते हैं। इससे एक चक्षुसे देखें तो एक अंश देखते रहते हैं और दोनों चक्षुवोंसे देखें तो सर्व अंश देखते रहते हैं अर्थात् जब द्रव्यार्थिकनयकी दृष्टिसे देखें तब एकदेश सामान्य तत्त्व देखने में आया। और जब पर्यायार्थिकनयदृष्टिसे देखें तो एकदेश विशेष तत्त्व देखनेमें आया। किन्तु, दोनों ही दृष्टियोंसे जब देखते हैं तो वह पूर्ण सत् देखनेमें आया, जोकि सामान्यविशेषात्मक, द्रव्यपर्यायात्मक है। एक देश देखनेसे तो एक बात मालूम पड़ेगी। जैसे द्रव्यार्थिकनय दृष्टिसे देखें तो तत्त्व एक व अनन्य मालूम पड़ेगा। और पर्यायार्थिकनय दृष्टिसे देखें तो तत्त्व अनेक और भिन्न-भिन्न मालूम पड़ेगा। सो सर्वावलोकनमें ये दोनों बातें एक साथ दृष्टिमें आती हैं उनका निषेध नहीं किया जा सकता है। ये दोनों दृष्टियाँ है-भेददृष्टि और अभेददृष्टि। इनके द्वारा अन्य-अन्य बातोंका भी यथार्थ निर्णय किया जाता है।

भेददृष्टिमें निमित्त नैमित्तिक आदि सम्बन्ध—जैसे देखते हैं कि अग्निके होने पर जल गर्म हो जाता है, सूर्यकी किरणोंके होनेपर मनुष्यशरीर गरम हो जाता है तो यह विषय है भेददृष्टिका। भेददृष्टिसे देखें तो निमित्त नैमित्तिक भाव समझमें आये याने पर्यायार्थिकनय दृष्टिसे देखें तो निमित्त नैमित्तिक भाव नजरमें आये, परन्तु अभेददृष्टिसे देखें, द्रव्यार्थिकनय दृष्टिसे देखें तो उस दृष्टिका विषय ही एक पदार्थ है। सो सब ही उपादान उपादान नजर आते हैं। जब द्रव्यार्थिकनय दृष्टिकी मुख्यतासे देखें तो वही एक उपादान नजर आता है। जो प्रतिकूल भी परिणमा है सो उसकी ही शक्तिसे परिणमा है। जो परिणतियां हैं उन्हें ही देखा गया है अन्य कुछ सम्बन्ध आदिक देखा ही नहीं गया है। यह बात सत्य है, फिर भी जब पर्यायार्थिकनय दृष्टिसे देखें, भेददृष्टिसे देखें तो यह सब अपने प्रतिभासमें हो रहा है कि अमुक चीज अमुक पदार्थका निमित्त पाकर अमुक अमुक प्रकारसे परिणम गया है। यह बात प्रतीतिमें आती है। इन दोनों बातोंमें से किसको कहा जा सकता है कि यह सत्य और यह है असत्य। भैया! द्रव्यदृष्टिसे देखनेपर सब उपादान रूप है, अपने आप सब अपनी अपनी परिणतिसे परिणमते रहते हैं। जब पर्यायार्थिकनय दृष्टि (भेददृष्टि) से देखें तो यह सम्बन्ध भी सत्य नजर आया कि अमुकका निमित्त पाकर अमुक पदार्थ इस रूप परिणम गया। और इस तरह परिणमा करता

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

है यह सम्बन्ध भी सत्य है। दृष्टियोंकी भी बात देखें तो क्या यह कहा जा सकता है कि द्रव्यार्थिकनय दृष्टि सत्य है और पर्यायार्थिकनय दृष्टि असत्य है ? नहीं, दोनों ही सत्य हैं क्योंकि पदार्थ हैं और परिणमते रहते हैं। इनमें से किसका लोप किया जाय। हां, यदि यह व्याख्या करें कि जो सत्में हो उसे सत्य कहते हैं और जो उस सत्में न हो उसे असत्य कहते हैं, तो इस दृष्टिमें "है" और परिणमन दोनों सत्य होंगे जब इस प्रकार देखें कि जो जो सत्में सहज हो वह सत्य हैं और जो सहज नहीं हैं वह असत्य है तो द्रव्य दृष्टिका विषय तो सत्य होगा और पर्यायार्थिकनयका विषय असत्य होगा। मगर यह व्यवस्था द्रव्यार्थिकनय दृष्टिमें है। अगर पर्यायार्थिकनय दृष्टिसे देखते हैं तो पर्यायकी बातें सत्य हैं। इस कारण सच्ची जानकारी करना हैं तो दोनों दृष्टियोंसे पदार्थोंको निरखो और सच्चा ज्ञान करते जाओ, क्योंकि सभी दृष्टियोंसे देखनेपर वस्तुओंका सर्व स्वरूप देखा जाता है।

सर्व दृष्टियोंसे वस्तुकी अवगम्यता—भैया, ज्ञानमें तो सभी बातें ज्ञात करना चाहिए और जब उपादेयकी बात चले कि तुमको कौन सा ज्ञान, कौन सी दृष्टि हितकर है, शान्तिप्रद है तब उसमें पदवीके, योग्यताके अनुकूल यह उपदेश है कि जो बीतरागी है वह तो ज्ञाता दृष्टा ही रहता है, उनको तो इन नयोंमें से आलम्बनकी छटनी नहीं करना हैं, क्योंकि वे तो बीतराग है, कृतकृत्य है, वे तो सहज परिणमते रहते हैं। किन्तु जो बीतरागकी दशामें न तो प्राप्त है और जिनका कि नाना प्रकार के संगोंमें रहना होता है जिनका मन चंचल होता है ऐसी योग्यतावालोंको यह उपदेश है कि ममताकी साधनभूत जो अध्रुव विषयकी दृष्टि है उसको तो गौण करदें और जो एक नित्य ध्रुव विषय है उस विषयमें दृष्टि दें तो मिथ्या कल्पनाएं हटें, विकल्प हटें, शुद्ध आनन्द प्रकट हो, कर्मोंका क्षय हो, मोक्षमार्ग बढ़े। परन्तु सम्यग्ज्ञान करनेके लिए तो सभी समी दृष्टियोंका उपयोग करना चाहिए। तभी हम वस्तुको पूर्ण जान सकते हैं। जैसे यह चौकी है, इसके बारेमें ज्ञान करना है तो उंचाई, चौड़ाई, लम्बाई और मजबूती सभी बातोंका ज्ञान करते हैं और सभी बातोंका ज्ञान होनेपर प्रयोजनमें उसकी मजबूतीपर कड़ा ध्यान रखते हैं, क्योंकि गैर मजबूती हो तो उसपर बैठनेसे हाथ पैर टूट जायगा। ज्ञान सबका है, पर बैठनेके प्रयोजनमें लक्ष्य उसकी मजबूतीपर है। इसी तरह ज्ञानी जीवका पदार्थोंके बारेमें ज्ञान तो सबका होता है सही, किन्तु प्रयोजनसे दृष्टिकी मुख्यता होती है। सो दृष्टियोंसे द्रव्यका, पर्यायका यथार्थ ज्ञान करके अथवा पर्यायको पर्याय समझ कर द्रव्यको द्रव्य समझ कर फिर पर्यायकी दृष्टिको गौण करके द्रव्यदृष्टिकी मुख्यता करके अपने ध्रुव सामान्यके उपयोगका साधन करना, ऐसा हितके लिए ज्ञानी महर्षियोंका उपदेश है।

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

एकदेश और सर्वदेशदृष्टिका विषय—वस्तुका पूर्ण अवगम द्रव्यार्थिकनय और पर्यायार्थिकनय दोनों दृष्टियोंसे होता है - एक दृष्टिसे केवल एकदेश ही अवगम होगा प्रमाणदृष्टि से सवदेश अवगम होता है। भैया, द्रव्यार्थिकनय और पर्यायार्थिकनयका और बड़ा विस्तार है। किसी बातको सर्वप्रथम जिस किसी अभेदरूपमें रखते हैं, यदि मैं उसको उससे और अधिक अभेदकी ओर ले जाऊँ तो पहली बात पर्यायार्थिकनय हो जा सकती है और अधिक अभेदकी बात द्रव्यार्थिकनय हो जाती है। जैसे कि संग्रहनय और व्यवहारनय मुकाबिलेतन बदल जाते हैं, जैसे स्कन्ध या अणु भी संग्रहनयका विषय है किन्तु उनके मुकाबलेमें कहा जाय कि पुद्गल, तो पुद्गल संग्रहनयका विषय होगा और अणु, स्कन्ध व्यवहारनयका विषय होगा। फिर जीव, धर्म, अधर्म, पुद्गल, आकाश काल रूपसे द्रव्यके भेदोंमें पुद्गलको रक्खा तो इस दृष्टिसे व्यवहारनयका विषय पुद्गल होगा और द्रव्य संग्रहनयका विषय होगा। जैसे संग्रहनय और व्यवहारनय कोई नियमित रूप नहीं रखते हैं। मुकाबले से संग्रहनय और व्यवहारनय बदलता रहता है। हाँ संग्रहमें जो परसंग्रह है या परमसंग्रह है वह नहीं बदलता है। इसी तरह द्रव्यार्थिकनय और पर्यायार्थिकनय, इन दोनों नयोंका लक्ष्य बदलता रहता है, पर आत्मस्वभावका विषय करनेवाला परम द्रव्यार्थिकनय नहीं बदलता। जहाँ भेद है वहाँ पर्यायार्थिकनय है और जहाँ अभेद है वहाँ द्रव्यार्थिकनय है।

अभेद और भेदके परिवर्तनका उदाहरण—जैसे धवल ग्रंथमें जिस चीजका वर्णन करना हुआ तो यदि सामान्य रूपका वर्णन कर दिया तो कहते हैं द्रव्यार्थिकनयका वर्णन और विशेषरूपसे वर्णन कर दिया तो कहते हैं कि पर्यायार्थिकनयका आश्रय करके वर्णन किया। जैसे जहाँ यह कहा कि ज्ञानावरण ५ प्रकार के हैं और फिर अगले सूत्रमें भेदोंके नाम बताये तो प्रश्न हुआ कि इनको तो पहिलेसे बताया था तो कहा कि यह तो पर्यायार्थिकनयकी रुचियोंका विषय कहा है और वह द्रव्यार्थिकनयकी रुचियोंका विषय कहा था। यह प्रकार बताना द्रव्यार्थिकनयका विषय है क्या ? यह पर्यायार्थिकनयका विषय है। फिर भी संक्षेप व विस्तारका मुकाबला करके द्रव्यार्थिक व पर्यायार्थिकनयका उपयोग होता है। ५ भेदोंका नाम लेकर बताना, पर्यायार्थिकनय वर्णन है। संक्षेपमें कह दें कि ज्ञानावरण ५ प्रकार हैं तो वह द्रव्यार्थिकनयका वर्णन है। भैया, जिस वर्णनको संक्षेपमें कहा जा रहा है वह है द्रव्यार्थिकनयकी पद्धतिका वर्णन, और बिस्तार हो गया सो हुई पर्यायार्थिक पद्धति।

परमशुद्ध द्रव्यार्थिकनयकी परम अभेदरूपता—द्रव्यार्थिकनय और पर्यायार्थिकनयकी परिभाषा बहुत पद्धतियोंमें है, परन्तु परम शुद्ध द्रव्यार्थिकनयका भेद नहीं है। वह तो एक परम अभेदको ही विषय करता है इसको न लेकर सामान्यतया देखो

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

द्रव्यार्थिक भी विस्तृत हो जाते है। भैया ! इनके उपयोगको बड़ा कौशल चाहिये। जिस किसी चीजको थोड़े लेक्चरसे समझादें तो यह कहा जायगा कि द्रव्यार्थिकनयके रुचियोंको समझाया। द्रव्यार्थिकनय और पर्यायार्थिकनयमें द्रव्यार्थिकनयका संक्षेपसे व पर्यायार्थिकनयको बिस्तारसे समझानेमें कुशल कहा है यह चीज यहाँपर कही जा रही है। द्रव्यार्थिकनय और पर्यायार्थिकनयमें भेद और अभेदसे भी सम्बन्ध है। अब दूसरी बात अध्यात्मके मूलनयकी ले चलें। इसमें दो नय हैं (१) निश्चय और (२) व्यवहार। निश्चयमें भी द्रव्यार्थिकनय और पर्यायार्थिकनय दोनों होते हैं। इन नयोंका चक्र बहुत बड़ा दुर्गम चक्र है। जैसे पहिले संग्राममें सुदर्शन चक्र सरीखे बड़े-बड़े चक्रोंके द्वारा विजय होती थी इसी तरह तत्त्वज्ञानके संग्राममें नयचक्रोंसे ही विजय होती है।

नयचक्रकी दुर्गमता—यहाँ भैया ! नयोंकी बात चल रही कि ये ज्ञानके साधन (हथियार) कितने दुर्गम हैं—यहाँ पहिले निश्चय द्रव्यार्थिक और निश्चय पर्यायार्थिक, व्यवहार द्रव्यार्थिक और व्यवहार पर्यायार्थिक ये चार दृष्टियां लो। उनमें से द्रव्यार्थिकके तीन भेद हैं नैगम, संग्रह, व्यवहार और निश्चय पर्यायार्थिक नयके चार भेद हैं ऋजुसूत्रनय, शब्दनय, समभिरूढनय और एवंभूतनय। नैगम, संग्रह, व्यवहार ये तीन नयपद्धतिप्रयोगसे व्यवहार द्रव्यार्थिक भी कहे जाते हैं। इनमें उस व्यवहारनयका काम नहीं है जिसका लक्ष्य दो या अनेक पदार्थोंपर पर व पर पदार्थके निमित्तसे होनेवाले परभावोंपर है। व्यवहार पर्यायार्थिकनय भी उसे कहते हैं जो दो या अनेक पदार्थोंको बतावे या उनका परस्परमें सम्बन्ध बताये। इन सात नयोंमें दो या अनेक पदार्थोंके सम्बन्ध बतानेकी बात नहीं है। सो भैया, निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध बताना यह व्यवहारनयसे हो सकता है। न तो यह निश्चय द्रव्यर्थिकनयमें हैं और न निश्चय पर्यायार्थिक नयमें है, और न व्यवहार द्रव्यार्थिकमें है।

निश्चय और व्यवहार का अर्थ—निश्चयका अर्थ है एक पदार्थको विषय करना। यह निश्चयकी मूल परिभाषा है। यदि एक पदार्थको पर्यायार्थिकनयकी गौणता करके अनादि अनन्त अहेतुक स्वभावकी मुख्यतासे जानें तो उस निश्चयका नाम है परम शुद्ध निश्चयनय। और निश्चयकी सीमामें तो एक द्रव्यको ही जानना, अनेकको न जानना, किन्तु यदि पर्यायकी मुख्यता करके पदार्थोंको जानें तो वह या तो शुद्ध निश्चयनय हो जायगा या अशुद्ध निश्चयनय हो जायगा। शुद्ध पर्यायसे तन्मय पदार्थोंको जानें तो शुद्ध निश्चयनय होगा और अशुद्ध पर्यायसे तन्मयको जानें तो अशुद्ध निश्चयनय होगा। परन्तु व्यवहारनय उसे कहते हैं जो दो पदार्थोंको या अनेक पदार्थोंको या किसी निमित्तभूत पदार्थके निमित्त से होने वाले विकार परिणमनों को देखें।

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

अकर्तृकर्मभाव व निमित्तनैमित्तिकभावका समन्वय—भैया, विकाररूप तो विकारी पदार्थ स्वयं परिणमता है, किन्तु पर पदार्थको निमित्तमात्र करके परिणमता है। व्यवहारनयका मामला असत्य हो, सो नहीं, सत्य है, परन्तु व्यवहारनयका जो विषय है वह न केवल उपादानका आश्रयरूप है और न केवल निमित्तभूत वस्तुका आश्रयरूप है। किसी एक द्रव्यमें वह नहीं है इसलिए एक सत् में न होनेके कारण असत्य कहा जाता है, मगर झूठ नहीं कहा जाता है। असत्य और झूठमें अन्तर है। असत्यका अर्थ है सति भवं, सत्यं, न सत्यं इति असत्यं। जो सत्में हो उसे सत्य कहते हैं और जो सत् में न हो उसे असत्य कहते हैं। तथा सत् पदार्थमें जो अनादि अनन्त हो उसे तो कहते हैं ध्रुव सत्य और जो सत् पदार्थोंमें हो तो सही, पर आगे पीछे न हो उसे कहते हैं अध्रुवसत्य। परन्तु सम्बन्धकी बात तो किसी एकमें नहीं होती, इसलिए सम्बन्ध कैसा भी हो वह सत्य नहीं है, क्योंकि न तो वह सत्में ध्रुव है और न सत् में परिणमनरूप है। इस कारणसे निमित्तनैमित्तिक भाव, संयोग आदि सम्बन्ध सब असत्य हैं, पर झूठ नहीं हैं। ऐसा नहीं है कि कर्मोदयके होनेपर भी राग हो और कर्मोदयके न होनेपर भी राग हो। इस कारण उस कर्मोदयका निमित्त पाकर आत्मामें रागादिक होते हैं ये बातें सच हैं झूठ नहीं हैं, मगर ये सम्बन्धकी बातें हैं वे किसी एक पदार्थमें नहीं हैं, इसलिए ये असत्य हैं।

सम्बन्ध का अभाव—सम्बन्धकी बात दो में सोची जानेके कारण एक सत में सम्बन्धका नहीं है। सत्य दो प्रकारके हैं ध्रुव सत्य और अध्रुव सत्य। ध्रुव स्वभाव है और अध्रुव उसकी परिणति है। अनादि अनन्त सदा अन्तः प्रकाशमान जो बना रहता है वह ध्रुव सत्य है और जो सत् में तो प्रकट हुआ किन्तु उत्तरकालमें बिलीन हो गया वह अध्रुव सत्य है। अब इन चार बातोंमें से अर्थात् निश्चय द्रव्यर्थिकनय, व्यवहार द्रव्यर्थिकनय, व्यवहार द्रव्यार्थिकनय और व्यवहार पर्यायार्थिकनय, इनमें से अब अन्तिम दो की बात देखें, व्यवहार द्रव्यार्थिकनय और व्यवहार पर्यायार्थिकनयकी बात देखें। जैसे कहें कि संसारी जीव, तो ये भी दो प्रकारके होते हैं एकत्रस और दूसरा स्थावर। यह कहें कि संसारी जीव, इतना अंश तो हुआ संग्रहनय, यह हुआ व्यवहार द्रव्यार्थिक नय। संसारी जीव कोई निश्चय द्रव्यार्थिकनयकी बात है क्या? यह तो व्यवहारकी ही बात है। त्रस और स्थावर इन्हीं दो भेदोंका निर्गम स्थान संसारी जीव जीव संग्रहनय है और विकृत जीवका वर्णन है इस कारण व्यवहार है। अतः यह व्यवहार द्रव्यार्थिकनय है। पर्यायार्थिकनय तो ऋजुसूत्रनयसे शुरू होता है।

द्रव्यार्थिकनयके तीन रूप हैं (१) नैगम (२) संग्रह (३) व्यवहार। इस भेदमें पर्यायकी ओर न झुकें, भेद करनेवाले एक पिंडकी ओर झुके, पदार्थोंकी ओर

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

झुकें। इसका कारण है द्रव्यार्थिकनय दृष्टि, और जिसके कारण पर्यायमयताके रूपमें देखना होता है वह है पर्यायार्थिकनय दृष्टि। पर्यायार्थिकनय ऋजु-सूत्रसे शुरू होता है। निश्चय द्रव्यार्थिकनय, निश्चय पर्यायार्थिकनय और व्यवहार द्रव्यार्थिकनय इन तीनों का विवरण इन सात नयोंमें आता है। व्यवहार पर्यायार्थिकनयकी दृष्टिमें यह निमित्त है, यह उपादान है, यह इसके निकट है, यह संयुक्त है, यह पर भाव है ये सभी बातें प्रसिद्ध होती है। ये दृष्टियाँ सच हैं झूठ नहीं हैं इसलिए निमित्तनैमित्तिक सम्बन्धकी बात झूंठ नहीं है, किन्तु एक सत् में रहने वाली बात नहीं।

जैसे देखा करते है कि सूर्यके निमितसे, सूर्यकी सन्मुखताके निमित्तसे सब चीजें प्रकाशित हो जाती है। जैसे दीपकका निमित्त पाकर रातमें भी प्रकाश हो गया और दीपक बुझ गया तो अन्धकार हो गया। रसोई बनानेकी बात याद ही होगी कि अग्निका निमित्त पाकर दाल खिचड़ी पक जाती है ये बातें तो झूठ नहीं हैं। इनको झूठ कहा ही कैसे जाय, क्योंकि सब लोग देखते ही हैं। हां, यह सम्बन्ध कोई सद्भूत नहीं है, किसी सत्में नहीं है। इस आशयमें परस्पर सम्बन्धवाली बातें असत्य हैं। तो अब निश्चय और व्यवहारके मैदानमें चल कर देखते हैं तो यह बात स्पष्ट मालूम होती है कि अशुद्ध उपादान, अशुद्ध परिणमन पर अशुद्धको निमित्त पाकर स्वयं अशुद्ध परिणम जाता है। निमित्त परमें परिणमन नहीं करता, निमित्त तो अपनेमें परिणत होकर अपनेमें बना रहता है। निमित्तसे बाहर निमित्तका गुण, निमित्तके कार्य, निमित्तका तत्त्व कुछ भी नहीं हैं। निमित्तभूत द्रव्य अपने आपमें अपने परिणमन करते हुए बने रहते हैं। उनका सान्निध्य पाकर अशुद्ध उपादान स्वयमेव बिकाररूप परिणम जाता है।

अशुद्ध परिणमन वाले पदार्थोंका परस्पर में निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध—अशुद्ध परिणमनमें भी पदार्थोंका परस्पर कर्त्ताकर्मसम्बन्ध नहीं हैं। क्योंकि प्रत्येक पदार्थ अपनेमें हैं, और परिणमते हैं, इतना ही सब पदार्थोंका काम है। जब सबका काम है कि वे हैं और परिणमते रहें, होते रहें तथा अगुरुलघुत्वगुणके कारण अपनेमेंही परिणत होते रहें तो एक दूसरेको कुछ करदे, यह कैसे हो सकता है? यहाँ यह प्रश्न हैं कि जब पदार्थोंका स्वयं परिणमन है तो उसमें निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध क्यों है? इसका समाधान यह है कि चीज एक देखी जानेपर यह शंका नहीं की जासकती है। इसी तरह अविनाभावपद्धतिसे युक्तिपूर्ण व्यवहारोंमें भी शंका नहीं रहती है। परके कर्तृत्वको कौन करता है, योग्य निमित्तकी सन्निधिमें अशुद्ध योग्य उपादान स्वयमेव रागादिकरूप परिणमता जाता है। यदि यह व्यवहार असत्य हो जाय तो सर्व व्यवस्था भंग हो जाय। उसका अर्थ यह होगा कि कभी जीव

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

कर्मका सान्निध्य पाकर बिकाररूप परिणम जाय, और कभी कर्मोदयके बिना भी बिकार रूप हो जाय, किन्तु ऐसा तो नहीं है।

भैया, अशुद्ध परिणमनोंमें परस्पर निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध न हो तो यह नहीं कहा जा सकता कि यह सब कुछ जो परिणमन है, वह बिभाव परिणमन है। यह बिभाव परिणमन तभी कहलाता है जब कि दूसरोंका निमित्त पाकर परिणमन होता है। अन्य दृष्टियोंसे उसमें कुछ हस्तक्षेप नहीं है, पर निमित्तके सान्निध्य बिना उपादानमें बिकृत परिणमन नहीं हो सकता। क्या कोई दूसरा द्रव्य किसी दूसरेको कुछ कर देता, इस कारण बिभाव कहते हैं? नहीं, उपादानमें ही ऐसी कलाएं भरी हैं कि वह कैसे सान्निध्यको पाकर किस प्रकार परिणम जाय। इसी कारण कभी यह स्खलन नहीं होता कि कोई निमित्तके सान्निध्यमें बिभावरूप परिणमें और कोई पर उपाधि न होते भी विभावरूप परिणमें। यहाँ कभी कोई अन्तर नहीं होता, इस-लिए कि परिणामवाला पदार्थ चूकता नहीं है। जैसे क्रोध परिणतिका उदय निमित्त मात्र पाकर जीव क्रोधरूप परिणम जाता है। यह सर्व व्यवस्था बनी रहती है। क्योंकि निमित्तभूत पदार्थोंकी शक्तियां तो निमित्तभूत पदार्थोंके ही क्षेत्रमें रहेंगी। निमित्तभूत पदार्थका गुण, उसका पर्याय, उसकी प्रकृति सब कुछ निमित्तभूत पदार्थोंमें ही रहेगा। निमित्तका भी तत्त्व उपादानमें नहीं जायगा।

परिणमनकला—भैया, उपादानकी ही सब कलाएँ है कि वे किस उपाधिके सान्निध्यमें किस रूप परिणम जायें। वे सब इस उपादानकी ही लीलाएँ है। इसमें स्वतन्त्रता नष्ट नहीं होती। कर्मोदयका निमित्त भी पाया और आत्मा बिकार रूप भी परिणम गया तो भी आत्माके बिकाररूप परिणमनमें परतन्त्रता नहीं आयी। स्वतन्त्रता ही है। परतन्त्रता तो तब आती जब कर्म अपनी परिणतिसे आत्माको जबरदस्ती परिणमाता। कर्म अपनी परिणति आत्मामें नहीं रखता, इस कारण आत्मा स्वतन्त्र है, पर ऐसा जो बिकार होता है वह परका सान्निध्य पाकर होता है। जीव इस विकारसे हटे, बिश्वास तो ऐसा हो कि मेरा ता स्वरूप मुझमें ही है, सबसे न्यारा है। जीवका काम परिणमनका है। परिणमन चल रहा है। उसकी शुद्ध अशुद्ध उपादानकी बात है अशुद्ध उपादान है तो वह परके निमित्तको पाकर स्वयं ही अशुद्धरूप परिणमता चला जाता है। जैसे किसीने गाली दिया तो गाली सुनकर गुस्सा आगया। तो गाली से पराधीन नहीं हुआ, गालियोंसे उसे गुस्सा नहीं आया, वह गालियोंका निमित्त पाकर स्वयमेव गुस्सा कर गया और बिकाररूप परिणम गया। अब इन्हीं सब अपेक्षावोंके आधारभूत स्याद्वाद व सप्तभंगीका वर्णन करते हैं—

अत्थित्ति य णत्थित्ति य हवदि अवत्तव्वमिदि पुणो दव्वं।
पज्जाएण दु केणवि तदुभयमादिट्ठमण्णं वा ॥ ११५ ॥

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

इसमें सप्तभंगीका वर्णन करते है। इस वर्णनको सप्तभंगीका अवतार कहा है। यह शब्द क्या कहता है? यह स्याद्वादका सिद्धान्त एक सिद्ध देवतास्वरूप है जिसको अब यहाँ उतारना है। अवतारके माने उतारना अर्थात् भगवानके द्वारा प्रणीत इस स्याद्वाद पद्धतिके दिखानेको इसका अवतार कहा है। किसी भी बातको कहेंगे तो एक बात कहेंगे ना? एक बात रक्खेंगे। कुछ भी रक्खें। जो बात रक्खी जायगी उसके विरुद्ध भी तत्त्व पाया जाता है। तो कितनी बातें हों गयी? दो बातें। (१) कही जाने वाली और (२) उसके विरुद्ध। दो बातें हो गयी। अब दो बातें हो गयीं तो दोनों बातोंकी दृष्टियां जुदी जुदी हो गयीं। एक दृष्टिसे सीधी बात और दूसरी दृष्टिसे उल्टी बात। अर्थात् एक अपेक्षासे विधिकी बात और दूसरी अपेक्षासे निषेधकी बात। दो बातें हो गयीं। इन दोनों बातोंके कहनेका, एक साथ बतानेका यत्न करें तो जो कुछ बताया जा सके, तो एक यह भी बात हो गयी। तो कितनी बातें हो गईं? तीन बातें हो गईं। तीन तो स्वतन्त्र बातें है। उन तीन बातोंका संयोग मिलाकर अगर कहा जाय तो चार बातें और हो जायेंगी।

लौकिक दृष्टान्तपूर्वक सात भंगों का संयुक्तिक विवेचन— जैसे तीन चीजें हैं (१) नमक (२) मिर्च और (२) खटाई। तीनों चीजें रक्खी हैं। तो उन तीनों चीजोंका आप स्वतन्त्र-स्वतन्त्र स्वाद ले सकते हैं। तो स्वतन्त्र स्वतन्त्र चीजोंके ३ स्वाद हुए। अब तीनों चीजोंका संयोग लेकर अगर स्वाद लिया जावे तो कितने और स्वाद हो जायेंगे? चार। नमक मिर्च एक साथ मिलाकर खायें तो संगोगकी हुई एक बात। नमक मिर्च खटाई एक साथ मिलाकर खायें तो हो गई दूसरी बात, मिर्च खटाई खावें तो हो गई तीसरी बात। नमक मिर्च खटाई एक साथ मिलाकर खावें तो हो गई चौथी बात। तीन चीजें हैं और उनका स्वाद लिया तो चार और हो गई। इस प्रकार एक बात कुछ भी जनताके सामने रखेंगे तो उसके खिलाफ भी एक बात होगी और दोनोंको मिलाकर भी एक साथ वाली बात और एक होगी। फिर तीनोंका संयोग अगर करेंगे तो चार बातें और होंगी।

जनता के सामने यह बात रक्खें कि जीव नित्य है तो इसके विरुद्ध भी एक बात आयगी कि जीव अनित्य भी है। अब दो बातें सामने आयीं कि जीव नित्य है और अनित्य है। और जब दोनों बातोंको एक साथ रखकर कहा जायगा तो हुआ अवक्तव्य। अच्छा नित्य और अनित्यको एक साथ कहेंगे तो क्या कहा जा सकता है? नहीं, लो, सो अवक्तव्य हो गया। तीन बातें स्वतन्त्र हो गईं। (१) नित्य (२) अनित्य (३) अवक्तव्य। इन तीनो बातोंका यथायोग्य संयोग रखकर क्रमसे बोलेंगे तो चार बातें और हो जायेंगी। (१) नित्यानित्य (२) नित्य- अवक्तव्य (३) अनित्य अवक्तव्य (४) नित्य अनित्य अवक्तव्य। इसी तरह अन्य सब शेष धर्मोंकी भी अपेक्षायें हो

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

जाती हैं। किसी भी एक चीजको सामने रक्खेंगे तो उसके फूटते-फूटते सात अपेक्षायें हो जाती हैं। इन सर्व अपेक्षाओंका वर्णन करना यही सर्व देशका वर्णन हो गया। छूटा कुछ नहीं। इसी को कहते हैं सप्तभंगी, इसका ही नाम है स्याद्वाद।

सप्तभंगों की अपेक्षायें—अब इसकी अपेक्षायें क्या है? उन्हें बिचारें जैसे जीव नित्य है, किस दृष्टिसे? द्रव्यार्थिक दृष्टिसे। चूँकि द्रव्यार्थिकनय दृष्टिसे देखनेपर द्रव्य सामान्य तत्त्व दिखा जो नष्ट नहीं होता, वह अनादि अनन्त बना ही रहता है। इस कारण जीव नित्य है। यह तो बात सही है कि जीव नित्य है। और जीव अनित्य है यह किस दृष्टिसे सही है? योंकि पर्याय इसके प्रति समय नये-नये होते हैं। उस पर्यायको देखकर जब जीव पदार्थका विचार किया तो यह अनित्य समझमें आया। जो था सो नहीं रहता है, अन्य होता रहता है, बदलता रहता है; तब जीव अनित्य हुआ। द्रव्यार्थिक-नयकी दृष्टिसे नित्य और पर्यायार्थिकनयकी दृष्टिसे अनित्य हुआ। इन दोनों धर्मोंको एक एक बारमें द्रव्यार्थिकनय और पर्यायार्थिकनयकी दृष्टिसे देखा तब नित्य प्रतीत हुआ फिर अनित्य प्रतीत हुआ। और दोनों दृष्टियोंसे एक साथ देखे तो, अथवा कहा जायगा कि भाई तुम तो नित्य भी कहते और अनित्य भी कहते, सच तो बतलाओ कि यह जीव कैसा है? एक शब्दमें बतावो तो क्या कहा जायगा? नित्यमें तो एकदेशका वर्णन हुआ और अनित्यमें भी एकदेशका वर्णन हुआ। नयकी अपेक्षा लेकर वस्तुका सर्वदेश वर्णन करना चाहें तो नहीं किया जा सकता है।

जब वर्णनमें एक ही बात आ सकती है तब कहा जायगा कि वस्तु अवक्तव्य है। जब एक साथ कहें तब कहनेकी असमर्थता होनेसे अवक्तव्य है। अब क्रम-क्रमकी दृष्टि निकट-निकट लाकर देखें तो अवक्तव्य होते हुए भी नित्य है ऐसा बताया जा सकता है। अवक्तव्य होते हुए भी अनित्य है, सो दो बातें हुईं। अनित्य होते भी नित्य है और नित्य होते हुए भी अनित्य है ऐसी दृष्टियाँ सामने रक्खी जा सकती हैं यह हुआ नित्यानित्य अवक्तव्य। भैया, देखा—स्याद्वादमें किसी भी धर्मका प्रतिबन्ध नहीं है।

एक बातके रखनेपर सात भंगोंका प्रकट होना—अब दूसरा प्रकरण लो, जीव है यह बात किसी के सामने रक्खें तो दूसरी बात क्या आ जायगी कि जीव नहीं हैं। क्या ये दोनों बातें सही नहीं हैं? ये दोनों ही बातें सही हैं। यह जीव है और नहीं है ये दोनों ही बातें सही हैं। जीव, जीवके स्वरूपमें तो है और जीव जीवातिरिक्त अन्य सब पदार्थोंके स्वरूपमें नहीं है। अर्थात् यह अपने चतुष्टयसे हैं, परके चतुष्टयसे नहीं है, इन दोनों बातोंको एक साथ कहा जाय तो वह अवक्तव्य हैं। फिर अवक्तव्य होते हुए भी नहीं है। फिर तीनों दृष्टियोंके क्रममें-है, नहीं, व अवक्तव्य है। यह सप्तभंग आ गया। इसी को कहते हैं स्याद्वाद।

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

सप्तभंगके प्रसंगमें एक लौकिक दृष्टान्त—भैया, अब जरा लौकिक दृष्टान्त लो। किसी मनुष्यको कहा जा रहा है कि यह कौन है ? तो कहा गया कि अमुकका पिता है। अमुकका पिता है, के विरुद्ध क्या बात हो गयी कि यह अमुकका पुत्र भी है। यह पिता भी है और पुत्र भी है। यह लौकिक दृष्टान्तसे कह रहे हैं, नहीं तो वैसे इसे इस कायदेमें रखना चाहिए, कि यह पिता है, इसके विरुद्धकी बात है कि यह पिता नहीं है। यह बात कायदेमें आती है मगर जल्दी समझनेके लिए पुत्रको ले लें। यह मनुष्य पिता है तो दूसरी बात क्या सिद्ध कर ली जायगी कि यह पुत्र है। कोई कहे कि एक शब्दमें बतलावो यह क्या है ? तो यह अवक्तव्य है अवक्तव्य होते हुए भी पुत्र है यह भी समझ में आता है अवक्तव्य होते हुए पिता है यह भी समझमें आया, पिता होते हुए भी पुत्र है यह भी समझमें आया और अवक्तव्य होते हुए भी पिता है और पुत्र है, यह भी समझमें आया। तो अब ७ बातें हो गयीं।

भंगोंका क्रम—शास्त्रोंमें भंगोंका वर्णन करते समय अस्ति, नास्ति, अवक्तव्य इस तरह क्रमका वर्णन आता है। फिर अस्तिनास्ति, फिर अस्तिअवक्तव्य, फिर नास्ति अवक्तव्य फिर अस्तिनास्ति अवक्तव्य, मगर जिज्ञासुवोंको जल्दी समझानेके लिए कह दिया जाता है, अस्ति, नास्ति, अस्ति नास्ति फिर अवक्तव्य आदि। पर क्रमपद्धतिमें यह नहीं होना चाहिए। क्रम यह होना चाहिए कि पहले स्वतन्त्र तीन बातोंका वर्णन हो, फिर संयोगियोंका वर्णन हो। स्वतन्त्र तीन बातें है (१) अस्ति (२) नास्ति और (३) अवक्तव्य। इनमें कुछ मिला तो नहीं है। तीन स्वतन्त्र बातों का वर्णन करके अब उनमें मेल करें तो अस्ति नास्ति, अस्ति अवक्तव्य, नास्ति अवक्तव्य और अस्तिनास्ति अवक्तव्य-दृष्टान्त जैसे अभी दिया है—नमक, मिर्च, खटाई इत्यादि उससे बहुत जल्दी समझमें आजाते हैं।

सप्तभंगकी गणितपद्धति—प्रश्न—भैया ! कैसे समझा जाय कि स्वतन्त्र धर्म इतने हैं ? उत्तर—धर्म तो एक कुछ रखा जायगा सो दूसरा प्रतिपक्षी हुआ, तीसरा अवक्तव्य हुआ। स्वतन्त्र पदार्थके बिना भंग नहीं निकलते हैं। जैसे कोई चार चीजें हैं स्वतन्त्र, तो चारों के कितने भंग होंगे ? चारोंके १५ भंग होंगे। चारका स्वाद १५ तरह से लिया जा सकता है। तो इसके निकालनेका सरल तरीका यह है कि चार जगह २×२×२×२, रख दो, परस्पर गुणा करदो, जो फल आवे उसमें १ घटा दो तो भंग निकल आते है। २×२×२×२ बराबर १६ में से १ घटा दो तो १५ बचे। चार चीजें अगर स्वतन्त्र हैं तो १५ तरह से व्यवस्थित किया जा सकता है, और तीन चीजें हों तो तीन जगह २×२×२ बराबर ८ मेंसे १ घटा लिया

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

तो ७ रह गए। तीन चीजें होती हैं तो उनका सप्तभंग होता है जिसे सप्तभंगी कहते हैं। उसका आधार क्या है? यह बतानेके लिए तीन चीजें सबसे पहिले बतायी जायेंगी, जो कि स्वतन्त्र हैं। स्वतन्त्र पदार्थ होनेपर ही उसका भंग बन सकता है। इसलिए सबसे पहले स्वतन्त्र तीन पदार्थोंकी बात कही है। और खुशीकी बात है कि इस प्रवचनसार ग्रन्थमें भी यही क्रम दिया है। स्यात्अस्तिएव, स्यात्नास्तिएव, स्यात्अस्ति अवक्तव्यएव, स्यात् नास्ति अवक्तव्यएव, स्यात्नास्ति अवक्तव्यएव, स्यात्अस्तिनास्ति अववतव्य एव। किन्हीं ग्रन्थोंमें इस तरह भी दिया है कि स्यादस्ति, स्यान्नास्ति, स्यादस्तिनास्ति, किन्तु यह क्रम नियममें नहीं आता। क्रमका नियम यह हो कि तीन स्वतन्त्र धर्मोंको पहिले रखें फिर मिलीहुई चीजोंकी अपेक्षा रखें। लेकिन सुगमता समझनेमें यह क्रम सहायक है, इससे यह भी ठीक है।

स्याद्वादमें शब्दों की योजनाके अनेक मार्मिक रहस्य—अब इन धर्मोंमें ध्यान देने की बात है कि यहाँ शब्द बोला जा रहा है स्याद्अस्ति एव। यह कथन जरा कठिन मालूम होता होगा, परन्तु भैया, कुछ दिनों अभ्यास और उपयोग होनेसे सरल होता जायगा। यहाँ यही प्रसंग चल रहा है कि यह कह रहे हैं स्याद्-अस्ति-एव। स्यात् का अर्थ है इस अपेक्षासे एक अपेक्षासे, अस्तिका अर्थ है 'है' व एव का अर्थ है "ही"। दूसरे धर्मका नाम है स्यात् नास्ति एव, एक अपेक्षासे नहीं है ही इत्यादि सर्वत्र धर्म नामसे पहिले स्यात् और बादमें एव देनेका, अर्थात् ये तीन शब्द देने का क्या प्रयोजन है? इसका मर्म जानना चाहिये, यह बहुत ही अधिक मननकी चीज हैं।

स्याद्वादमें संशयवादताका अभाव—कितने लोग ऐसा कहते हैं कि स्याद्वाद तो संशयवाद है, कभी कह लिया कि नित्य है, कभी कह लिया कि अनित्य है। नित्य है या अनित्य ऐसा संशय सा रहता है। यही संशयवाद है। भैया, यहाँ संशय बिल्कुल मिटा देना चाहिए इस एव शब्दको देखकर। इसमें यह संशय न रखो कि है कि नहीं है। इसमें पूरे जोरके साथ कहा गया कि एक अपेक्षासे है ही, द्रव्यार्थिकनयसे जीव नित्य ही है, और पर्यायार्थिकनयसे जीव अनित्य ही है। ही जहाँ लगा होता है वहाँ निश्चय कहा जाता है कि अनिश्चय? जैसे कोई एक आदमी मान लो रघुबर दयाल। हाँ तुम्हारा पुत्र कौन है? हुकुमचन्द। अच्छा रघुबर दयाल हुकुमचन्दके पिता ही हैं। और रघुबर दयालके पिता का नाम फुन्दी लाल। अच्छा ये फुन्दी लालके पुत्र ही हैं। इसमें संशय तो रहा नहीं कि ये पिता हैं कि नहीं हैं। अपेक्षा लगाते ही, ही लगा दिया जिससे संशय मिट जाता है। इसलिए स्याद्वादमें संशयका स्थान नहीं हैं, प्रत्युत निश्चयका इसमें पूरा स्थान है। जीव द्रव्यार्थिकनयदृष्टिसे नित्य ही हैं और पर्यायार्थिकनयदृष्टिसे अनित्य ही है। इसमें संशयका कोई स्थान नहीं है।

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

भी लगाने की नयी पद्धति—एक नयी पद्धति यह भी चल पड़ी है स्याद्वाद को बतलानेके लिए कि नित्य भी है अनित्य भी है । यह नई पद्धति ,प्राचीन पद्धतिकी अपेक्षा निर्बल हैं । और भी शब्द सुनकर भी लोगोंने स्याद्वादको संशयवाद बताने वाला कह-दिया है। जहाँ एक बातमें अडिग न रहे, थोड़ी देर बादमें कहते नित्य है और थोड़ी देर बादमें कहते अनित्य है, वहाँ निश्चयकी कमजोरी मानी जाती है । यद्यपि इस नवीन पद्धतिमें भी मर्म है । भी बोलने वालोंको अपने मनकी अपेक्षामें बल रहता है । मुखसे नहीं बोलता है पर उसके हृदयमें सोचनेकी सामग्री होती है । अतः भी लगाना गलत नहीं है मगर यह तुम्हारे मनकी बात है, तुम्हारे मनमें हैं । अव्यक्त मर्म जाने बिना जहाँ भी लगा रहता है वहाँ संशय किया जा सकता है । भी लगाकर बताने की पद्धति नई है । प्राचीन पद्धति एवकारकी है । अपेक्षा लगाना और उस अपेक्षामें धर्म बताकर एव कहना, यह प्राचीन पद्धति है । इसमें संशयका स्थान नहीं रहता है । अपेक्षा लगाकर 'भी' बोला जाय तो वह गलत हो जाता है । जैसे कहें कि यह हुकुमचन्दके पिता भी हैं तो इसमें कितनी गल्तीकी बात कही गयी ? क्या यह हुकुम चन्दके और कुछ भी हैं ? (हँसी) । संशय और कुछ भी हो गया । अपेक्षा लगाकर "भी" लगाना अनर्थ होता हैं और अपेक्षा न लगाकर "भी" शब्द लगाना किसी सुनने वालेके लिए अनर्थकारी हो सकता है । अतः "भी" की पद्धति उत्तम नहीं है । "ही" की पद्धति उत्तम है । इस कारण आर्ष ग्रन्थोंमें एव शब्द लगा करके इसक वर्णन किया जा सकता है ।

पक्ष और प्रतिपक्षमें से एककी अवहेलनासे दूसरेका नाश—भैया ! कोई भी पदार्थ हो, अपने स्वरूपसे तो है ही और पर के स्वरूपसे नहीं है । जैसे घड़ीको हाथ में लेकर कह रहे हैं कि यह पदार्थ घड़ी रूपसे तो है और चौकी वगैरह के रूपमें नहीं है, क्योंकि यह चौकीके रूपमें हो जाय तो यह चौकी हो गई । तब घड़ीका काम खतम हो जायगा, सो अस्तित्व खत्म हो जायगा । जैसे एक आप ही हैं, आप अपने स्वरूपसे तो हैं और सिंह हाथीके रूपमें नहीं हैं । यदि सिंह हाथी आदिके रूपमें आप हो जाँय तो हम सबको तो यहाँ से भागना पड़ेगा, नहीं तो प्राण संकटमें चले जायेंगे, प्राण बचना मुश्किल हो जायगा । सो भैया , प्रत्येक पदार्थ अपने स्वरूपमें हैं, परके स्वरूपमें नहीं हैं । जीव द्रव्यको ही घटित कर लो । जीव अपने स्वरूपसे तो हैं और बाकी पुद्गल, धर्म अधर्म, आकाश और काल इनके स्वरूपसे नहीं हैं । हाथकी दो अँगुली ले लो, यह बीचकी अँगुली अपने स्वरूपसे तो है पर इस दूसरी अंगुलीके स्वरूपसे नहीं है । अगर इस दूसरी अंगुलीके स्वरूपसे हो जाय तो फिर तीन ही अंगुली चार की जगह पर रह जायें । उसका अस्तित्व ही मिट जायगा ।

पदार्थ हैं यह पहिली बात है । हैका उल्टा क्या लिया जायगा ? नहीं हैं, यह

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

दूसरी बात है। दोनों को एक साथ कहा जाय तो अवक्तव्य हैं। ये तीन स्वतंत्र भंग हैं। अब इकहरे यूनिट से चलिए। अस्ति देखो तो अस्ति है और नास्ति देखो तो नास्ति है और एक साथ दोनोंको देखो तो अवक्तव्य है। भैया ! एक साथ दोनोंको देखना भी एक दृष्टि है। क्रमसे अस्ति नास्ति देखो तो अस्ति नास्ति है। इसमें दो दृष्टियोंका क्रमशः उपयोग है इस कारणसे इसमें अस्ति नास्ति संयोगी भंग हैं, स्वतन्त्र भंग नहीं है। अवक्तव्यमें भी दोनों दृष्टियां हैं किन्तु युगपत् है। एक साथ कहना चाहें तो वह एक क्या हैं ? उसका नाम है अवक्तव्य । ये तीन स्वतंत्र भंग हैं। अस्ति नास्तिमें दोनों क्रमसे मिले होते हैं, पदार्थ निज स्वरूपसे तो हैं और परके स्वरूपसे नहीं हैं। और एक साथमें अवक्तव्य हैं, और दोनोंको एक साथ तथा निज रूप इन दोनों दृष्टियोंसे देखें तो अस्ति अवक्तव्य है। तथा दोनोंको एक साथ तथा पर रूप इन दोनों दृष्टियोंमें क्रमसे देखें तो नास्ति अवक्तव्य है। स्वरूप और पर रूप इनको क्रमसे व युगपत् देखें तो अस्तिनास्ति अवक्तव्य है। आस्तिनास्ति को क्रमसे तथा युगपत् देखनेपर वह अस्ति नास्ति अवक्तव्य है।

दृष्टिके सुगम चार प्रकार—(१)नित्य है (२)अनित्य है (३) अवक्तव्य है और (४) नित्यानित्य है, ये चारों भंग जल्दी समझमें आते हैं। जीव सदा रहता है इस-कारण नित्य है, मगर जीवकी परिणति प्रत्येक समय नई-नई होती है। परिणतियोंके समयमें द्रव्य परिणतियोंसे अभिन्न रहता है। जब जो पर्याय होते हैं तब उनके समयमें द्रव्य उनसे अभिन्न रहता है। कहीं द्रव्य पृथक् हो व पर्याय पृथक् क्षेत्रमें हो ऐसा नहीं हैं । वही द्रव्यका क्षेत्र है, और वही पर्यायका क्षेत्र है। पदार्थ जिस पर्यायमें आते हैं उस समय उस पर्यायसे तन्मय होते हैं। पदार्थ नित्य हैं और पर्यायसे तन्मय हैं सो पर्यायार्थिकनयकी मुख्यतामें जीव को भी अनित्य कहा जाता हैं, क्योंकि यहाँ पर्यायरूपसे जीवको देखा जा रहा है।

सो भैया, पर्यायार्थिकनयसे देखो तो यह जीव अनित्य है और द्रव्यार्थिकनयसे देखो तो यह जीव नित्य है। जैसा स्वतःसिद्ध जीव है वैसे ही यह स्वतः नित्य है इस कारण जीव द्रव्यार्थिकनयसे नित्य ही है। पर्यायार्थिकनयसे देखो तो जीव अनित्य ही हैं। द्रव्यार्थिकनय और पर्यायार्थिकनय दोनोंकी एकसाथ की दृष्टिमें यह अवक्तव्य है द्रव्यार्थिकनय व दोनोंकी एक साथ दृष्टि इन दोनोंको क्रमसे देखो तो यह जीव नित्य अवक्तव्य है। इसी प्रकार पर्यायार्थिकनय और द्रव्यार्थिकनय पर्यार्थिकनय दोनोंको एक साथ ऐसे क्रमसे देखें तो यह अनित्य अवक्तव्य है।

सप्तभंगका उपसंहार—मूल बात यह है कि किसी भी पदार्थमें आप कोई तत्त्व

To report error, please contact vikasnd@gmail.com

Download PDF file from http://is.gd/varniji

देखेंगे तो प्रथम वह जानेगा एक बातको, किन्तु एक बातके जानते ही उसमें सब ७ दृष्टियाँ हो जावेंगी। कुछ तो जानोगे, उससे ही ७ अपेक्षाएं बन जावेंगी परन्तु एकान्तवादी जन जिस एकान्तको जानते हैं उसको ही ग्रहण करते हैं। स्याद्वादकेद्वारा उस एकके जाननेके साथ ७ प्रकारसे निर्णय होता है। (१) जिस एकको जाने उसे और (२) उसके विरुद्धको तथा (३) दोनोंको एक साथ में जाननेपर अवक्तव्य को। यों स्वतंत्र तीन चीजोंको जाना जाता है। फिर इन तीनोंका द्विसंयोगी तीन और त्रिसंयोगी एक, इस प्रकार एक के जानते ही ७ भंग बन जाते हैं। इस सप्तभंगमें एवकार लगाकर उनका उच्चारण करना और उनकी अपेक्षाका स्यात् शब्दका अमोघ मंत्र पहिले लगाना। इस तरह से जो कुछ कहा गया उसका पूर्ण निर्णय भी हुआ और विवादका निषेध भी हुआ।

वस्तुस्वरूपको जानकर एकांग के व्यामोहकी समाप्ति सम्भव—क्षणिकवादी भाई बोलते हैं कि जीव अनित्य है और अभेदध्रुववादी भाई बोलते हैं कि जीव नित्य हैं। उन दोनोंका समन्वय द्वारा समाधान इस स्याद्वादसे प्राप्त हो जाता है। ध्रुववादी आत्माको नित्य अपरिणामी कहते हैं तो द्रव्यार्थिकनयसे सिद्ध ही है कि आत्म-द्रव्य नित्य अपरिणामी है। क्षणिकवादी आत्माको क्षणिक कहते हैं, क्षण क्षण में दूसरी आत्मा हो रही हैं तो यह बात भी पर्यायकी दृष्टिसे सिद्ध होती है। इस पर्याय दृष्टिको अपनाकर स्वरूप सर्वस्वकी बात मानलें तो हम अबुद्ध अशुद्ध हो जाते हैं। और द्रव्यदृष्टि की बातको उतना ही सर्व मानलें तो यह कथन भी अशुद्ध हो जाता है। स्यादवाद ही एक ऐसी अमोघ औषधि है कि जिससे सब विवादके रोग खतम हो जाते हैं, और पदार्थ यथार्थ स्वतंत्र नजर आते हैं। स्याद्वादके द्वारा जीव वस्तुमें ७ प्रकारके भंग सिद्ध हुए हैं। अन्य भी जितने कथन हैं यदि उनमें स्याद्वादका पुट है तो शुद्ध हैं और एकांतकी पुट है तो अशुद्ध है।

स्याद्वादमें अनिष्टपरिहारकी ध्वनि—एक बार गुरू जी सुनाते थे कि कहीं भाषण हो रहा था, उसमें हिंसापोषक एक वक्ता व्याख्यान दे रहा था। उसको भाषण देनेकी इतनी अच्छी कला मालूम थी कि जैसे श्रोता देखे वैसा वह भाषण करता था। बहुत भीड़ हो गयी। दूरसे देखा कि जैन लोग जा रहे हैं सो उस वक्ताने चर्चा छेड़ दी कि दुनियामें ७२ कलाएं होती हैं, पर जैनोंमें ७४ कलाएं हैं। जैन लोग सुनकर खड़े हो गए और यह सुननेकी प्रतीक्षा करने लगे कि वे कौन सी दो कलाएं हममें अधिक हैं। वह वक्ता तो वलिकी महिमाका वर्णन करने लगा और जीववध आदिका भी समर्थन करने लगा। जब व्याख्यान पूर्ण हो गया तब एक जैनने अपने ग्रूपके पं० जी से कहा कि आपने हम लोगोंको अच्छा खड़ा करवाया, भाषणमें तो

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

सारी बातें हिंसाकी कही गयीं। तब पं० जी बोले यह वक्ता भी ठीक कह रहा है। वह जैन बोला—पं० जी क्या कह रहे हो ? हिंसाकी बातोंमें भी सचाई बता रहे हो। तब पं० जी बोले कि मिथ्यात्वकी दृष्टिमें ऐसा ही कहा जाता है कि नहीं ? अशुद्धवाद भी अशुद्ध दृष्टिके उपयोगमें उस अशुद्धोपयोगीको सच हो जाता है। मिथ्यात्वकी दृष्टिमें मोहकी ही बातें हुआ करती हैं, उल्टी ही बातें सूझती हैं। ऐसा देखने वाला मिथ्यादृष्टि क्या अपनी मान्यताको अशुद्ध मान सकता है ? अज्ञानकी दृष्टिमें ज्ञानकी बातें गलत हैं। खैर, अब देखो उसने अंतमें दो कलाएँ ये बतायीं थीं (१) खुद जानना नहीं (२) और दूसरोंकी मानना नहीं। इन दो बातोंका जिकर समयसारमें मिलता है कि खुद आत्माको जो जानते नहीं और आत्मज्ञोंकी उपासना करते नहीं वे आत्मतत्त्वको कैसे समझ सकते हैं। जो धर्मकी बातें नहीं करते हैं वे धर्मकी बातको जानते भी नहीं हैं। जिसने आत्मज्ञ पुरुषोंकी सेवा संगति नहीं की उसको धर्मका परिचय कैसे हो।

दुर्लभ नरजन्मके सदुपयोगकी प्रेरणा—भैया, यह वस्तुका स्वरूप जिसमें यथार्थ प्रतिपादित हो ऐसे आगमका हमने शरण पाया है फिर भी यदि हम आगमके ज्ञानमें अपने उपयोगको नहीं उतारते, अपना उपयोग नहीं देते, केवल गप्पोंमें ही अपना समय गुजारते तो नर जन्म पाना व्यर्थ रहा। सोचो तो सही कि नर जीवन क्या बार बार मिलता है ? जैसा ज्ञान इस जीवने किया है जैसा ही उपयोग बनाया है, उसीके अनुसार कर्मोंका बन्ध है। यह जीव पुण्य कर्मोंका उदय आ जानेसे इस लोकमें छलसे बनावटी भी पोजीसन बना लेता है। यह अपने ज्ञानको स्वरूपमें उतार कर नहीं चल रहा है। सो भैया, अभी तो मनुष्य है यदि कीड़े मकोड़े हो गए तो ? सो फिर इस असंज्ञी अवस्थामें कुछ पुरुषार्थ ही न चलेगा। कीड़े मकोड़े हो जाना इन रागके बन्धनोंका ही परिणाम है। यदि बन गए कीड़े मकोड़े तो कुछ उन्नति करनेका मार्ग ही न मिलेगा, यदि असंज्ञी बन गये तो जिन्दगी बेकार हैं। जिन्दगी तो तब जीवकी सफल है जब वह कुछ कल्याण कर सके। हम आप मनुष्य हैं, अब अपने अपने उपयोगको ठीक करलें, शास्त्रोंमें जो बना बनाया अध्यात्म भोजन मिल गया है उसको खा तो लें। तृष्णावोंसे तो पूरा न पड़ेगा, जो लाखों करोड़ोंका वैभव है उससे तो पूरा न पड़ेगा। सो भैया, आत्मज्ञान करो यही सबसे बड़ा विवेक है। ज्ञानमात्र मैं हूँ ऐसे ध्यान के समय जो जानन भाव का स्वरूप है उसके जाननमें रहें तो आत्माका विशद ज्ञान होता है।

जिसके हितमार्गके लिये सर्व उपदेश हैं, उक्त निर्द्धारणमें जिसका उदाहरण दिया गया है ऐसे इस जीवके जो उपाधिसम्बन्धमें मनुष्यादि पर्यायें हो गई है वे सब मोहक्रियाके फल हैं इस कारण वे सब जीव स्वभावसे अन्य हैं ऐसा द्योतन करते हैं—

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

एसोत्ति णत्थि कोई ण णत्थि किरिया सहावणिव्वत्ता ।
किरिया हि णत्थि अफला धम्मो जदि णिप्फलो परमो ।। ११६ ।।

परम्परासे कर्मबन्धनकी अनादिता—जीव दो प्रकारके होते हैं। (१) संसारी (२) मुक्त। जिन जीवोंका कर्मोंसे सम्बन्ध लगा हुआ है। वे जीव संसारी हैं, और जिनका कर्मोंसे सम्पर्क नहीं रहा वे जीव मुक्त हैं। ये कर्म जीवोंके साथ अनादि से लगे हुए हैं। जब से ये जीव हैं तब ही से ये कर्म जीवके साथ लगे हुए हैं। क्योंकि यदि कर्म किसी दिनसे लगे हों तो उन कर्मोंके लगनेसे पहिले वे शुद्ध कहलायेंगे, कर्मरहित कहलायेंगे। जो कर्मरहित हों वे शुद्ध हैं। फिर क्या वजह है कि उनके साथ कर्म बँध गए। यदि कर्मरहित जीवके कर्म बँध जायें तो कर्मोंका नाश करके जो कर्मरहित हुए, मुक्त हुए याने सिद्ध भगवान हुए, उनके भी कर्म लग जायेंगे, फिर मुक्ति क्या चीज कहलायेगी, फिर तो वह मुक्ति बैकुन्ठके समान हो गयी। जैसे कोई मानते हैं कि बैकुन्ठ में जीव कर्ममुक्त हो कर रहते हैं और जब ईश्वरकी मर्जी रुलाने की होती है तब उसे वहाँ से निकलकर संसारमें जन्म लेना पड़ता है और उनके संसारका चक्र लगने लगता है। ऐसे ही यहाँ कर्मरहित हो गए तो कुछ दिन कर्मरहित बने रहे और फिर अपने आपही कर्मसहित बन गए। कर्मसहित हो जानेसे फिर संसारमें रुलने लगे। ऐसी थोड़े दिनके लिए कर्मरहित अवस्था मिली और फिर कर्मरहित हो गए तो ऐसे कर्मोंकी मुक्तिकी क्या इच्छा की जाय ? विवेक तो यह है कि ऐसा यत्न करो कि जिस यत्नके प्रसादसे फिर कभी दुःख न आयें। यदि मुक्तिके बाद फिर दुःख आया तो वह मुक्ति ही क्या रही इस कारणसे यह ही सुनिश्चित होता है कि जीवके कर्म अनादिकालसे लगे हैं। कर्म लगते क्यों हैं ? जीवके अशुद्ध परिणामको निमित्त पाकर नये कर्म लगते हैं। उन कर्मोंके निमित्तसे जीवके परिणाम अशुद्ध होते हैं। यदि जीवका परिणाम शुद्ध हो गया तो लो कर्मोंका बन्धन भी समाप्त हो गया।

कर्मरहित होनेपर कर्म बँधनेके हेतुका अभाव—जो जीव कर्मरहित है उसके फिर अशुद्ध परिणामोंका कोई प्रश्न ही नहीं है। यदि अशुद्ध परिणामोंके बिना जीवोंके कर्म बँध जायें तो मुक्त भगवानके भी कर्म बँध जावेंगे। फिर तो यह संसार पूरा अंधेरखाता हो जायगा। फिर तो शुद्ध अशुद्ध का कुछ खास अन्तर ही नहीं रहता। शुद्धके भी कर्म लग गये और अशुद्धके भी कर्म लग गये। न्यायकी बात कुछ नहीं मिलेगी, जब न्याय कुछ नहीं रहा तो वस्तु स्वरूपमें भी अन्याय चला जायगा, अटपट व्यवस्थाएँ होने लग जायेंगी। सो न ऐसा हुआ और न होगा। इसका प्रबल प्रमाण यह है कि तभी तो सब वस्तुओंका अस्तित्व बना हुआ है। जितने भी संसारी जीव हैं हैं उनके कर्म लगे होते हैं। ये कर्म विभावके निमित्तसे व वे विभाव कर्मके निमित्तसे

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

हुए थे, यों वे कर्म अनादिसे परम्परासे लगेहुए हैं। अनादिकालसे लगेहुए इन कर्मोंकी उपाधिका निमित्त पाकर संसारी जीवोंके विभाव परिणमन हो रहे हैं। विषय कषायोंके भाव होनेके कारण इन संसारी जीवोंको दुःख होना प्राकृतिक ही बात है। कोई दूसरा इन संसारी जीवोंके कार्य नहीं करता। इन संसारी जीवोंका कोई दूसरा परिणमन नहीं करता। कर्मोंका निमित्त पाकर स्वयं ही जीवके परिणमन याने कर्मके फल अथवा कार्य होने लगते हैं।

निमित्तनैमित्तिकता और स्वतन्त्रता—जैसे लोकमें देखते हैं कि अग्निका संयोग पाकर डेंगचीमें रखी हुई खिचड़ी पक जाती है। अग्नि अपनी जगह पर रखी है, खिचड़ी भी डेंगचीसे निकल कर बाहर नहीं पकती, वह स्वयं ही डेगचीके अन्दर पक जाती है। अग्नि तेज जलती है स्वयमेव ही अग्निका निमित्त पाकर वह खिचड़ी पकती हैं। और भी देखलो, प्रकाशके समयमें कोई भी मनुष्य खड़ा हो, उस खड़े हुए मनुष्यका निमित्त पाकर उस प्रकाशके सम्मुख प्रतिपक्षमें पृथ्वी स्वयं छायारूप बन जाती है। मनुष्य अपनेमें से निकलकर उस जमीनको छाया रूप नहीं बनाता। उस उस जमीनको तो मनुष्य छूता भी नहीं है। ऐसा ही निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध है कि वह पृथ्वी मनुष्यका निमित्त पाकर छाया रूप बन जाती है। यहाँ कोई किसी को करता नही है पर उपादान वैसी ही योग्यता रखता है सो वह योग्य उपादान अनुकूल निमित्त पाकर स्वयं ही छाया रूप परिणम जाता है।

एव स्वमें ही स्वकी परिणति—इसी प्रकार यह पुद्गल कर्म इस जीवको कुछ ही नहीं करते हैं। जीवका स्वरूप जीवमें हैं, पुद्गलका स्वरूप पुद्गलमें है फिर भी ऐसा ही सहज निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध है अथवा उपादानकी कला है, विशेषता है कि वह योग्य निमित्तभूत पदार्थोंका निमित्त पाकर बिकार रूप परिणमनकी योग्यता रखता है, तो बिकाररूप परिणाम जाता है। इसी प्रकार कर्मोंका जब उदय होता है तो अशुद्ध उपादान वाला यह जीव कर्मोदयका निमित्त मात्र पाकर अपनी ही विशिष्ट भाव विक्रियासे अनेक बिकारोंरूप परिणम जाता है। यह है कर्म और जीवोंके सम्बन्धमें आचार्यों द्वारा बताया गया यथार्थ दर्शन। ये कर्म कैसे रुकें, इसका उपाय भी निमित्त नैमित्तिक पद्धतिके प्रसंगमें आ जाता है कि जीव अशुद्ध परिणाम नहीं करे, तो कर्म अपने आप रुक जायेंगे, क्योंकि कर्मोंकी समाप्ति बिकारोंकी निवृत्तिमें हैं।

लौकिक दृष्टान्तपूर्वकबिकार समाप्तिमें कर्मसमाप्तिका विवेचन—जैसे बहुत मोटा दृष्टान्त है कि एक लड़का जिसका स्वभाव गाली देनेका पड़ गया है, वह किसी बड़े लड़केको गाली देता है। बड़ा लड़का गाली सुनना सहन नहीं कर सकता तो वह उस छोटेको मारता है। बड़े लड़केकी मार छोटा सहता जाता पर गाली देना नहीं छोड़ता। बड़ा लड़का मारता फिर छोटा गाली देता, फिर बड़ा मारता पीटता,

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

फिर छोटा गाली देता। उस छोटेका गाली देना न बन्द हुआ और न बड़ेका मारना पीटना बन्द हुआ। वह छोटा लड़का रोता है, दुःखी होता है। अच्छा बताओ छोटे लड़केके न पीटे जानेका उपाय है क्या? वह उपाय बस छोटे लड़केके हाथ है। अगर वह गाली देना बन्द कर दे तो वह पिटनेसे, मार खानेसे छूट जाय।

पर्यायमें परस्पर निमित्तनैमित्तिकता—उक्त दृष्टान्तवत् यह जीव करता है अशुद्ध भाव, कषायके भाव, सो पुद्गलकर्म आ धमकते हैं, बन्धनको प्राप्त हो जाते हैं। जब उन कर्मोंका उदय आता है तब जीवका नवीन अशुद्ध भाव होने लगता है। जीवके अशुद्ध परिणाम होते हैं, उनके निमित्तसे कर्मोंके बन्धन लगते हैं। इस प्रकारकी निमित्त नैमित्तिक परम्परा अब तक चली आती है जिसके फलमें यह सारा संसार इस प्रकार नजर आ रहा है, विचित्र विचित्र परिस्थितियोंमें यह जीव बँधा हुआ है। यह कर्म बन्धन कैसे मिटे? इसका उपाय क्या है? कर्म बन्धन आता कैसे है। कैसे जीव बन्धनमें आता था? जीव अशुद्ध परिणाम करता था कि कर्म आते थे। कर्मोंको न आने देना हो तो उसका उपाय है कि जीव अशुद्ध परिणाम न करे। बिल्कुल सीधा उपाय है किन्तु यह बात कब सम्भव है? यह बात तभी सम्भव है जब कि जीवको यथार्थ ज्ञान हो जाय। शुद्ध ज्ञान जगे बिना अशुद्ध परिणाम नहीं मिटते हैं। सही ज्ञान हो कि विकार भाव समाप्त होने लगते हैं।

तत्त्वज्ञान हुए बिना अशुद्ध परिणमन मिटना असम्भव—जैसे किसी घरमें एक रस्सी आँगनमें पड़ी हुई है, कुछ अंधेरा उजेला है। उस रस्सीकी शक्लको देखकर उस पुरुषको भ्रम हो गया कि यह सांप है। सांपका भ्रम होनेसे वह घबड़ाने लगा, चिल्लाने लगा। अरे ये सांप है चिन्ता करने लगा कि यह अगर घरमें रहेगा तो कभी न कभी किसी न किसी को जरूर काटेगा। वह बहुत घबड़ाता, बहुत चिल्लाता। बाद में वह कुछ धैर्य बनाता है कि जरा देखें तो सही कि कौन सा सांप है। बिसैला है कि साधारण है? सो हिम्मत बना कर वह थोड़ा सा देखनेके लिए चला तो कुछ समझमें आया कि अरे यह तो हिलता भी नहीं, चलता भी नहीं, यह कैसा सांप है? और जरा सा चलकर देखा तो समझमें आया-यह तो रस्सी है सांप नहीं है। इतना समझमें आते ही घबड़ाहट खतम हो गयी, भीतरका सब भय खतम हो गया। अब क्या हो गया वही घर है, वही रस्सी है, वही आदमी है, न उस रस्सीको पीटा मारा और न कुछ क्रोध किया किन्तु जहाँ सच्चा ज्ञान जगा कि यह सांप नहीं है, यह रस्सी है वहीं ऐसा सच्चा ज्ञान जगते ही सारे संकट खतम हो गये।

भैया इसी प्रकार इस जीवने भावसंकटका भार अपने ऊपर लाद लिया है, और इन कर्मोंका भी भार लादा है। सो जगह जगह नाना योनियोंमें नाना शरीरोंमें

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

यह जीव बँधा फिरता है ये सारे संकट कैसे मिटेंगे? बस ज्ञानसे ही ये सारे संकट मिटेंगे। जरा यह जीव साहस तो करे, बाह्य पदार्थोंसे अपना दिल तो मोड़े, अपनी ओर तो झुके, अंतरंगके दर्शन तो करे, देखे कि मैं केवल चैतन्यस्वरूप हूँ। यह तो अमूर्त है, सबसे पृथक् वस्तु हैं, समस्त पदार्थोंका केवल जानने वाला है, इसका काम मात्र जानन है, इसका स्वरूप ही जानन है। सो यह ज्ञानके द्वारा अपने आपको जानता रहता है। इतना ही तो इसका काम है, इतनी ही तो इसकी दुनिया है। इसके आगे अन्य कुछ नहीं है, यह मैं तो सुरक्षित ही हूँ। यह न किसीसे छेदा जा सकता है, न पीटा जा सकता है, न रोका जा सकता है, न अग्निसे जलाया जा सकता है, न पानीसे भीग सकता है, और न हवासे उड़ सकता है, न इसे कहीं रोका जा सकता है, यह स्वयं सत् हैं, ज्ञानमात्र है, सबसे न्यारा है, इसका तो।यही है इसका अन्य कुछ नहीं है, जैसा ज्ञान स्वरूप यह है खुद, खुदके ध्यानमें आ जाय, सच्चा ज्ञान जग जाय तो ये सारे संकट दूर हो जावेंगे, सारे शरीर के बन्धन समाप्त हो जायेंगे, कर्म बन्धन रुक जावेंगे, और यह साधक स्वयं परम आनन्दमय हो जायगा।

अपनी ही भ्रमवृत्तियोंसे पतन व ज्ञानवृत्तियोंसे उद्धार—इस संसारी जीवने भ्रम करके, राग द्वेष बढ़ाकर स्वयं ही अपनी कुगति कर ली है, सो यह जीव स्वयं ही विकाररूप परिणमता है, और इसका कार्य स्वयं होता जा रहा है। कर्म इस जीवके कार्य नहीं करते किन्तु कर्म अपनी ही शक्तिसे सम्पन्न हैं, उदयमें हैं। कर्मोंकी जीवस्वरूप गति नहीं चलती है। कर्मोंके उदयमें, कर्मोंका निमित्त पाकर यह जीव स्वयं विकाररूप परिणमता है। इन खोटे कार्योंका फल है कि यह नाना विभावों व नाना असमानजातीय पर्यायों रूप कार्योंको उत्पन्न करता है। पर्यायोंमें ऐसा कोई पर्याय नहीं है जो निश्चल हो, टंकोत्कीर्णवत् स्थिर हो, ऐसी कोई परिणति नहीं है। क्योंकि यह परिणति उत्पन्न होती रहती है और बिलीन होती रहती है। जब जब जिन जिन कषायोंका उदय होता है, कर्मोंका उदय होता है उस समय यह जीव स्वयं ही मनुष्यादिक पर्यायोंरूप हो जाता है। इन जीवोंके कषाय दूर हो।तो कर्म मिटें। पहिली करतूतें कर्मोदयके फलमें आईं, इस पद्धतिमें पहिला कार्य समाप्त हो जाता है दूसरा कर्म होने लगता है सो उत्तरोत्तर कार्य होते हैं और पूर्व-पूर्व कार्य विलीन होते हैं। इस कारण इन संसारी जीवोंके कार्योंमें कोई भी कार्य ऐसा नहीं है जो नित्य हो, सदा रहने वाला हो, इस ही पर्यायदृष्टिसे अनित्य भावनाको बताया गया है। जैसे कि हिन्दी काव्य में कहते हैं :—

राजा, राणा, क्षत्रपति, हाथिनके असवार, मरना सबको एक दिन अपनी अपनी बार। जितने भी ये जीव दीख रहे हैं, राजा हो, राणा हो, महाराणा हो,

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

धनी हो, बलवान हो, पंडित हो, सबको एक दिन मरना है अर्थात् इस पर्यायको छोड़ना है, इतर पर्यायमें बिलीन हो जाना है।

संसारकार्यका फल क्लेश—भैया, इस पर्यायमें कोई परिणति ऐसी नहीं है जो सदा रही हो, इन खोटी योग्यताओंके कारण और कर्मोंके उदयका निमित्त पाकर यह जीव खोटे कार्य करता है। वे खोटे कार्य हैं क्या ? इस चेतनकी विशेष परिणति रूप कार्य है। दशा, अगली दशा, विलक्षण दशा जो इन्द्रियों द्वारा भी ग्रहणमें आवे मन द्वारा भी ग्रहणमें आवे ऐसी ये सब स्थूल दशायें इन जीवोंके अशुभ परिणामोंके कारण हैं। सो कर्म अशुभ परिणति नहीं करते। सबके कर्म नाना प्रकार के विचित्र दशाओं से सफल हो रहे हैं। ये संसारी जीव अशुभ परिणामोंके कार्य करते हैं। ये अशुभ परिणाम जीवके स्वरसतः नहीं होते, उपाधिका निमित्त पाकर संसारी जीव अशुभ परिणामोंके कार्य करते हैं। ये अशुभ परिणाम जीवके होने से जीवके कार्य सफल हो रहे हैं अर्थात् दुनियामें जीव भटक रहे हैं, सुख दुःख की व्यवस्थाएँ बना रहे हैं। यह सब जीवके खोटे परिणामोंका फल है। ऐसा इस संसारका फल ही चाहते हैं तो अपने ज्ञानको सोने दें और खोटी परिणतिमें चलें, और यदि संसारका यह फल ठीक नहीं लगता तो खोटे परिणामको त्याग दें।

आत्मस्वरूपकी दृष्टिसे सर्वत्र अन्तरका अभाव—जीव जितने हैं वे सब एक स्वरूप ही हैं, स्वरूपमें किसी से भी अन्तर नहीं है। कोई भी जीव हो, चाहे एकेन्द्रिय हो, चाहे पंचेन्द्रिय हो, वे सब शुद्ध भगवान सम हैं। सब एक स्वरूप हैं। जितने भी पदार्थ हैं सबका कुछ न कुछ करनेका स्वभाव है। कार्यके बिना पदार्थ नहीं रहते। कार्यके माने परिणति। प्रत्येक पदार्थोंमें परिणति होती है। कौनसे पदार्थ ऐसे हैं जो हैं तो सही और उनकी परिणति न बने, कोई पर्याय नहीं हो जिसकी कोई सकल सूरत न हो। पदार्थ है तो उसकी परिणति अवश्य है। जीव भी पदार्थ हैं। तुम भी पदार्थ हो तो तुम्हारी भी परिणति है। तुम्हारी परिणति क्या है ? चैतन्य स्वभाव रूप। जीव तो स्वरसतः स्वभावरूप परिणमता है। उसका जो कार्य होगा वह शुद्ध भावरूप होगा। पुद्गलके कार्य तो चलें फिरें, टक्कर लगाने से हटें, खिसकानेसे हटे आदि है। पर जीवका यह काम नहीं है।

जीवकी दुर्गतिका हेतु भावात्मक श्रम—जीवका काम भावात्मक है, सुखी होना हो तो सुखी हो ले, दुःखी होना हो तो दुःखी हो ले, विशेष परिणाम भी करलें, भाव भी करले, इसके अतिरिक्त और कोई कार्य नहीं किया जा सकता। जीवका स्वरूप चैतन्य है, उसकी जितनी भी परिणति है सब चैतन्यात्मक है। चैतन्यात्मक कार्य बने रहें इतने से कोई हानि नहीं है। पर इस जीवके साथ जो मोह

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

लगा हुआ है, जब तक मोहका मिश्रण मिटता नहीं है, तब तक उसे अपनी करतूतका फल मिलता रहता है। यदि मोह न रहे तो संसारका कोई फल नहीं मिलता। कोई नाना कैसा ही विचार करता है, किसीका राग करता है उसका फल है कि कोई पशु बन रहा कोई पक्षी बन रहा, अनेक तरहकी स्थिति हो रही है यह सब इस मोहका ही फल है। मोह न हो तो जीव परमात्माकी तरह शुद्ध निराकुल रहेगा।

कैवल्यमें आपत्तिका अभाव—भैया, बात तो यह है कि जैसे पुद्गल परमाणुओंके कार्य उन एक एक परमाणुओंमें ही चल रहे हैं, वे अबद्ध परमाणु हैं, तो उसका कार्य कोई बिडम्बना करनेवाला नहीं। किन्तु दूसरे अनेक परमाणुओंसे वह मिल जाय तो उसकी परिणति व्यावहारिक बातोंको बनानेके लिए समर्थ है। अर्थात् उनका स्कन्ध छिदने, भिदने योग्य हो जाता है। इसी प्रकार केवल आत्माकी बात रहे तो उसमें कोई खराबी नहीं है, कोई बिडम्बना नहीं है। पर इसके साथ जो मोह मिल गया इसके कारण मनुष्य पशु पक्षी इत्यादि अनेक कार्य बन गये। तो मोह जब मिलता है तभी जीवके कार्य संसार फलको देते हैं। मोहका नाश हो तो जैसे अन्य परमाणुवोंका सम्बंध नष्ट होनेपर एक परमाणुकी परिणति संसारके, व्यवहारके कार्य करने में समर्थ नहीं होती है। इसी प्रकार एक आत्मा ही केवल रह जाय उससे मोह दूर हो जाय तो मनुष्य पशु पक्षी आदि रूप फल नहीं बनेगा। फिर तो क्या है, जो द्रव्य है उस द्रव्यका सही स्वभाव परिणमन रहेगा।

परके संगसे ही विपत्तियों और गड़बड़ियोंका प्रादुर्भाव—जितनी ये गड़बड़ियाँ चल रही हैं सब मेलने कराई हैं। अब अपने जीवनमें देख लो अकेला पुरुष है, किसीसे भी सम्बन्ध नहीं है तो वह आनन्दमग्न है। किसीकी चिन्ता न करो। जिसने चिंताएँ की हैं, दूसरे जीवोंसे स्नेह रखा है सोई जीव फस गया, उसका बन्धन हो गया। तो जहाँ दूसरोंका संग मिलता है वहाँ बाधाएँ भी आ जाती हैं और जहाँ अकेला ही हो वहाँ बाधाएँ नहीं आती हैं। अच्छा तो यह है कि गृहस्थीमें रहते हुए भी अपनेको कुटुम्ब, परिवार, मित्रोंसे अलग जानो। अपनेको अकेला ही समझे तो वही ज्ञानी है। घरमें रहते हुए भी समझमें आ जाय कि घरके ये दसों आदमी स्त्री पुत्र आदि मेरे हैं नहीं। उनके पीछे चिन्ताएँ न करना चाहिए। वे सब अपने आपमें हैं, स्वतन्त्र हैं, किसी अन्यसे मिले हुए नहीं हैं।

केवलताके अनुभव बिना संकटोंका बिकार—भैया, अपने आपको मोहसे रहित अनुभव करो, अकेला अनुभव करो। अपनेको अनेकसे मिला हुआ अनुभव करनेपर अशान्ति ही रहती है। यदि शुद्ध दृष्टि रहे तो आनन्द ही आनन्द है। अब

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

भीतरसे मोहको छोड़ो, अपनेको ज्ञाता द्रष्टा अनुभव करो, अकेला अनुभव करो। अपनेको आनन्दमें रखना चाहते हो तो अपने सहजभावका अनुभव करो, एकत्वका अनुभव करो। यदि ऐसा अनुभव न कर सके तो आकुलताएँ ही बनी रहेंगी। बतलावो भैया! घरके लोगोंसे, पुत्र, परिवार इत्यादिसे मोह आ गया, उनसे तेरा कोई सम्बन्ध है क्या? तेरा कुछ भी तो उन घर वालोंसे सम्बध नहीं। अगर तेरे घरमें इन जीवोंके बदले और कोई जीव आते तो क्या उनसे न मोह करते? तो फिर अपने घरके लोगोंको अपना मानना और दूसरोंको गैर मानना यह तो ठीक नहीं। यह मेरा है, यह उसका है, यह पराया है, ये सब मोहकी ही तो व्यर्थकी बातें हैं। यदि इन विषयोंमें ही फसे रहे तो इससे तो सदा अन्धकारमें ही पड़े रहोगे। सही बात को सही न मानने में तो परेशानियाँ होती ही हैं।

जैसे को तैसा मानना ही सुलझनेका उपाय—जो जैसा है उसे वैसा मानना ही ज्ञान है। यहाँ मेरा कुछ नहीं है, मैं तो अकेला ही हूँ, यदि ऐसा भाव रहे, सबको छोड़कर अपनेको अकेला अनुभव करे तो परेशानियाँ न रहेंगीं। सर्वत्र ही अपनेको अकेला अनुभव करो। ऐसा विश्वास यदि बनाओ तो धर्म रहेगा। यदि दूसरोंसे मोह है तो आकुलताएँ ही रहेंगी। इस मोह से तो अधर्म ही होगा, लाभ कुछ भी न रहेगा। सो आचार्य महाराज बतलाते हैं कि जब तक मोह रहेगा तब तक तुम्हारी परिणतिसे संसार बनता रहेगा। मोह न रहे तो तुम्हारी यह चैतन्यात्मक परिणति तुम्हें भगवान बना देगी।

संसारी बनना व मुक्त होना अपने उपयोगपर निर्भर—भैया, संसारी बनते हो तो अपने आप बनते हो, भगवान बनते हो तो अपने आप बनोगे। प्रभुकी भक्ति तो अपना ध्यान सही करने के लिए हैं। प्रभु अपनी जगहसे उतर कर यहाँके मोही पापी जीवोंको ऊँचा उठानेके लिए तकलीफ क्यों उठायेगा? उसे ऐसी क्या अटक पड़ी है? वह प्रभु तो शुद्ध है, ऐसा वह कर ही नहीं सकता है। वह तो समस्त विश्वका ज्ञाता है और अपने आनन्दमें मग्न है, इन चक्रोंमें नहीं है। भैया, यह मनुष्य जन्म बड़ी कठिनाईसे मिला, इस मनुष्य जन्मको यदि विषय भोगोंमें ही खो दिया तो इस उद्धारक भवको यों ही खो दिया। जैसे समुद्रमें रत्न फेंक देनेसे खोजनेमें नहीं आता इसी तरह भोगोंके गहरे भयानक समुद्रमें इस आत्माको अगर फेंक दें तो यह मनुष्य जन्म मिलना बड़ा कठिन है। सो जितनी मेहनत धन वैभव पानेमें करते हो उससे अधिक मेहनत ज्ञानके प्राप्त करनेमें करना चाहिए। असली बात तो यह है। अगर मोह ऐसा पड़ा हुआ है कि ज्ञानके लिए दृष्टि ही न जायगी, लड़कों बच्चोंमें ही मोह बना रहेगा, उनके लिए ही हजारों लाखों रुपया खर्च कर डालेंगे। अपना कुछ न सोचें तो सब गुड़ गोबर ही समझें।

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

ज्ञानयात्राका महत्त्व—अरे भैया, धर्मकी बात मनमें लावो और यह विचार करलो कि चलो ज्ञानयात्रा करलें। २–३ माह यात्रा करनेमें हजारों रुपया खर्च कर दिया। खैर ठीक है मगर उस यात्रासे अधिक ज्ञानकी यात्रा है। हजार न खर्च करो, दो सौ खर्च कर दो, एक अच्छी जगह दो माह को बैठ जावो, जहाँ ज्ञानकी बातें मिलती हैं, उपदेश मिलता है। २ महीनेकी ज्ञानकी यात्रा करलो तो गाँठमें लेकर भी कुछ आवोगे। अन्यथा तो यात्रा करके सिर्फ मन भरना है। गिरिनार जी कर लिया, पावापुर कर लिया, चम्पापुर कर लिया, कर तो लिया, मगर पूर्ववत् मोह है, प्रीति है, आरम्भ है, परिग्रह है, फर्क कुछ नहीं पड़ा। यात्राका तो फल होना था कि विषय कषायोंमें कुछ कुछ फर्क पड़ता। दस बार यात्रा कर आवें मगर फर्क नहीं पड़े तो बताओ उसका फल क्या मिला ? केवल उस यात्रासे मन ही तो भर लिया। अगर अपने ज्ञानकी यात्रा करो तो पूरा पड़ेगा नहीं तो पूरा नहीं पड़ेगा। इस यात्रामें भी ज्ञानकी बात आवे तो यात्रा है। अब यात्रा भी करते जा रहे हैं और संगमें रहने वाले यात्रियोंसे लड़ते झगड़ते भी जा रहे हैं तो यह यात्रा नहीं हुई। यदि संतोष आवे, वैराग्य आवे तो यह यात्रा सफल है।

ज्ञानातिरिक्त सर्व परिस्थितियोंकी असारता व आत्महितकी प्रेरणा—सो भैया, अपना हित चाहते हो, अपनी आत्माका विकास चाहते हो तो ज्ञानोपयोगसे अपना पोषण करके अपनी भलाई करलो। यह जग लुटेरा है, ये सब समागम विनाशीक हैं, इस विनाशीक समागममें रहके भी एक मौका मिला है आत्महित करने का। सो इस मौकेमें इन चक्रों और बातोंकी उपेक्षा करलो। घरमें रहने वाले जो १० व्यक्ति हैं उनके साथ कर्म लगे हैं। तुम किसी के कर्मोंके ठेकेदार नहीं हो। उनका उदय जब खराब आयगा तो क्या कर लोगे ? उन लड़के बच्चोंका उदय अच्छा है इसलिए तुम उनकी नौकरी करते हो। ऐसा जानकर दूसरे जीवोंकी चिन्ता छोड़ो और अपने हितकी बातमें ज्यादा चित्त दो, अपने तन, मन, धन और बचनोंको धर्ममें लगावो तो अपने आपको कुछ फल भी होगा। और यदि विवेक नहीं उत्पन्न कर सके तो सारे समागम बेकार रहे। सो कहते हैं कि धर्म रूप रहना है तो समागम के ज्ञाता द्रष्टा रहो और ज्ञानानुभूतिकापुरुषार्थ करो।

अभी कोई दूसरा आदमी गिर पड़े तो उसको देखकर वेदना उत्पन्न नहीं होती, चाहे हंसी आ जावे। और जिसको अपना मान रखा है उसको जरा सी चोट आ जावे तो विषाद पैदा होता है। यह जो दुवाभांति है यही तो इस जीवके संकट लग गया है। यही मोह कहलाता है। इस मोहको मेट दो। इस मोहको मेटकर केवल ज्ञाता द्रष्टा रहो। जब मिले हुए स्कन्धोंसे कोई परमाणु मुक्त हो जाय याने एक परमाणु स्कन्धोंसे छट जाय, अकेला रह जाय तो वह न पकड़ा जा सकता, न काटा

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

जा सकता, न भेदा जा सकता, न जलाया जा सकता। यहाँ भौतिक फल न मिलेगा, भौतिकता न रहेगी, वह शुद्ध अणु रहेगा। इसी तरह यह जीव मोहसे छूट जाय, जिस मोहके कारण यह मूर्तिमान बना फिर रहा है, तो यह आत्मा केवल शुद्ध पवित्र अपनी परिणति रखेगा फिर इसमें कोई क्लेश ही न रहेंगे।

अपने पतनका हेतु अपना ऐब—जब तक यह जीव रागादिक भावोंमें जकड़ा होता है तब तक इसकी दुर्गति होती है। जिसे कहते हैं कि चौरासी लाख योनियोंमें यह जीव चक्कर लगाता रहता है और दुखी होता रहता है। कोई मनुष्य यहाँ भी यदि बाजारमें कोई ऐब करदे, दुराचारका काम करदे तो उसके ऊपर जूते, लाठी बरषाये जाते हैं। वह जो पीटा जाता है तो उसकी करतूत से ही पीटा जाता है। किसी मनुष्यकी लोग तारीफ करें कि यह मनुष्य बड़ा सज्जन है, इसका बड़ा सहारा है, या उसकी तारीफ करके, आश्रय करके उसका सहारा ताकते हैं सो कोई सोचे कि इसको सब चाहते, यह सब भूल है। उसका सदाचार सद्व्यवहार ही तारीफ कराता है। और, पिटनेवालेने दुराचार किया था तभी तो सताया गया। क्या जीवका कोई ऐसा भी नाता है कि वह पाप ही करे और लोग उसको पसंद ही किया करें, जीवका तो सब पदार्थों के साथ मात्र जानने देखने का नाता है।

सदाचार ही प्रतिष्ठाका कारण—क्या भैया, कोई आदमी चोरी करता हो, डकैती करता हो, दूसरेकी स्त्रीको हरता हो, अन्याय धोखासे परिग्रह जोड़ता हो, कंजूस हो फिर भी उसको हितू मान उसकी ही प्रसंसा करे ऐसा उससे नाता है कोई क्या ? नाता तो किसीसे नहीं है, यदि कोई भला है तो उसको सब भला कहेंगे। खुद बुरा है तो वह तिरस्कृत कर दिया जायगा। औरकी बात ही क्या करें, यदि आपका लड़का ही कपटी हो जाय, खोटा हो जाय, आपके भी विरुद्ध हो जाय तो आपही अपने लड़केसे अपना मुख मोड़ लेंगे। तो है कौन किसका ? दुराचार है तो सब बुरा कहते हैं, अगर सदाचारका मार्ग है तो लोग उसका सत्कार करेंगे। यदि वह व्यक्ति अच्छी तरहसे रहता है तो उसको देखकर लोग उससे शिक्षा लेते हैं, उसकी उपासना करते हैं, वह व्यक्ति त्यागी है, वही ऊँचा है, वही सदाचारी है, अगर वह व्यक्ति कभी दुराचारी बन जाय तो फिर उसको कौन त्यागी मान सकेगा ? जब तक सदाचार है तब तक सत्कार है। त्यागसे ही पूरा पड़ेगा, त्यागीको, सदाचारीको इसीलिए लोग पूजते हैं।

त्यागके पूज्यताकी साधनता—यथार्थ तो यह है कि लोग त्यागको पूजते हैं, व्यक्ति को नहीं। उसके त्यागको भी परमार्थसे नहीं पूजते हैं, यदि उसका त्याग सुहा जाता है,उसका त्याग उत्तम मानो जाता है तो इसभावको लोग पूजते हैं। सो सही बात

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

अपने ज्ञानकी है। आपके ज्ञानमें जब तक भलापन नहीं आया तब तक आप किसी भी त्यागी को, किसी भी सदाचारी पुरुषको पूज नहीं सकते हैं । सो परमार्थसे आप अपनेको ही पूजते हैं। न तो दूसरेके त्यागको आप पूजते हैं और न पुरुषको, किन्तु अपने आपको पूजते हैं ये तो सब जीव हैं और अपना अपना परिणमन करते हैं, इनके साथ जो मोह लग बैठा है उसी से सारी गाड़ी उल्टी हो गयी। इससे न तो अपना स्वरूप ज्ञात हुआ, न ज्ञाता द्रष्टा रहा, न आनन्दमग्न ही रहा। इस मोह को त्याग कर ज्ञानरूपमें यह जीव परिणमन करे, तो भला हो सकता है। यदिमोह न त्याग सके तो फलमें क्लेश ही मिलेगा।

आत्मदृष्टिसे च्युत आत्मपरिणतिमें संसारकी कारणता—आत्मा तो चेतन है, इस चेतनका जो कार्य है वह चैतन्य परिणमनस्वरूप है । चैतन्य परिणमन प्रति समयमें नया-नया चलता रहता है। सो उत्तर कालमें चैतन्य परिणमन होनेपर पूर्व कालमें हुआ चैतन्य परिणमन उस ही चेतनमें बिलीन हो जाता। और उत्तर कालमें जो और चैतन्य परिणमन हुआ सो पूर्वका यह चैतन्य परिणमन भी उसमें बिलीन हो गया। जैसे यह एक अंगुली है, अभी सीधी है, इसके बाद जब यह टेढ़ी हो गयी तो जो इसका सीधा परिणमन था वह अंगुलीमें बिलीन हो गया। अब वह परिणमन नजरमें न आयगा। इसके बाद उस अंगुलीको सीधा करलें तो अंगुलीका टेढ़ापन इस अंगुलीमें बिलीन हो गया। इसी तरह प्रत्येक द्रव्यका नवीन परिणमन होता है, पूर्व परिणमन उसी पदार्थमें बिलीन हो जाता है, उत्तर परिणमनरूप हो जाता है। तो चेतन भी अपना चैतन्यात्मक कार्य करते हैं वे चैतन्य परिणमन प्रत्येक समय नवीन नवीन चलते रहते हैं। इस आत्माकी स्वयमेव चलती हुई चक्कीमें मोहका सम्मेलन होनेसे इसकी परिणति विशिष्ट बन जाती है और वह परिणति मनुष्य, तिर्यञ्च, नारकी, देव आदि पर्यायोंका निष्पादन करनेकी कारणभूत हो जाती है । इससे संसारी जीवोंकी यह क्रिया सफल हो रही है। सफल होनेका मतलब कुछ अच्छा नहीं है। इस फलसे मतलब संसारसे है। यह क्रिया संसार फलको दे रही है, चतुर्गतिके जीवोंको भटका रही है।

क्रियाफलका दृष्टान्त—जैसे कि एक परमाणु दूसरे परमाणुकी संगति पा लेने से स्कंधमें बँध जाय तो उस परमाणुकी परिणति स्कंधके कार्योंको बना देनेमें सफल हो रही है और परमाणु स्कन्धमें आकर वे एक भौतिक रूप रख लेते हैं। जैसे यह चौकी, यह चटाई, यह काठ वगैरह नजर आते हैं इसलिए ही स्कंधकी सकल बन गयी, तो अब इन्हें उठा सकते हैं, बन्द कर सकते हैं यहाँसे उठाकर ले जा सकते हैं, पर संगमुक्त परमाणुको कोई नहीं उठा सकता है, न तो कोई बन्द कर सकता है,

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

न यहाँसे वहाँ ले जा सकते हैं, पर वह परमाणु स्कन्धका संग पा लेने से देख लो, ये सब बँध रहे हैं। सब उठाये जा रहे हैं, जलाये जा रहे हैं, अनेक बातें होती हैं।

क्रियाफलका दृष्टान्त—इसी प्रकार इस जीवके ये कार्य जीवके ही तो हैं, स्वतः सिद्ध हैं, मूलमें हैं, चैतन्यस्वरूप हैं, स्वरसतः चैतन्यात्मक हैं, पर मोहका मिश्रण होनेसे ये ही परिणतियाँ संसारफलको बना रही हैं, और इन परिणतियोंमें ऐसा मिश्रण बना है, मिश्रित होकर एक ऐसी परिणति बन गयी है कि उसमें कषायोंका और चैतन्यात्मक परिणतियोंका विवेक करना कठिन हो गया है। वे एक परिणति हैं, क्योंकि चैतन्य द्रव्य है, सो उसकी एक समयमें एक ही परिणति है पर वह मोह उपाधिसे मिश्रित है सो उसमें ज्ञानी जीव विवेक कर डालता है। जो चीज मिट जाया करती है, मिट जाती है और मिट जायगी वह तो जीवका अतत्त्व है और जीवकी ही सत्ताके कारण जीवमें स्वरसतः उठने वाले कार्य जीवके तत्त्वरूप हैं, किन्तु संसारी जीवको देखलो यह मोह होनेके कारण अपना कैसा सर्जन करते चले जा रहे हैं। आज मनुष्य है तो जैसा यह मनुष्यका अंग मिला, हाथ, पैर, नाक, मुँह मिले उसी रूपमें यह आत्मप्रदेश फैल गया और जैसी यह गति मिली उसके अनुसार इस जीवके भाव बन गये।

आत्मस्वभावकी ओर झुकने वाली परिणति ही शुद्ध सृष्टिका कारण—अब जीवकी मूलमें ही वही परिणति जब केवल बन जाती है, मोहसे हट जाती है, तो जैसे एक परमाणु उस स्कन्धसे हट जाता है, अलग हो जाता है, केवल रह जाता है तो उसकी परिणति अब वह कार्य नहीं कर सकती जो कार्य स्कन्धरूपमें करती थी। अब वह परमाणु न बाँधा जा सकता, न छेदा जा सकता, न उसका कुछ व्यवहार ही बनता। इसी तरह जिस आत्माकी परिणति मोहसे हट गयी, केवल ज्ञानज्योति स्वरूप रह गयी, अब वह आत्मपरिणति विशुद्ध हो गयी, उसकी परिणति मनुष्य, तिर्यञ्च आदि संसारी अवस्थाओंकी सृष्टि करनेमें असमर्थ हो गई। वह तो अपनी शुद्ध सृष्टिमें आ गई। तो जैसा वह आत्मा परम द्रव्य है, जैसा स्वभाव है, वह परम स्वभाव होनेसे वह परिणति परम धर्मरूप हो गई, अब इस संसारकी सृष्टिको बनानेमें असमर्थ हो गई।

दृष्टिके अनुसार सृष्टि—भैया, आप हम सब आत्मा हैं, अपनी अपनी दृष्टि के अनुसार अपनी अपनी सृष्टि बना रहे हैं। कोई मनुष्य हुआ, कोई पशु बना, अन्य अन्य पर्यायों रूपमें रहे, इन सबका संगम करने वाली तो उन उनकी परिणति है। मोह राग द्वेषसे सहित चैतन्य कार्य इस संसारकी सृष्टिको कर रहे हैं। मोह बाहर हो जाय, इष्ट अनिष्टका विचार हो जाय, किसी प्रकारके राग द्वेष विकल्प न रहे, शुद्ध

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

चैतन्यात्मक परिणति हो, तो अब वह न इस संसारी पर्यायको रचता है और न विषय कषाय भावोंको रच सकता है और न उसके कर्मोंका बन्धन हो सकता है, उसको यह कहा जायगा कि यह परम धर्मरूपपरिणति अब फलरहित हो गई। संसारके कार्योंको न बना सके इसही को विफलता कहते हैं। परम धर्म तो यही है। यदि संसारफल तुम्हें मीठा लगता हो कषाय करो और संसार में रुलो।

परम धर्मके लिए कर्त्तव्यका निर्देशन— परम धर्मके लिए अपना कर्त्तव्य है कि अपनेको सबसे न्यारा, अकेला अपना स्वरूप मात्र, चैतन्यस्वरूप अनुभव करें। कुछ जाननेमें आये तो उसका मात्र ज्ञाता द्रष्टा रहे, उनमें यह मेरा है, यह पराया है, यह इष्ट है, यह अनिष्ट है, ऐसी कल्पनाएँ, आकुलताएँ न उठ सकें। यदि ऐसा बन सका तो इसको ही धर्म कहते हैं। अपने आत्माको इस प्रकारसे ढालनेकी कोशिश करो कि मेरेमें दूसरेके प्रति मोहका भाव न उत्पन्न हो। घर कुटुम्बमें चित्त दौड़ाते हैं तो यहाँ चित्तका दौड़ना आसान लगता है, इन भिन्न पर तत्त्वोंमें झुकना आसान जचता है। लोकव्यवस्थामें यहाँ पर घर परिवार वैभव तुम्हें मिला है सो मोह करलो, जो चाहो सो करलो, परन्तु इसका फल बड़ा कटुक मिलेगा।

विषय कषायका भोग तो आसान किन्तु फल मँहगा—विषय कषायोंका बड़ा मँहगा फल प्राप्त होगा, वह क्या फल है? आकुलताएँ, कर्म बन्धन, नाना झंझटें, इत्यादि फल हैं। और नहीं तो बैठे बैठे आप यह सोचकर दुःखी हो जायेगें कि देखो स्त्री पुत्रोंके पीछे कितना परिश्रम किया, इसके पीछे कितना कष्ट उठाया, इनको कितना राजी रक्खा पर ये पूरे तौरसे मेरे मन माफिक नहीं चलते हैं। अरे मन माफिक तो कोई चल ही नहीं सकता है। चलता भी है वहाँ कोई, तो फर्क रह जाना नियमित ही है। कुछ न कुछ फर्क रह ही जाता है। भैया, इनमें तुम कुछ कर ही नहीं सकते, तुम तो विषय कषायको भोग रहे हो। किसी भी पर पदार्थके प्रति मोह न रहे, बस यही धर्मका पालन है।

शुद्ध ध्येयके बिना बिडम्बना—हम आप मन्दिरमें भगवानके दर्शन करने जाते हैं तो भगवानको कितने ही लोग यह कह जाते हैं कि भगवान हम खुश रहें, घरके सब लोग खुश रहें। मुखसे कहते जाते हैं। अभी मनमें ही रक्खें, इतनी बात नहीं, भगवानसे कहने तक लगते हैं कि भगवान हमारे घरके लोग खुश रहें। कहाँ तो इतना परिश्रम करके, इतने कष्ट सहकर मंदिर गए, और गौड़े तोड़े, लेकिन बाहरी पदार्थोंमें ही रूचि लगाए हैं, बाह्य पदार्थोंकी ही आशा रख रहे हैं सो मनमें तो अधर्म है और श्रम ही शरीरसे किया जा रहा है, फिर मंदिरमें आकर धर्म कहाँसे लग जाय। धर्म तो मोह क्षोभके झंझटसे रहित परिणतिका नाम है। भगवानकी

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

मुद्राके दर्शन करके हमें शिक्षा लेना चाहिए कि मुझको भी मोहरहित होना चाहिए। मोहरहित होनेसे ही इस आत्माका उद्धार है।

भैया ! भगवानकी मूर्ति देखकर यह मन चक्कर काटता फिरे कि हमारे घरके लोग भी खुश रहें, हम भी खुश रहें तो यह धर्म कहाँ हुआ ? जरा भी तो धर्म नहीं हुआ। कोई देवी देवताओंके आगे यह जाकर माँगे कि हम खुश रहें तो उससे तो अच्छा है कि अपने महाबीर स्वामीके आगे जाकर लौकिक सुखोंको मांग लें, ऐसा यदि ख्याल हो तो मेरे ध्यानसे अच्छा नहीं हैं, कुछ अन्तर नहीं है। मिथ्यात्व पूरा है, वहाँ उन कुदेवोंके आगे वे लोग सुख मांगते है। यहाँ भी बिषय सुखकी बातें लोग महावीर-स्वामीसे माँगते हैं कि कुछ दे दें। इन बिश्वासोंसे महावीर स्वामीको इन माँगने वालोंने अपने उपयोगसे बिगाड़ दिया कि नहीं ? मोही, संसारी दुखिया प्रभूको बना दिया कि नहीं ? वे तुम्हारे बनानेसे कुछ नहीं बन जाते, पर इन विश्वासोंसे मिथ्यात्व रहा कि न रहा ? चाहे देवसे मांगो चाहे कुदेवसे माँगो, मिथ्यात्व तो है ही। अन्तर केवल भावी आशासे है। भविष्यमें अन्तर हो सकता है। अनुमान तो कमसे कम इस भगवानकी मूर्तिके दर्शन करने वालोंके प्रति तो आता ही है कि संभव है कुछ दिनोंमें, कुछ वर्षोंमें बुद्धि बदल जायगी। कुछ साधुजनों, पंडितजनोंके उपदेश मिलें तो सन्मार्ग प्राप्त हो जायगा। इस अनुमानसे वर्तमानमें तो अन्तर न पड़ जायगा। संभावनाका अन्तर है पर इससे क्या, वर्तमानमें तो बिष पीनेका ही फल मिलेगा। देखो भावका गजब। मूर्तिके दर्शन करके भी वे बिष ही पीनेको पावेंगे, अमृत वे नहीं पी सकेंगे।

भगवानके पूजन दर्शनमें हमें ध्येय क्या रखना चाहिए ?—दर्शनका तो ध्येय यह रखना चाहिए कि हे प्रभो मेरे हितका मार्ग तो यही है कि जो आपकी मुद्रामें भरा हुआ है। प्रभुकी मूर्तिमुद्रा भी यही दर्शा रही है कि हे उपासक ! तेरे कल्याणका मार्ग तो यही है जो हमने किया। प्रभुदर्शन करके ज्ञानी पुरुषका यही परिणाम होता है कि मोहरहित होकर ही कल्याण हो सकता है। मोहमें उद्धार नहीं है, इस प्रकारका अनुभवन करो और मोहको दूर करो, फिर घरके सब काम भी करते रहो, किसी कार्य का हम आपको अभी निषेध नहीं कर रहे हैं, दूकान वही है, घर वही है, घरके लोग वही हैं, केवल भीतरमें ज्ञानका उजेला हो जाय यही अपने हितकी बात है। अपनेमें कुबद्धि न आये कि यह स्त्री मेरी है, यह पुत्र मेरा है। अरे ये कोई तेरे नहीं हैं। इतना तुम्हें बिश्वासपूर्ण एवं दृढ़ होना चाहिए जैसे बड़े बड़े संतोंका होता है ज्ञान तो तुम्हें स्वच्छ और स्पष्ट रखना चाहिए जैसे कि बड़े बड़े संतोंके होता है। फर्क केवल व्यवहारका रह जायगा।

ज्ञानीके उपेक्षा—संत शुभ वातावरणमें है, शिष्य लोग साथ हैं, अथवा कुछ

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

पढ़नेकी सामग्री भी साथमें है, फिर भी उनकी जैसी स्थिति है उस स्थितिमें ही वह संत संगसे विरक्त रहता है। गृहस्थके पास ये २–४ खण्डके मकान हैं, दो एक दूकान हैं, दस पाँच परिवारके लोग हैं पर ज्ञानी पुरुष वही है जो इस प्रकारकी गृहस्थीमें रहते हुए भी उस संगसे विरक्त रहे। साधु अपने योग्य वस्तुओंके संगमें रहकर विरक्त रहता है तो गृहस्थ बड़े भारी परिग्रहके बीचमें रहता हुआ भी अंतरंगमें परिग्रहसे विरक्त रहता है। और यदि इन शब्दोंमें कहें कि साधुको तो ज्यादा कठिनाइयाँ कुछ नहीं पड़ती क्योंकि उनके पास इतना परिग्रह नहीं लगा, सो वह अपने ज्ञानको साफ बनानेमें कठिनाइयाँ नहीं पाता। मगर गृहस्थको इतना परिग्रह लगा है तिस पर भी उस सब संगसे विरक्त रहकर सम्यग्दृष्टि गृहस्थ ज्ञानदृष्टिको पकड़े रहता है तो उसका साहस महान है, तो ये शब्द कुछ अत्युक्तिक नहीं होंगे।

भैया, यह ज्ञान दृष्टि ही शुद्ध धर्म है। अन्य कुछ धर्म नहीं हैं। धन रखते हैं, छोड़ते हैं यह धर्म नहीं हैं। धनका त्याग तो पापका प्रायश्चित हैं, परिग्रह रखकर पाप किया है, उन पापोंसे छूटनेका प्रायश्चित्त दान है। कोई पाप न हो तो दानकी क्या आवश्यकता है? आरम्भके पाप करते हैं सो आहारदान में दृष्टि हो जाती है। उद्यमके पाप करते हैं तो उसका प्रायश्चित धर्मायतन बनाना, शिक्षा संस्थाएँ खुलवाना परोपकारमें धन लगाना आदि आदि हैं। और-और भी धर्मके काम करें उन कार्योंके करनेसे उद्यमके कारण बने हुए पाप नष्ट हो जाते हैं। पर अन्यायसे उद्यम करके पाप नष्ट करलें ऐसी बुद्धिसे जो उद्यम करते हैं, दान भी देते हैं उनके पाप नष्ट नहीं होते हैं। न्यायसे कमायें और दान करे तो न्यायसे कमानेमें भी जो पाप लगे वे दान करनेसे दूरहो जाते हैं।

अब मनुष्य आदिक जो पर्यायें जीवोंकी हैं वे पर्यायें जीवोंकी क्रियाओंके फल हैं इस बातको श्री पूज्य कुन्दकुन्दाचार्य प्रकट करते हैं। जीवोंने क्रियायें की, उन क्रियाओंके परिणाममें मनुष्य आदिक पर्यायें बन गयीं, यह बात बतलाते हैं। जगतमें जो यह जीवोंका स्वरूप दीखता है यह कैसे बन गया? क्या ईश्वरने बनाया? या किसी एकने बनाया, कैसे बन गये इस बातको बतला रहे हैं। जैसा जीवोंका जो पर्याय है वह पर्याय उस जीवकी क्रियाका फल है। अर्थात् जीवने ही अपने विभाव से सृष्टि बनाया यहाँ यही बात व्यक्त करते हैं।

कम्मं णामसमक्खं सहावमध अप्पणो सहावेण।
अभिभूय णरं तिरियं णेरइयं वा सुरं कुणदि ॥ ११७ ॥

इस गाथामें श्री कुन्दकुन्दाचार्य सीधे और स्पष्टरूपसे यह बात कह रहे हैं कि नाम कर्म नामका जो कर्म है वह अपनी ही प्रकृतिसे आत्माके स्वभावको ढक करके तिर्यन्च

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

नारकी व देव रूप कर लेते हैं। कर्म अपनी ही प्रकृतिसे आत्माके स्वभावको तो तिरोभूत कर देते हैं और तिर्यञ्च नारकी आदि पर्यायोंरूप व्यक्त कर देते हैं। इस गाथा में इस रूपमें बिल्कुल सीधा स्पष्ट कहा है। अब श्री अमृतचन्द्र आचार्य इस बातका इस तरह वर्णन करते हैं कि जीवोंके जो कार्य हैं वे जीवोंके द्वारा ही प्राप्य है इसलिये वे जीवोंके कर्म हैं। कर्म नाम असलमें जीवके कार्यका है। पुद्गल वर्गणावोंमें जो कर्मत्व लगे हैं वे निमित्त नैमित्तिक भावसे लगे हैं और जो उनका कर्म नाम पड़ा है वह इस सम्बन्धसे पड़ा है। अर्थात् जीवोंकी विकार परिणतिसे मिश्रित चैतन्यात्मक कार्य है, जीवोंके उन कार्योंका निमित्त पाकर पुद्गल वर्गणायें स्वयं ही ऐसी प्रकृति रूप बनती है कि उनके उदयका निमित्त पाकर जीवक्रिया बिभावरूप परिणमती हैं। जीवका कर्म असलमें जीवका विभाव कार्य है। और उस कार्यका निमित्त पाकर पौद्गलिक कार्माणवर्गणावोंमें जो विचित्रता होती है उसका नाम पीछे कर्म रखा गया।

निश्चयदृष्टिसे जीवकी परिणतिके जीवका कर्मत्व—कर्म असलमें जीव के कार्यको कहते हैं। उस कर्मके निमित्तसे जो कार्माणवर्गणावोंकी परिस्थिति बनी उसको भी कर्म उपचारसे कहा गया है। या यों कह लो कि वास्तवमें कर्म नाम जीवोंके कार्यका है और कार्मावर्गणावोंका कर्म नाम उपचारसे रखा है। परस्पर निमित्त नैमित्तिक भाव जैसे जगतमें चलते हैं वे यहाँ भी चल रहे है सो आत्माका जो विभाव परिणमन है वह कर्म है, उसका निमित्त पाकर जिन पुद्गलोंने एक विशिष्ट परिणाम पाया है उन पुद्गलोंका नाम ही कर्म रख दिया गया। फिर उस कर्मके कार्यभूत ये मनुष्यादिक पर्यायें हैं इस कारण पर्यायोंके स्रोतभूत कारण जीवके कार्य हैं। और जीवके कार्यके निमित्तसे प्राप्त हुआ है विशिष्ट परिणमन जिसमें ऐसा पुद्गल कर्म है। और पुद्गलकर्मके उदयमें मनुष्यादिक पर्यायें हुई इसलिये ये मनुष्य आदिक पर्यायें जीवके कर्मका फल कही जाती हैं। भले ही यह सारी विचित्रता पुद्गल कर्मोंके उदयका निमित्त पाकर हुई परन्तु इनका मूल कारण तो जीवका बिभाव है। इसलिए मूल कारण जीवके बिभावमें यह पर्याय (परिणति) होती है।

नाना प्रकारकी सृष्टियाँ हो जानेमें वस्तुगत सिद्धान्त—उक्त बातोंको सुनकर यदि कोई यह प्रश्न करे कि यह जीव मनुष्यादिक कैसे बन गया? तो यह कहा जाना चाहिये कि यह जीव अपनी करतूतसे मनुष्यादिक बन गया। यह जीव कीड़े मकोड़े कैसे बन गया? तो यह कहा जायगा कि यह जीव अपनी करतूतसे कीड़े मकोड़े बन गया। यह स्थावर और निगोद कैसे बन गया? अपनी करतूतसे बन गया। इसलिए लोकमें जितने जीव समूह दिखते हैं वे इस जीवके कार्यके फल हैं। इस कारण यह बात भी सिद्ध है कि इस सृष्टिका करनेवाला यह स्वयं ईश्वर है। जीव

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

सब इस कारण ईश्वर हैं क्योंकि उनका जो स्वरूप है वह है चैतन्य। जीवोंका स्वरूप भी चैतन्य है। तो जो स्वभाव प्रभुका पाया जाता है वही स्वभाव हम और आपका भी पाया जाता है इसलिये प्रत्येक जीव ईश्वरका स्वरूप रखते हैं। सो चाहे यह कहलें कि इस जीवकी करतूतका फल यह संसार है, सृष्टि है और चाहे यह कह लो कि ईश्वरकी करतूतका फल यह सृष्टि है।

जीवेश्वरके विकारका परिणाम—भैया, जीवकी करतूत है भावात्मक, क्योंकि मूलमें जीव के जो कार्य हैं वे भावात्मक हैं। उस जीवके हाथ पैर नहीं हैं। हाथ पैर तो कार्यके फल हो गये पर जीवकी चीज तो नहीं हुई। ये हाथ पैर कैसे प्रकट हो गये ? इस बातको बतला रहे हैं कि इसके व्यक्त होनेका मूल कारण जीव के भावात्मक कार्य हैं। तो वहाँ इसके ऐसे भावात्मक कार्य हुये जिसे लोकमें यह कहने लगे कि ईश्वरकी मर्जी हुई तो यह सृष्टि बन गयी। सो यह बात सत्य है इस आत्मा में एक मर्जी उत्पन्न हुई, इच्छा उत्पन्न हुई, किसी भी प्रकारसे हो उस इच्छाका ही प्रसाद यह सारा संसार है। इस तरह यह विचित्र जीवलोक, ये मनुष्यादिक पर्यायें जीवोंके ही कार्योंका फल हैं।

श्री अमृतचन्द्रसूरीजी कहरहे हैं कि यह कार्यफल जीवोंकी भावात्मक विक्रिया-वोंका फल है। यदि जीवकी क्रिया न हो तो पुद्गलमें कर्मपना नहीं आ सकता था। यह निमित्तनैमित्तिक भावोंमें देखिये। यद्यपि स्वरूपमें नजर दो तो यह बात सुप्रसिद्ध है कि पुद्गलमें जो कर्मत्व आये वे पुद्गलके कार्योंसे आये। जीवकी परिणतिसे पुद्गल कर्मोंमें कोई बात नहीं आई है। जीवमें जीवकी परिणति है, पुद्गलमें पुद्गलकी परिणति है। दुनियामें अपना-अपना काम हो रहा है। मगर जिसके होनेपर होता है और जिसके न होनेपर नहीं होता, ऐसा सम्बन्ध भी तो देखा जाता है। यह सम्बन्ध असत्य नहीं, मगर सम्बन्धकी बात एक सत्में नहीं होती, इसलिए असत्य है।

निश्चयदृष्टिमें सम्बन्ध असत्य है, निमित्त नैमित्तिक भाव असत्य है, क्योंकि निश्चय दृष्टि तो एक ही पदार्थमें ही उस एक पदार्थकी बातको निरखती है। यह दूसरे पदार्थोंका विषय ही नहीं करती। जब निश्चयदृष्टि रखकर कुछ सम्बन्ध जानना चाहें तो नहीं जान सकते हैं क्योंकि निश्चय दृष्टि एकको देखती है। निश्चय दृष्टिका विषय सम्बन्ध नहीं है।

निमित्तनैमित्तिक सम्बन्धी युक्तिकी संगतता—जब युक्ति और बुद्धिको पसार कर कुछ और देखते हैं तो क्या यह बात नहीं है कि जीवके बिभाव होने पर ही कर्मका कर्मत्व आता है, जीवबिभावके हुए बिना कर्ममें कर्मत्व कदापि नहीं आता यही बात ठीक है। जब यह निर्णय हुआ तब इसीके माने निमित्तनैमित्तिक भाव है।

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

जीवमें विभावात्मक कर्म नहीं होता तो पुद्गलमें कर्मत्त्व नहीं होता। और पुद्गलमें कर्मत्व नहीं बनता तो यह मनुष्य आदि पर्याय भी नहीं होता। क्योंकि जिस-जिस प्रकार की प्रकृतिका उदय चलता है उस-उस प्रकार की उन पर्यायोंकी सृष्टि देखी जाती है। इसलिए उन पर्यायोंका मूल कारण जीवोंके कार्य हैं। इन कर्मोंमें प्रकृति पड़ती है, स्थिति पड़ती है और विशिष्ट रूपसे प्रदेशबंध होता है, इस प्रकारके विशेष कर्मोंका होना जीवकी विक्रिया होनेपर ही होता है। प्रकृति स्थिति प्रदेश अनुभाग यद्यपि कर्म हैं और कर्मकी विचित्र शक्तिसे ही यह व्यक्त होता है, लेकिन ऐसी प्रकृति स्थिति इत्यादि बन जाना जीवके बिभावके बिना क्या सम्भव है ?

स्वतन्त्रदृष्टिसे देखो तो जीवका कुछ काम कर्ममें न आयगा, कर्मका कोई काम जीवोंमें न आयगा। मगर निमित्त नैमित्तिक भावोंकी विचित्रताको देखो कि जीवोंके बिभावोंका निमित्त पाकर ये कर्माण वर्गणायें १४८ प्रकारकी प्रकृतिरूप बन गईं हैं। और यह कर्म, कर्मरूपसे कितने समय तक जीवोंके साथ लगा रहेगा ? यह विचित्रता जीवोंके विभावका निमित्त पाकर बन्धनके समय ही आ गई थी और ये कर्म किस प्रकारसे अनुभाग रख रहे हैं ? उस कर्ममें कितनी अनुभाग शक्ति है ? यह अनुभागका विभाग भी कर्मबन्धनके समय पड़ चुका था। इतनी बातें ऐसे जीवके कार्यके बिना नहीं होती। जीव उन पुद्गल कर्मोंके कार्योंको नहीं करता पर जीवके बिभाव विना कर्मत्व नहीं होता है। इस प्रकार निमित्तपरम्पराओंमें चलते हुये देखो तो यह स्थिति होती है कि ये सब जीवलोक जीवोके कर्मोंका फल हैं।

मरणके बाद नया देह पानेका हेतु सूक्ष्मशरीरका सम्बन्ध—ऐसी भी प्रसिद्धि है कि किसी जीवका मरण होता है याने वह भव छूटता है, मनुष्यादिक पर्याय छूटती हैं तो जीव सूक्ष्म शरीर लेकर जाता है और वह सूक्ष्म शरीर स्थूल शरीरके निर्माणका कारण होता है। और जब स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर एक दो क्षेत्रावगाही होकर एकमकसा हो जाता है तो यही पौद्गलिक रूप इस जीवको दृष्टिबन्धन में बाँधे रहता है। वह सूक्ष्म शरीर क्या है ? यह कार्माण शरीर। कार्माण शरीर किसी स्थूल शरीरके निष्पादन करनेके लिए बड़ा निकट निमित्त बनता है। किसी जगह कोई बीज पड़ा है गेहूँ इत्यादि का या रजबीर्यका, उसे जीवके शरीर रूप कोई बना ले, यह सब कार्माण शरीरकी विचित्रता है। गेहूँका सूखा दाना है, यह वर्तमानमें बिल्कुल अचित्त हैं, उसमें जीव कतई नहीं हैं। जो यह प्रसिद्ध है कि साबूतदाना जीवका योनिभूत सचित्त है, उसको पीसे बिना नहीं खाते तो जीवकी योनि भूत तो है मगर स्वयं अभी यह निर्जीव है। गेहूँके दाने से छूटा हुआ जीव नहीं है। वह तो अभी ऐसा अचित्त है जैसे कंकड़ पत्थर। फर्क यह होगा कि कंकड़ पत्थर गेहूंके अंकुरमें योनिभूत नहीं है और गेहूँ दाना योनिभूत है।

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

सूखे गेहूँ में कोई एकेन्द्रिय जीव कुकरके बैठा हुआ हो और खुद मिट्टी पानीका संयोग पाकर उठ खड़ा होता हो ऐसा नहीं है। उन गेहूँके दानोंमें उस समय कोई भी जीव नहीं है। वे दाने सूखे हुए अचित्त हैं। यह विशेष बात जरूर है कि वे अंकुरके योनि भूत हैं। जब जीव अपने सूक्ष्म शरीरको लिए हुए उस योनिभूत पुद्गल पदार्थपर पहुँचता है तब वह स्थूल शरीरका कारण कैसे बन जाता है? इसका भौतिकविज्ञानसे निर्णय नहीं कर सकते। यह शुद्ध ज्ञानकेद्वारा ही निर्णयमें आता है। यह निमित्त-नैमित्तिक भावोंकी युक्तियोंसे गम्य है। पदार्थ सब अपने-अपने स्वरूपमें हैं तिसपर भी यह निमित्तनैमित्तिक भाव भी उसी तरह अबाध रूपमें चलता रहता है। यह समझलो कि पदार्थोंमें परस्पर निमित्तनैमित्तिक भाव तो चल रहे हैं किन्तु कर्तृकर्मभाव कतई नहीं हैं। इस तरह ये सब पर्यायें जीवोंके कार्यके फल हैं, यह इस गाथामें कहा जा रहा है।

विभाव पर्यायोंमें परस्पर निमित्त नैमित्तिक भाव है, कर्तृकर्मभाव नहीं— जीवोंका वास्तविक कार्य तो चैतन्यात्मक है, प्रतिभासात्मक है, परन्तु उस कार्यके साथ जो मोह लगा है उस मोहके कारण इसकी यह क्रिया बिक्रिया कहलाने लगती है। आत्माका काम केवल देखना जानना है। जो देखने जाननेके साथ मोह लगा है उसकी यह जो परिणति कहलाती है वह बिकारपरिणति कहलाती है। सो जब जीवकी बिकारपरिणति होती है तो उसका निमित्त पाकर कार्माण वर्गणाएें स्वयं कर्मरूप परिणम जाती हैं। जीव कर्मको जबरदस्ती नहीं परिणमाता है और कर्म भी जीवको जबरदस्ती कुछ नहीं परिणमाते। कर्म अपनेमें अपने कामको करता है और जीव अपनेमें अपने कामको करता है। जैसे हाथका निमित्तपाकर भींटमें यह छाया पड़ रही है, जैसे जैसे हाथ हिल रहा है वैसे वैसे पृथ्वीपर भी छायाका परिणमन चल रहा है। हाथ उस छायामें कुछ नहीं करता है। हाथ जो कुछ कर रहा है वह अपनेमें कर रहा है। हाथ अपनेमें ही हिलता है, और पृथ्वी भी उस हाथ का कुछ नहीं कर रही है पर ऐसा ही सहज निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध है कि जिस प्रकार यह सन्निधिमें आया हुआ यह हाथ मिलता है उसी प्रकार भींटका स्कंध स्वयं छायारूप परिणम जाता है। भींट हाथका कुछ नहीं करता। और हाथ भींटका कुछ नहीं करता। पदार्थमें परस्पर कर्तृकर्म भाव रंच भी नहीं है पर निमित्तनैमित्तिक भाव तो वहाँ पूरा चल रहा है कि जीवके बिभावका निमित्त पाकर पुद्गलका कार्माणवर्गणावोंमें कर्मत्व आया। और कर्मोंके उदयका निमित्त पाकर ये मनुष्यादिक पर्यायें बन गयीं।

मनुष्यादिक जो पर्यायें हैं वे कर्मके कार्य हैं, क्योंकि मनुष्यादिक पर्यायोंमें निमित्त कर्मोंका उदय है सो यहाँ प्रश्न होता है कि मनुष्यादिक पर्यायें कर्मोंके कार्य

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

कैसे हो गये ? इसके उत्तरमें कहते हैं कि वे मनुष्यादिक पर्यायें जो की गयी हैं सो जीवके स्वभावको दबाकर की गयी हैं। सो स्पस्ट समझमें आ रहा है कि इन पर्यायों के रहते हुये जीवका स्वभाव यह ढक रहा है। यह पशु पक्षी बन गया तो क्या आशा है कि पशुपक्षी पर्यायभी बन कर रहे और जीवका जो असली स्वभाव है वह भी पूरा प्रकट रहे, ऐसा तो नहीं देखा जाता है। इन पर्यायोंमें जीव भ्रमण कर रहा है तो जीवका स्वभाव तिरोभूत हो गया है। सो यह सब किस कारणसे हुआ ? सो कहते हैं कि कर्मोंके स्वभावसे, कर्मोंकी प्रकृतिसे जीवका स्वभाव तो दब गया और मनुष्य तिर्यञ्च इत्यादि पर्यायें व्यक्त हो गईं इसलिये ये कर्मके कार्य कहे जाते हैं। यदि ये भी भव जीव के कर्म हों तो फिर ये कभी न हटाये जा सकेंगे।

दृष्टान्तपूर्वक उपादान, प्रभाव व निमित्तका विवेचन—इसमें प्रदीपका दृष्टान्त आता है कि जैसे दीपक ज्योतिके स्वभावसे जल रहा है ना ? और तैलके स्वभावको दबाकर जल रहा है। तो वह दीपक ज्योतिका कार्य हुआ, याने दीपकमें किसी तेलकी एक-एक बूँद पहुँच कर वहाँपर दीपक बना है। तैल न हो तो दीपक कैसे जले ? यदि सूखी बत्ती जला दें तो थोड़ी ही देरको वह दीपक बना, जो कुछ भी हो, वह अपने स्वभावको बदलकर दीपक बना है; तैल अपने स्वभावसे नहीं रह सका। तैल तो चिकना है, पर वस्तुसे संयोग करलो, शरीरमें लगालो, वह सारा तैल यहाँ तिरोभूत हो गया। अब वह तैलनामक पदार्थ अपने स्वभावको छोड़कर दीपकके रूपमें उपस्थित हुआ। तो पीछे जो दीपकका कार्य है उसे कहेंगे ज्योतिका कार्य। इस ज्योतिस्वभावने क्या किया कि तैलके स्वभावको तो तिरोभूत कर दिया और प्रदीप बना लिया।

जिस प्रकारसे दीपक ज्योतिका कार्य है इसी प्रकार पशु पक्षी मनुष्यादिक-पर्यायें कर्मके कार्य हैं, क्योंकि कर्मके स्वभावसे वह किया गया है। इस कारण यह सारा पर्याय कर्मका कार्य समझिये। तो अब ये पर्याय तो हुये कर्मके कार्य और पुद्गल कर्म हुए जीवके विभावक्रियाके कार्य। सो इस प्रकार यह सब जग जाल ये सब जीव लौकिकजीवोंकी क्रियाके खेल हैं। जैसे हम दुःखी होते हैं तो अपनी करतूतसे दुःखी होते हैं। वैसे ही यह सोचना चाहिए कि यदि कोई दुःखी है तो वह अपनी ही त्रुटिसे दुःखी हैं, दूसरोंकी त्रुटिसे दूसरोंमें दुःख हो ही नहीं सकते हैं। जो उसे क्लेश हैं वे उसकी त्रुटिसे हैं और वह त्रुटि क्या है कि हम ज्ञानको सही नहीं रख सकते हैं। हम ज्ञानको सही-सही रख ही नहीं पाते हैं और जो बुद्धि बनी है उसे सही समझते हैं। जो मैं सोचता हूँ वही सही है। गलतका तो 'गलत ज्ञान है' ऐसा ज्ञान ही नहीं हो सकता है। त्रुटिमें तो त्रुटि मालूम ही नहीं होती। यह सबसे बड़ी त्रुटि होती है कि त्रुटि को त्रुटि न मालूम कर सके। यही सबसे बड़ा कष्ट है।

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

त्रुटि और महात्रुटि—हम यह गलत रूपमें कह रहे हैं ऐसा बोध हो तो इसमें तो कुछ ज्ञान जग रहा है कि ये गल्ती की सब बातें है। भैया, मोहमें अपनी गल्ती किसीको नहीं मालूम होती। यदि ज्ञान हो तो गल्ती समझमें आ सकती है। सो जैसे यह दुःख तुम्हारे ही विकारसे होता है वैसे ही बड़ा बवाल झगड़ा इत्यादि भी सब अपनी ही गल्तीसे होते हैं अपने ही विकारसे होते हैं। वैसे ही समझो जीवका मनुष्यादिक पर्यायोंमें बँध जाना, पशुपक्षी, कीड़े मकोड़े इत्यादिके रूपमें जीवका बँध जाना यह जो सबसे बड़ा संकट है, यह भी जीवके विकारोंसे ही होता है। अपनी ही त्रुटिसे यह महान संकट हो जाता है। बाहरकी त्रुटिसे अपना संकट मानना अज्ञान है। इस अज्ञानमें रहकर सन्मार्ग, शान्तिका मार्ग नहीं प्राप्त हो सकता है। यह जितना भी जगजाल है वह सब जगजाल इस जीवकी क्रियाका फल है। मूलमें जीवके ही काय इस प्रकारके होते हैं जिसके कारण यह जगजाल बँध गया है। जीवोंका विकार भी, जिसके कारण यह जगजाल है, वह इस जीवके पूर्वके बँधे हुए जो कर्म थे उनके उदयका निमित्त पाकर हुआ। यदि विकार उपादानमें निमित्त पाये बिना हो जाय तो वह स्वभावपरिणमन कहलायेगा। स्वभावपरिणमन ही वह कहलाता है जो किसी परका निमित्त पाये बिना स्वयं अपने स्वरससे बने। स्वभावपरिणमन क्या राग द्वेष मोह है? नहीं ये सब विभाव परिणमन है। विभाव परिणमन बंधे हुए कर्मोंके उदयके निमित्तसे हुए और वे कर्म जीवके विकारके निमित्तसे हुए थे।

दृष्टान्तपूर्वक जीव और जीवके परम्परया अनादिबंधत्व की सिद्धि—इस तरह जीवके विकारमें और कर्मके बंधादिमें परस्परका निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध अनादिसे चला आरहा है। जैसे पुत्र और पिताका सम्बन्ध अनादिसे चला आ रहा है। किसीको जाना कि यह फलानेका पुत्र है। क्या वह पिता किसीका पुत्र नहीं है? वह भी किसीका पुत्र है। इसी तरहसे दृष्टि लगाते जावो तो क्या कोई अन्तमें ऐसा मिलेगा जिसका कोई पिता न हो? कोई नहीं ऐसा मिलेगा। जैसे बीजसे वृक्ष हुआ और यह वृक्ष कैसे हुआ? उत्तर-बीजसे। यह बीज भी कहांसे हुआ? जिस बीजसे यह पेड़ हुआ? उस बीजसे पहले कोई वृक्ष रहा होगा। इसी तरह अनेक सम्बन्ध बताते जाइये। क्या कोई ऐसा वृक्ष मिलेगा जिसके पहिले कोई बीज न रहा हो? क्या कोई ऐसा बीज मिलेगा जो बिना वृक्षके हो गया हो? कोई नहीं मिलेगा।

इससे सुनिश्चित हुआ कि पदार्थ जितने भी हैं वे स्वयं सत् हैं, किसी दूसरेसे दूसरे सत् नहीं बन गये हैं। सत् तो अनादिसे हैं, जो भी पदार्थ हैं वे अनादिसे हैं। उनके परस्पर के यथासम्भव सम्बन्ध भी परम्परया अनादिसे हैं। सम्बन्धके अनादिपनेमें तब शंका हो सकती है जब पदार्थ अनादि न हो। जब सभी सत् अनादिसे हैं तो उनका परिणमन भी अनादिसे है।

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

उपादानकी अनिवार्यता—कुछ लौकिक जन ऐसा भी कहते हैं कि पहले कुछ नहीं था, केवल जल ही जल था, उससे मछली हुई। तो मान लिया कि पहले जल ही जल था और कल्पना करलो कि कोई कला अगर ऐसी किसीमें बन सके कि उस जल उपादानको मछलीरूपमें तैयार करदें, कर सकें तो करदें, पर उस मछलीका उपादान कुछ हुआ तो, जल तो था। अथवा जल नहीं था तो और कुछ था। कुछ था तो कुछ हुआ है, कुछ भी न हो और कोई सत् बन जाय ऐसा तो नहीं होता। जो था वही तो सत् है। जो सत् है वह किसी भी रूपमें परिणमें, परिणमेगा अवश्य। अब वह सत् किस किस रूपसे परिणमता है। इसकी वैज्ञानिक पद्धतिमें जानकारी करलें। जैसे सत् अनादि सिद्ध स्वतः है इसी प्रकार अन्य अनुकूल पदार्थका निमित्त पाकर पदार्थ किसी न किसी न किसी रूप स्वतः परिणम जाते हैं, यह सम्बन्ध भी स्वतः है। कैसे पदार्थ का निमित्त पाकर कौन किस रूपमें परिणमते हैं यह सम्बन्ध भी सहज है। जैसे यह किसीने बनाया नहीं है कि किसी राज्यके अधिकारी मिलकर कानून गढ़ें जिससे ऐसा व्यवहार बने कि प्रजा सुखी रहे ? इसी तरहसे पदार्थोंकी व्यवस्था कोई बनावे, ऐसा नहीं है वह तो स्वयं चलती चक्की है। अथवा पदार्थोंका जो सम्बन्ध चल रहा है वह किसीके द्वारा गढ़ा नहीं गया, किसीने इस सम्बन्धका अविष्कार नहीं किया है क्योंकि जैसे पदार्थ स्वयं सहज अपने आप सत् हैं वैसेही पदार्थोंका ही निमित्त पाकर वे किस किस रूपमें परिणम जाते हैं, यह भी सम्बन्ध सहज है किसीने बनाया नहीं है। प्रथम बात तो यह है कि अगर कानून भी कोई बैठकर बनाये और वह कानून निराधार बनाये तो वह कानून फेल हो जाता है। जिसकी व्यवस्था चल सकती, वही कानून बनाया जाता। तो यह सम्बन्ध बनाया हुआ नहीं है। यह चल रहा है इसलिए इसको भी अनादि सिद्ध कहते हैं और पदार्थोंका सम्बन्ध भी परस्परया अनादिसिद्ध है।

अनादिसम्बद्ध परसंयोगके बिनाशकी सम्भावना:—अनादिसे जीवोंका और कर्मोंका परस्पर निमितनैमित्तक सम्वन्ध चल रहा है। चल रहा है पर क्या यह सम्बन्ध टूट नहीं सकता। सम्बन्ध तो अनादिसे चल रहा है पर यह सम्बन्ध तोड़ा जा सकता है। जैसे तिलके दानोंमें तेल कबसे भरा हुआ हैं ? अनादिसे चाहे वह तेल किसी शक्लमें हो पर जबसे तिल है तबसे तैल भरा होता है। ऐसा तो होता नही है कि तिल पहिले बन गया हो और तैल बादमें भरा जाता हो। ऐसा होता है कि जब तिल लग जाता है तभी तैल भी इसमें किसी रूपमें आ जाता है यद्यपि प्रारम्भमें तिलमें तेल मालूम नहीं पड़ता किन्तु कितना बड़ा तिल होने पर उसमें तेल आता है, यह भी तो व्यवस्था नहीं है। वह तो तिलके दानेका स्वभाव ही है कि वह तैलके स्वभावको लिए है। तिलका दाना तैलमयताको लिए हुए प्रकट होता है। तिलको जब कोल्हूमें पेला जाता है तब तेल उस तिलसे अलग हो जाता है। इसी तरह जीवका

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

और कर्मका सम्बन्ध अनादिसे चला आ रहा है। चले, फिर भी भेद विज्ञानके द्वारा कर्म और जीवको न्यारा न्यारा समझ कर, कर्मके निमित्तसे होने वाले पर्यायोंको भी जीव स्वभावसे न्यारा समझकर जीब यह जीव अपने स्वभावकी ओर झुकता है और निज शुद्ध चैतन्य स्वरूपमें प्रवेश करता है, तो यह कर्म बन्धन स्वयं पृथक् हो जाता है। इससे यह निर्णय हुआ कि जीव और कर्मका सम्बन्ध अनादिसे चला आ रहा है तो भी सम्यग्ज्ञानके उपयोगसे जीवसे कर्म पृथक् हो सकते हैं।

ज्ञानविभूति—सबसे बड़ा ज्ञान तो यही है, सबसे बड़ी बिभूति तो यह सम्यग्ज्ञान ही है पर यह जीव अपने ज्ञान स्वरूपको भूलकर असार बातोंमें, कुटुम्ब परिवारमें, मित्र शत्रु इत्यादिमें ही दृष्टि लगाकर जिसमें सार कुछ नहीं, हित कुछ नहीं, बिल्कुल पृथक पदार्थ हैं, उनमें सुखकी आशा लगाये हैं, जिससे अपना स्वभाव तिरोभूत हो गया है। इसी से तो इसकी प्रभुता विकसित नहीं हो सकती है। आशाओंसे, लालसाओंसे, वासनाओंसे इनसे अपने ज्ञानको बरबाद कर दिया है। बाह्य पदार्थोंमें ही पड़कर यह जीव भिखारी बन गया। किसी भी पर पदार्थसे हित है, कल्याण है ऐसी भावना बनानेसे तो पतन है, किन्तु जीव अपने स्वतंत्र स्वरूपको निरखता रहे तो इससे उसका कल्याण है।

जीवके प्रचंड ज्योतिर्मय स्वभावके तिरोभूत होनेका कारण:—जगतमें ये जितनी भी मनुष्यादिक पर्यायें दृष्टिगोचर होती है व ऐसी और भी जो पर्यायें है उन सब पर्यायोंमें रहनेवाले जीवोंका स्वभाव तिरोभूत हो गया है। जीवका स्वभाव तो चैतन्यबिकाशका है। जीवकी जानने देखनेकी ऐसी शक्ति है, कि इससे जितना भी जो कुछ सत् है सबको यह जान जाय। और, सबको यह जान जाता है तो उसे कहते हैं स्वभावका पूरा बिकाश हो गया। स्वभावके पूरे बिकाशका ही नाम प्रभु है। सो इन पर्यायोंमें जो जीबके स्वभावका अभिभव हो गया है वह क्यों हो गया है? अब इसका निर्धारण करते हैं। पहले तो यह कहा था कि जीवकी क्रियाके निमितसे बद्ध हुए पुद्गल कर्मोंके उदयके निमित्तसे हुई मनुष्यादिक पर्यायोंमें जो जीवका स्वभाव दब गया है वह कर्मके कारण दब गया है। यह निमित्त दृष्टिकी प्रधानतासे वर्णन हैं, क्योंकि कर्मके उदयके निमित्त बिना जीवके स्वभावका अभिभव नहीं होता। अब तटस्थ बुद्धिसे दोनों ओर ख्याल रखते हुए यह निर्धारित करते है कि इन मनुष्यादिक पर्यायोंमें जो जीवके स्वभावका तिरोभाव होता है वह किस कारणसे होता है?

णरणारयतिरियसुरा जीवा खलु णामकम्मणिव्वत्ता।
णहि ते लद्धसहावा परिणममाणा सकम्माणि॥ ११८॥

जीवस्वभावके पूर्ण तिरोभावकी असंभावना— ये नर नारक तिर्यञ्च और देव

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

इत्यादि जो जीव हैं अथवा पर्यायें हैं ये नाम कर्मके द्वारा रचे गये हैं। सो इतने मात्र से भी वहाँ पर जीवके स्वभावका पूर्ण तिरोभाव नहीं होता है। अर्थात् नामकर्मके द्वारा रचे गए सारे जग जाल भी होते हैं और इन जगजालोंमें भी जीव बुरी तरह फसा हुआ है तिस पर भी जीवका स्वभाव जो ज्ञान दर्शन है वह पूर्णतया नष्ट नहीं होता, वहां भी जीवके ज्ञान और दर्शनका बिकाश कुछ न कुछ पाया ही जाता है। और यहाँ तक कि सबसे निम्न श्रेणीके जीव हैं लब्ध्यपर्याप्तक, उनमें भी ज्ञान और दर्शनका प्रकाश बना रहता है! उस प्रकाशमें कुछ सीमा तक का बिकाश ऐसा है जो सदा निराबरण रहता है। अर्थात् उसको ढकने वाला कोई कर्म नहीं है। निश्चयसे जीवके स्वभावका जहाँ जितना तिरोभाव है वह कर्मके द्वारा नहीं होता। ज्ञान दर्शनकी वह रुकावट वास्तवमें जीवके ही बिकार परिणमनके करण होती है।

दृष्टान्तपूर्वक जीवस्वभावके तिरोभाव होनेके कारणकी सिद्धि :—यहाँ एक दृष्टान्त दिया जा रहा है कि जैसे माणिक होती है, हीरा होता है ना, उसका बड़ा तेज होता है वह स्वच्छ उज्ज्वल होता है, स्वर्णकी अंगूठीमें यदि बाँध दिया जाय, जैसे कि लोग अंगूठीमें हीरा जड़ाया करते हैं, ऐसी अंगूठीमें हरी जड़ा लिया जाय तो हीराके जड़ा लेनेपर भी हीराके तेजका पूरा तिरोभाव तो नहीं हुआ। इसी तरह जीव कर्मोंदयका निमित्त पाकर मनुष्यादिक पर्यायोंमें आ गया है और वहाँ यह भी नजर आ रहा है कि इसका ज्ञान दर्शनका विकाश अधूरा है, उसका पूर्ण विकाश नहीं हो रहा है। सो यह जो विकाश रुका हुआ है वह जीवकी अपनी गल्तीसे रुका हुआ है। अपने स्वभावकी पहिचान नहीं है और उस पर इसका दृढ़ विश्वास नहीं है तथा इस ओर उसका पूर्ण उपयोग नहीं है तो इसका विकास रुका हुआ है।

आशा विकासबाधा—अब यहीं देखलो किसी चीजके जाननेके लिए जब अन्दाजा करना चाहते हैं कि इस मामलेमें आगे क्या होगा तो जानकारीकी उत्सुकतामें आप हम परेशान हो जाते हैं कि अब क्या होगा? यह जाननेकी उत्सुकता राग द्वेषवश होती है, राग द्वेष मोहके कारण उस उत्सुकतामें परेशानी रहती है। इससे जानना भी नहीं हो पाता है और न परेशानी ही मिट पाती है। यदि जानने की उत्सुकता न रहे अर्थात् राग द्वेष न रहें, किसी भी पर वस्तुके परिणमनमें अपना कोई प्रयोजन न रहे तो परेशानी समाप्त हो जायगी। यदि इस तरहकी परेशानी न रहे और यह अपने विश्राममें बना रहे तो इस सहज ज्ञानकी परिणतिका फल यह होगा कि इन जाननेकी थोड़ीसी बातोंकी तो बात क्या, समस्त बिश्वका ज्ञान हो जायगा। यह आशापरिणमन ज्ञानविकासका प्रबल बाधक है।

ज्ञानसे लौकिक प्रयोजनकी आशामें विकासने असम्भव—इस प्रसंगमें मोही लोग

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

यह सोचेंगेकि हमें उस विश्वके ज्ञानसे क्या मतलब है जिनसे जानकर कुछ मतलबकी बात भी न की जाय। ये तो उस ज्ञानको महत्त्व देते हैं जिस ज्ञानको करके अपनी कल्पनाओंके मुताबिक विषय कषायोंका मतलब ऐंठ सकें। इन प्रयोजनोंमें रहकर और उस उत्सुकतामें रहकर विकाश कर सकना- प्रगति कर सकना असम्भव है। जीवके अनन्त आनन्दका अभ्युदय ज्ञानके पूर्ण विकासके साथ है। जो उन पर्यायोंमें रहते हुए भी जीवोंका स्वभाव पूर्ण नहीं हो रहा है, वे जीव अपने ही विकार परिणमन से आसक्त हो कर अविकशित हैं। दूसरे कोई जीव अथवा कर्मोंके उदय इन जीवोंके स्वभावको नहीं नष्ट कर-पाते हैं, न दबा पाते हैं, किन्तु यह अपना बिकार परिणमन करके स्वयं दब गया है।

शक्तिहीनताके विश्वासमें खुदकी शक्तिहीनता प्राकृतिक :—जैसे कोई वीर पुरुष किसी भ्रममें आकर कायर बनकर दब कर शक्तिहीन बन जाता है और अपने कार्यमें सफल नहीं हो पाता है। इसी तरह प्रभुस्वरूप यह आत्मा भ्रम करके अपने स्वरूपको भुलाकर अपने आप ही अपनेको आनन्दरहित मानकर आनन्दकी आशामें परकी ओर दृष्टि देकर स्वयं शक्तिहीन हो रहा है, इसीसे अपने स्वभावका विकास नहीं कर पा रहा है। विचारनेकी बात है कि घर तो आपका वही है, लोग सब वे ही हैं, कहीं ऐसा नहीं कि आधा घंटा तक उनका ख्याल न करें तो उनके ऊपर बम गिर जाय। आप उनका बिकल्प न करें तो क्या वे नष्ट हो जावेंगे ? ऐसा तो नहीं है। जब ऐसा नहीं है तो हिम्मत कर लीजिए कि लो, अब इस प्रकरणमें मुझे कुछ नहीं सोचना है, कुछ भी बिकल्प नही करना है। यों कुछ समय भी निर्बिकल्प बिश्राममें व्यतीत हो जाय तो अपने आपको बिलक्षण आत्मीय आनन्दका अनुभव हो जायगा। इतना साहस यह जीव नहीं करता है प्रत्युत बिकल्प बना कर निरन्तर सोचता रहता है, यही एक खेदकी बात है।

जब प्रवाहका दृष्टान्त व स्वभावाभिभवमें उपादान व निमित्त—एक द्रव्यके द्वारा दूसरे द्रव्यमें कुछ नहीं किया जाता, किन्तु इस जीवने स्वयं मोह बनाकर अपना बिकार करके अपनी ही क्रियासे परिणाम कर अपने स्वभावको तिरोहित कर दिया है। इसके लिए एक दृष्टान्त जल प्रवाहका दिया जा रहा है। जैसे जब जल बरसता है तो वह जल प्रवाह कितना ही तो नीम आदिक कटु रस वाले पेड़ोंमें पहुँचता है और कितना ही जल समूह चन्दन आदिके वृक्षोंमें पहुँचता है उनके पास पहुँच कर जल अपना स्वभाव तिरोहित कर देता है। अथवा कुँओंसे रहट द्वारा जो पानी डाला जाता है तो कुछ पानी मिर्चके पेड़ोंमें पहुँचता है और कुछ पानी केले आदिके पेड़ोंमें पहुँचता है। कहीं वह पहुँचे वह जल अपने स्वभावको तिरोहित कर देता है। जलका स्वभाव क्या था कि बहना और उसका स्वाद रहना। जलमें जो ये दो बातें थीं वे अब खतम

To report error, please contact vikasnd@gmail.com

Download PDF file from http://is.gd/varniji

हो गई । नीम आदिक पेड़ोंमें वह पानी पहुँचा तो पानीका जो स्कन्ध है वह स्कन्ध पेड़ोंरूप परिणमने लगता है । और पेड़ोंका कुछ अंग बन जाता है, जिसको स्पष्ट तो नहीं बता सकते पर युक्तिसे संगत है । अब पानीका जो बहनेका स्वभाव, है और स्वादिष्ट लगनेका स्वभाव था वह कहाँ रहा ?

कोई कहे कि वृक्षने उसके स्वभावको दबा दिया सो ज्ञान दृष्टि से देखो तो वृक्षोंने जलके स्वभाव को नहीं दबा दिया किन्तु जल स्वयं वृक्षोंका समागम पाकर अपने बहने और स्वादिष्ट लगनेके स्वभावको खो बैठा । सो अब पानीका न तो वह बहनेका प्रदेश रहा जैसाकि फैला हुआ था और न वह स्वाद ही रहा जो पानीके स्वभावमें पहले था । इसी प्रकार आत्माभी इन पर्यायोंमें पहुँचकर कार्माण वर्गणावोंमें बँधकर अपने सारे प्रदेशोंसे और अपने भावोंसे अपने स्वभावको खो बैठा है ।

भैया, कर्मोंने जीवके स्वभावको नहीं ढका, क्योंकि ऐसा नहीं है कि शरीरके भीतर जीवका ज्ञान तो पूरा हो और कर्मोंने या शरीरके चमड़ेने इस ज्ञानको ढक दिया हो । ज्ञानका आवरण तो रागद्वेष विकल्पोंके कारण ही हो गया है ।

दृष्टान्तपूर्वक ज्ञानकी अबाधगतिकी सिद्धि—ज्ञान जब विकसित है तो उसका ढकनेवाला कोई दूसरा पदार्थ नहीं हो सकता । जैसे आपके घरके भीतरके कौनेमें तिजोरी रखी है उसके अन्दर एक मजबूत ट्रन्क रखा है, उसके अन्दर एक डिब्बी है और उस डिब्बीके अन्दर कपड़ेमें बंधा हुआ एक रत्न रखा है या अन्य कोई गहना रखा है तो यहाँ बैठे बैठे ही उस गहनेको कितना जल्दी आप जान जायेंगे । उसके जाननेमें कुछ भी तो अटक नहीं होती । घरके किवाड़, तिजोरी, ट्रन्क आदिसे क्या यह ज्ञान अटक जाता है ? नहीं अटकता । क्या वे सब ज्ञानको रोकेंगे या धक्का देंगे । ज्ञान दरवाजेके बाहर बैठा हो और उसे किवाड़ घुसने न देते हों, ऐसा तो नहीं है । कोई भी अन्य पदार्थ ज्ञानका निरोध नहीं कर सकते ।

परपरिणति ज्ञानविकासकी बाधिका—परकी परिणतिसे ज्ञानका स्वभाव प्रकट नहीं है । यह जीव स्वयं ही भ्रम करके अपनी दृष्टि को बाहर में डुलाता है तो इसका जो अंतरंग वैभव है वह सारा वैभव तिरोभूत हो जाता है । इसमें ज्ञान व आनन्द सही स्थितिमें नहीं रहता । पर वस्तुओंका लालच करना तो अपने आपको बरबादीमें डालना है । इतना बड़ा जो आपका नुकसान है उसको कर्मोंने नहीं किया, शरीरने नहीं किया, किन्हीं पर वस्तुओंने नहीं किया, किन्तु यह जीव ही स्वयं अशुद्ध योग्यता वाला है सो किसी पर वस्तुका आश्रय करके कर्मोदयका निमित्त पाकर स्वयं अपने आप अपनी ही परिणतिसे बरबाद हो रहा है । और उस स्वभावको प्रकट नहीं कर रहा है । ज्ञान स्वभाव आत्माका सर्वस्व चमत्कार है ।

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

शक्य पुरुषार्थ—देखो भैया, अब तो यही एक पुरुषार्थकी बात है कि ऐसे पर्यायोंका बन्धन होते हुये भी कर्मों द्वारा रचे हुए शरीरमें रहते हुए भी, ऐसे अनेक निमित्त प्रसंगमें भी जीवका स्वतंत्र स्वरूप नजर आये और जीवकी जो त्रुटि हो रही है उसमें भी जीवकी करामात नजर आये, यह है ज्ञानका अनोखा चमत्कार। यह भी देख रहे हैं कि परका निमित्त पाकर यहाँ कितने बवाल हुए हैं और यह भी स्पष्ट दीख रहा है कि यह बवाल जीवकी ही किसी भूलसे हुआ है। किसी दूसरेने बवाल नहीं मचाया। इन प्रसंगोंसे हमें आत्मदृष्टिकी शिक्षा मिलती है। निमित्तदृष्टिसे यह शिक्षा मिली कि मेरा स्वभाव तो निश्चल है परन्तु यह जो चलपना उत्पन्न हुआ है वह उपादानकी अयोग्यतासे अर्थात् विभावयोग्यतासे निमित्त पाकर हुआ है। हम अपने स्वभावको देखें तो ये निम्न चालें सब फेल हो जावेंगी। और उपादानदृष्टिसे देखें तो वहाँ कोई दूसरा निमित्त या आश्रय ही नहीं नजर आयेगा। यदि परका आलम्बन नहीं लिया जाता तो परका आलम्बन न होनेसे अपने मार्गका प्रकाश स्वयमेव मिल जाता है।

वस्तुस्वरूपका ज्ञान नयोंके विज्ञान बिना नहीं हो पाता है इसी कारण तत्त्वके सम्बन्धमें अनेक प्रकारके विवाद हो जाते हैं। यह निज आत्म तत्त्व क्या कूटस्थ अपरिणामी है या क्षण क्षणमें नष्ट होता रहता है? इसी सम्बन्धमें अब यहाँ बतलावेंगे कि जीव द्रव्यरूपसे तो अवस्थित है फिर भी पर्यायोंके रूपसे अनवस्थित है।

जायदि णेव ण णस्सदि खणभंगसमुब्भवे जणे कोई।
जो हि भवो सो विलयो संभवविलयत्ति ते णाणा ॥११६॥

कोई भी पदार्थ ऐसा नहीं है जो नया बनता हो या मिटता हो अर्थात् न तो कोई उत्पन्न होता है और न कोई पदार्थ नष्ट होता है। जो सत् है वह हमेशासे है और हमेशा तक रहेगा। वैज्ञानिक लोग भी यह बात बतलाते हैं कि जो है वह सदासे है और सदातक रहेगा, जो है उसका अभाव नहीं होता। प्रत्येक पदार्थ द्रव्यत्वसे न उत्पन्न होते हैं और न नष्ट होते हैं। और ऐसा भी नहीं है कि कुछ भी न हो और बन जाय तथा ऐसा भी नहीं है कि कुछ है और बिल्कुल न रहे। वैसे तो यहाँ भी आप लोग देख रहे हैं कि कोई चीज है तो क्या वह बिल्कुल उड़ जाती है? एक लकड़ीमें आग लग जानेसे खाक हो गई तो कुछ तो धुँआ रूपमें फैल गई और कुछ गरम रूपमें सूक्ष्म स्कन्ध होकर साधारण सन्निधिमें फैल गई, कुछ भस्म रूपमें रह गयी और कुछ वह भी हवामें उड़ गई, तो उस जगह कुछ खास चीज बाहर देखनेको नहीं मिली तिस पर भी लकड़ीमें जितना सत् था वह सबका सब है। चाहे वह आसमानमें धुँआरूपमें उड़ गया हो, चाहे पकड़में न आ सके, चाहे देखनेमें न आ सके, फिरभी वह सबका

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

सब सत् है ही। इससे बढ़कर और लोक को क्या कहेंगे। यह तो प्रकट ही समझमें आ रहा है।

दृष्टान्त पूर्वक पदार्थके उत्पाद-व्ययध्रौव्ययुक्तपनेकी सिद्धि :—जैसे घड़ा है, उसे फोड़ दो फिर भी कुछ है। जो है वह सदा है और जो नहीं है वह आता नहीं है। इस कारण द्रव्यत्वदृष्टिसे देखें तो पर पदार्थ अनादि अनन्त ध्रुव हैं। अब जीवोंके बारेमें देख लो, वास्तविक जीव पदार्थ जो भी हैं, जिनमें अशुद्ध दशामें सुख दुःख विकल्प, संकल्प तरंगें व शुद्ध दशामें शुद्ध ज्ञान तरंगें हुआ करती हैं। वे सब जीव अनादिसे हैं और अनन्तकाल तक हैं, तिसपर भी जीव जब मनुष्य, देव, तिर्यञ्च, नारकी जिस भी रूप इस लोक में रहते हैं वे इस रूपसे तो क्षण-क्षणमें नये-नये बनते हैं और पुराने-पुराने पर्यायोंसे बिलीन होते हैं। अब देव बन गए, देव मिटकर मनुष्य बन गए, मनुष्य मिटकर पशु बन गए। सो द्रव्यत्व दृष्टिसे सर्वत्र वही जीव है पर पर्याय दृष्टिसे वह प्रत्येक समय नये-नये पर्यायोंमें उत्पन्न होता है और पूर्व-पूर्व पर्यायों में बिलीन होता है।

द्रव्यसे एकत्व व पर्यायसे अनेकत्व—भैया, पदार्थकी यह विशेषता है कि पदार्थ शाश्वत है, किन्तु प्रतिक्षण परिणमनशील हैं। उनकी सत्ता रहते हुए भी वे पर्यायोंसे बदलते रहते हैं। यह बात बिवादकी नहीं है, यह खंडित नहीं किया जा सकता है किन्तु उत्पन्न और बिलीन होनेके बावजूद भी हम उनमें अनेकत्व और एकत्व देखा करते हैं। अर्थात् जीवोंमें हम ऐसा पाते हैं कि वही जीव है, देवमें आ गया तो वही जीव है और मनुष्यमें आ गया तो वही जीव है। परन्तु उनको शक्लोंमें, पर्यायोंमें, अवस्थाओंमें दृष्टि देते हैं तो वही नहीं है, वे भिन्न भिन्न बातें हो गई।

जीवके नित्यानित्यत्व होनेपर ही व्रतादिकी सार्थकता—देखो भैया, तभी तो ये व्रत तप आदि करना सार्थक है, क्योंकि इन दोनों पक्षोंमें यदि किसी एक पक्षका एकान्त कर लिया जाय तो व्रत तप आदि सब निरर्थक हो जायेंगे। ये निरर्थक यों बन जायेंगे कि जीव अपरिणामी है, तब तो परिणमन भी नहीं होगा वे तो शाश्वत ध्रुव हैं अपरिणामीप हैं, बदलनेवाले नहीं हैं। तब तपसे तो कुछ टसका मस होना नहीं है। तप संयम किसलिए किया जाय ? यदि यह कहो कि वह एक कुछ नहीं है, प्रत्येक समय नवीन-नवीन पदार्थ होते हैं, नवीन-नवीन जीव आते हैं, एक तो रहता ही नहीं है, ऐसा कहो तो तप संयम किसलिए करते हो ? वे तो नये-नये आ रहे हैं संयम किया तो कष्ट तुम भोगोगे और नये- नये जीव आ गये तो मजा वे लूटेंगे। यदि उत्पाद विनाशका एकान्त करेंगे, तो तप संयम उनके यहाँ निरर्थक हो गए।

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

सो न तो ध्रुव एकान्त करनेपर साधन बनता है और न क्षणिक एकान्त करनेपर कोई व्यवस्था बनती है।

अवस्थितता व अनवस्थितताके होनेपर ही पदार्थका अस्तित्व :—यह द्रव्यरूपसे तो अवस्थित है और पर्यायके रूपसे अनवस्थित है। अब इन दोनों बातोंका क्रमसे वर्णन करते हैं। ये दो बातें कौनसी है ? पहिली बात तो यह है कि उत्पत्ति और बिनाशमें एकता रहती है, दूसरी बात यह है कि उत्पत्ति और बिनाशका उनमें नानापन रहता है। जैसे एक दृष्टान्त लो-घड़ा और कुण्डका। जैसे घड़ा बने और घड़ेको इस तरहसे फोड़ दें कि उसके ऊपरका आधा भाग खतम हो जाय और कुंड सा रह जाय, जिसमें कि पानी भर देते हैं और पक्षीलोग उस कुंडपर आकर बैठते हैं। तो यह बतलाओ कि घड़ा तो नष्ट हुआ और कुंड बन गया, तो इन दोनोंमें एकत्व है क्या ? याने जो घड़ा है सोई कुंड है अथवा जो मिट्टी घड़ेके बनानेके लिए हैं, घड़ा बनाते समय पहिले पहल जो बनता हैं और बादमें छापकर, जोड़ कर बनता हैं। तो वह पूर्ण कुण्ड अवस्था हो गई। अब यह बतलावो कि जो घड़ा है सोई कुंड है क्या ? कुंड का काम अलग है, और घड़ेका काम अलग है। आपका प्रयोजन भी कुंडका अलग और घड़े का अलग है। कोई घड़ा खरीदने जाय तो कुंड खरीद ले जाय और कुंड खरीदने जाय तो घड़ा खरीद ले जाय, यह नहीं देखा जाता है। दोनों अलग-अलग चीजें हैं, भिन्न-भिन्न हैं मगर दोनोंकी आधारभूत मिट्टी है। जिस मिट्टीसे घड़ेका रूप तैयार हो जाता उसी मिट्टीसे कुंडका रूप तैयार हो जाता। जब दृष्टि शुद्ध डालते हैं तब वे एक जँचते हैं। एकत्वकी दृष्टि रखनेसे याने मिट्टीकी निगाह रखने से यह प्रतीत होता है कि जो उत्पन्न होता है वही विलीन होता है।

उत्पादव्यय ध्रौव्यका निर्देशन—अब आगे की बात देखो, मिट्टीमें ही कोई पर्याय उत्पन्न होती है और मिट्टीमें ही कोई पर्याय बिलीन होती है। तो जो उत्पन्न होता है वह अलग है और जो बिलीन होता है वह अलग है। मगर उन दोनोंका आधारभूत जो मिट्टी है वह तो ध्रुव है। जब पर्याय दृष्टिसे देखो तब उत्पाद व्यय हुआ। ये दृष्टियाँ तो की हैं किन्तु यह जो दृष्टान्त दिया हैं वह मोटा दृष्टान्त है क्योंकि मिट्टी द्रव्यरूप नहीं है। वह भी पर्याय है, पर समझनेकी सीमामें मिट्टीको द्रव्य मानलें और घड़ेको पर्याय मानलें और समझकर असलियत की ओर बढ़ें।

इसी तरह जीव व उसकी पर्यायको देखेंकि जीव देव आदिक पर्यायोंसे तो उत्पन्न होता है और मनुष्यादिक पर्याय रूपमें बिलीन होता है। याने देव बन गया है और मनुष्य मर गया है। ऐसी अवस्थामें यदि एक जीवपर ही दृष्टि दें तो उत्पन्न होता है, तो वही है और बिलीन होता है तो वही है। क्योंकि पर्यायका आधारभूत जो

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

जीव द्रव्य है वह तो ध्रुव है ना ? उस दृष्टिसे यह पदार्थ ध्रौव्यवान हुआ और अवस्थाकी दृष्टिमें उत्पाद व्यय वाला हुआ। यह जीवकी बात नहीं, समस्त पदार्थोंका ऐसा ही स्वरूप है कि वे हैं और परिणमते रहते हैं।

वस्तुस्वरूपका परिचय प्राप्त किये बिना विश्राम पाना असम्भव—भैया, वस्तु स्वरूपको अपने उपयोगमें लो और देखो यह अपने आपमें है और परिणमता रहता है, इतना ही उसका काम है, इतनी ही उसकी दुनिया है, इससे बाहर उसका कोई वास्ता नहीं है। बाहर तो अन्य-अन्य पदार्थ हैं, सो वे भी तो अपने आपके स्वरूपमें हैं और परिणमते रहते हैं। उनसे मेरा सम्बन्ध नहीं है। वह सब तो अपनी कल्पनाओंकी जानकारीका विषय बन जाता है। किन्तु मोहकी प्रेरणासे बाहरी पदार्थोंमें दृष्टि फँस जाती है। वस्तुतः मैं हूँ और परिणमता हूँ, इतनी ही मेरी दुनिया है, इसके आगे मेरा कहीं कुछ नहीं हैं, इस अध्यात्म दृष्टिसे देखनेपर यह सिद्ध होता हैं कि मैं शाश्वत चैतन्य पदार्थ हूँ, और प्रतिक्षण परिणमता रहता हूँ। सो मैं कुछ कर पाता हूँ तो अपने ही चैतन्यात्मक परिणमनको कर पाता हूँ। दूसरी बातों को मैं नहीं कर सकता। इस निज चैतन्यात्मक परिणमनको मैं करता हूँ। किसके द्वारा करता हूँ ? अपने द्वारा यह अपनी क्रियाका फल भी खुद प्राप्त कर लेता है।

रागपरिणमनका कर्तव्य—अब एक रागको ही दृष्टान्तमें ले लो। इस रागको कर कौन रहा है ? यह मैं खुद ही तो राग कर रहा हूँ। मैं किसको कर रहा हूँ ? रागात्मक निजको कर रहा हूँ। मेरे में जो राग परिणमन होता है वह मेरे द्वारा होता है। कोई दूसरा मेरेमें रागपरिणमन नहीं करता, मेरेमें रागपरिणमन मैं ही तो करता हूँ, इसलिए इन रागोंके परिणमनका कर्त्ता मैं ही तो हूँ। दूसरे पदार्थ मेरे रागोंके कर्त्ता नहीं हैं। जो कुछ राग परिणमन मेरेमें हो गया है वह मैंने ही किया है। घरके चार जीवोंको माना है कि इन पर मेरा अधिकार है तो क्या उन चारों जीवोंका परिणमन भी वही कर देता है ? अरे उनका परिणमन वे ही करेंगे, कोई दूसरा नहीं करेगा। मैं तो सर्वत्र अपना ही चैतन्यात्मक परिणमन करता हूँ। जब जो मेरे में आयगा वह अपनेमें ही अपने द्वारा आयगा। अब जो किया वह अपने में ही किया। हम दूसरोंमें कुछ कर सकते हैं क्या ? नहीं।

मेरे जो रागात्मक परिणमन हैं वे मेरे ही परिणतिसे होते हैं। किसी दूसरेके द्वारा मेरे रागात्मक परिणमन नहीं होते, क्योंकि सभी पदार्थ हैं और प्रति समय व अपने-अपने में परिणमते रहते हैं, किसीको किसी अन्यके कामको न अवकाश है और न कोई किसीका काम कर सकते हैं। इन रागात्मक परिणमनोंसे क्या लाभ हैं ? इनकी तो अपेक्षा करना ही उचित है।

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

रागादिक परिणमन करनेके श्रमका फल—इन रागात्मक परिणमनोंके करने से तो आकुलताएँ ही हो जाती हैं। इन रागात्मक परिणमनोंका फल आकुलता मिली वह भी हमको ही मिली। तो इन आकुलताओंका फल किसको मिला? अपने को ही तो मिला। जैसे आप किसी पुत्रपर खूब राग करें और पुत्र आपको कुछ न समझे तो जब उन पुत्रोंकी दृष्टि तुम्हारे ऊपर नहीं है, तो वे तो अपना मौज कर रहे हैं, तुम चाहे जितने रागादिक करलो, उनका फल तुम्हें ही भोगना पड़ेगा। लड़के तो अपने ही मौजमें मस्त हैं, चाहे आप कितने ही दुःखी हो रहे हों। सो मेरे जो भी परिणमन होते हैं उनका फल भी मैं ही हूँ। यही सिद्ध हुआ कि मैं करता हूँ, मेरा मैं ही कर्म हूँ, और मेरा कारण मैं ही हूँ और कर्म भी मैं ही हूँ। यों अपने आपकी आत्माके एकत्व पर दृष्टि जाय, अपने ही आत्माके एकत्वका निश्चय हो तो उसमें समता आ सकती है, शान्ति आ सकती है, धर्म आ सकता है।

एकत्वदर्शन—भैया, धर्मसाधनाके लिए हम क्या करें? क्या हाथ पैर चलाते रहें? धर्मके लिए क्या करें? अपने आपके एकत्वपर निश्चय करो, अर्थात् मैं ही कर्त्ता हूँ, मैं ही कर्मफल हूँ, मैं ही कर्म हूँ, मैं ही कारण हूँ। मेरेमें मेरेसे बाहरका कुछ तत्त्व नहीं है, ऐसा एकत्वका निश्चय होनेपर पर पदार्थोंकी ओर दृष्टि न रहेगी और पर-पदार्थोंका आलम्बन न रहेगा, उसका बिकल्प भी न रहेगा। सो आत्माके एकत्वकी साधना प्रबल होती चली जायगी। भैया, तुम्हारे सुखी होनेके लिए यह दृष्टिही अमृत है। इस अमृतका ही पान करके अपनी ऐसी दृष्टि बनाओ कि मैं अकेला हूँ, अपने का ही करने वाला हूँ और अपने ही द्वारा करता हूँ। तथा मेरे करने से जो भी प्रयोजन बन गया, जो भी फल हो गया, वह मुझसे ही हो गया। सो मेरी दुनियाँ, मेरा बैभव, मेरा वस्तुत्व, मेरा स्वरूप। मेरेसे बाहर नहीं है। मेरा तो मैं ही हूँ, जिसने ऐसा समझ लिया तो समझो कि उसने मोक्षका मार्ग प्राप्त कर लिया। चौरासी लाख योनियोंमें भ्रमण करना मिटा लिया।

जीवनकी सफलता—यह नर जीवन बड़ा अमूल्य है, इसमें बिवेक शक्ति प्रबल है, ऐसा नरजीवन यदि आत्म दृष्टि करनेके अवसरमें काम आ गया तो यह नर जन्म सफल है। यदि हम अपने एकत्वमें दृष्टि लगायें तो कल्याण है, अन्यथा यह भाव संसार तो आपके स्वागतके लिये हाजिर ही है। मैंने इनको बहुत कुछ सुख दिया किन्तु ये सब मेरे विरुद्ध हो रहे हैं, इत्यादि विपरीत भाव होते हैं इसीसे क्लेशोंका बोझ लदता है। क्लेश भी बाहर नहीं हैं, अपने ही ख्याल बनानेसे क्लेश उत्पन्न हो जाते हैं। सो यह ख्याल ही तुम्हारे दुःखोंका बन्धक हो रहा है। अपने शुद्ध स्वरूपके एकत्वका आलम्बन करलो, यही शान्तिका उपाय है। इस उपायके लिए भगवान जिनेन्द्र देवने वस्तुके स्वरूपको स्पष्ट प्रदर्शित किया है।

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

अपनेमें नित्य प्रकाशमान अवस्थित तत्त्वके दर्शनका श्रेय—इस प्रकरणमें यह कहा जा रहा है कि पदार्थ द्रव्यरूपसे तो अवस्थित है और पर्याय रूपसे अनवस्थित है। अवस्थितका अर्थ है वही का वही रहना और अनवस्थितका अर्थ है वही का वही न रहना। अभी तक अन्य थे अब अन्य कुछ हो गये इसको कहते हैं अनवस्थित। जब पदार्थोंके अस्तित्वपर दृष्टि देते हैं, उसके स्वभावका लक्ष्य करते हैं तो वह पदार्थ अवस्थित है, वहीका वही है। जैसे एक ही भवमें, इस मनुष्य भवमें हो तो जो बचपनमें जीव था वही का वही अब है, यह तो अवस्थित ही है, जो था सो ही है, अन्य कोई नहीं है, इस प्रकार तो हो गया अवस्थित; किन्तु अनवस्थित भी आप लोग वैसे रहते हैं, रहते हैं ना बहुत-बहुत। बचपनमें और ढंगके थे, जवानीमें और ढंग बना और बुढ़ापेमें और ढंग बन गया। इस तरह रोज-रोज नया नया ढंग बनता है। रोज रोजकी बात ही क्या, घंटे घंटेमें नया-नया ढंग बनता है। घंटे घंटेकी बात ही क्या मिनट मिनटमें और और ढंग बनता है। मिनट मिनटकी क्या बात, सेकेण्ड सेकेन्डमें अन्य अन्य ढंग बनता है। सेकेन्ड की बात ही क्या, प्रति समय और और ढंग बनता है।

दृष्टि के प्रयोजन—भैया, कहते हैं ना लोग कि तुम एक बातमें कायम ही नहीं रहते हो, क्षण-क्षण में बदलते ही रहते हो। इसी प्रकार पदार्थ भी सब किसी एक दशामें कायम नहीं रहते हैं, रह ही नहीं सकते हैं, क्योंकि वे पदार्थ हैं, परिणमन-शील हैं। पर्यायोंकी दृष्टिसे देखें तो वे अनवस्थित हैं। जैसे घड़े और कुण्ड आदिक पर्यायोंमें मिट्टीके अस्तित्वको देखें तो वह तो अवस्थित है, वहीका वही है, कोई दूसरी चीज नहीं आ गई। मिट्टीकी दृष्टिसे देखें तो वह अवस्थित है और उसकी दशाओंको देखें तो उसमें अनवस्थितता है। तभी तो जिसको दशाओंका तो प्रयोजन हो और द्रव्यत्वकी बात सामने रखदें तो उस प्रयोजनवाले को संतोष न होगा तथा जिसको द्रव्यत्वमें प्रयोजन हो और उसके सामने मात्र पर्यायके प्रयोजनकी ही बात रख दी जाय तो उसको भी संतोष नहीं होता। जैसे अब लगी तो प्यास है और घड़ा फोड़ कर धर दें तथा कहा जाय यह कि यह मिट्टी तो वही की वही है, मैंने कुछ भी तो नहीं किया, तो बताओ इसमें कैसी बिडम्बना बनेगी। अरे, उस मिट्टीसे तो काम नहीं निकलता, काम तो उस घड़ेसे था, उसे मिट्टीकी बात कहकर कैसे संतोष कराया जा सकता है। इसी प्रकार जिसका द्रव्यसे तो प्रयोजन है और उसको पर्यायमें हठ करके सामान्यतत्त्वका निषेध किया जाय तो उसका प्रयोजन तो सिद्ध नहीं होगा फिर उसे भी संतोष कैसे हो।

जैसे कोई आदमी बाजारसे सोना खरीदने चला और बोला दूकानदारसे कि भाई सोना चाहिये। वहाँ कोई झूठ मूठ सतावे कि भाई यह तो कड़ा है, यह तो कुन्डल है सोना हमारे पास नहीं है तो क्या यह कहना ठीक है। अरे भैया, कड़े और

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

कुन्डल में ही तो सोना है। पर्यायोंकी दृष्टि गौण की, तो वहाँ स्वर्ण नजर आया। सो भैया, उसे तो उस स्वर्णसे प्रयोजन है, दशाओंसे नहीं है।

विभिन्न दृष्टिके विभिन्न परिणाम—अन्य भी एक दृष्टान्त लो-तीन मनुष्य बाजार चले। उनमेंसे एक चाहता था सोनेकी कलसिया, इसलिए कि प्रभुका अभिषेक करेंगे सोनेकी कलसियासे। एक चाहता था मुकुट। इसलिए कि पूजा करेंगे तो मुकुट बांध कर करेंगे और एक चाहता था खाली सोना। ये तीनों एक दूकानमें पहुँचे, जिस दूकानमें सोनेकी कलसियोंको तोड़कर मुकुट बनाए जा रहे थे। उसने सोचा कि कलसियाँ बहुत दिनों की रखी हैं, बिकती नहीं हैं सो इन पूजाके दिनोंमें मुकुट बिक जावेंगे। इन तीनोंमेंसे जो चाहता था कलसिया वह तो दुःखी होता हुआ विचार रहा है कि हाय मैं आधा घन्टा पहले आ जाता तो बनी बनायी कलसिया मिल जाती। जो मुकुट चाहता था वह बड़ा प्रसन्न हुआ कि लो अभी १० मिनटमें ही मुकुट तैयार हुआ जाता है। जो खाली सोना चाहता था वह न तो हर्षित था और न दुःखी था। उसको मुकुट रहता तो, कलसिया रहती तो, सबमें शान्ति थी, सबमें उपेक्षाभाव था ये जो तीन प्रकारके भाव हैं वे उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यकी दृष्टि बताते हैं कि एक कलसियाका व्यय देखकर दुःखी होता, दूसरा पुरुष मुकुटका उत्पाद देखकर सुखी होता और तीसरा सबमें स्वर्णत्व देख रहा, वह न कलसियोंके व्ययसे सुख दुःख करता और न मुकुटके उत्पादसे सुख दुःख करता, उसके तो सर्वत्र उपेक्षा भाव हैं।

पर्यायके लक्ष्यमें मोहका कारणत्व—इसी प्रकार जिनके पर्यायदृष्टिकी मुख्यता रहती है और जो उस पर्यायके लक्ष्यमें सुधार बिगाड़ तकते रहते हैं, उस पर्यायके लक्ष्यमें इतना बढ़ जाते हैं कि उपचारसे ही मोह हो जाता है, अर्थात् इस वस्तुके कारण सुधार होगा इसलिए संचय करें ऐसा व्यामोह हो जाता है तो वे परिग्रही व दुःखी बन जाते हैं। वैसे तो जैसे द्रव्यत्वका खण्डन करके पर्याय नहीं पकड़ना उचित है, वैसे ही पर्यायका खण्डन करके द्रव्यत्वको नहं मानना चाहिये, क्योंकि द्रव्य और पर्याय दोनों तत्त्व ऐसे हैं कि द्रव्यके बिना पर्याय नहीं रह सकता और पर्यायके बिना द्रव्य नहीं रहता है। जैसे बचपन, जवानी, बुढ़ापा इनमें ही तो मनुष्यत्व राजता है। यदि मनुष्यत्व ही न मिला होता तो बचपन, जवानी, बुढ़ापा ये कहां पर बिराजते। इन तीनों दशाओंके बिना मनुष्य कुछ नहीं है और मनुष्यत्वके बिना तीनों दशाएँ कुछ नहीं हैं।

स्वभावके अपरिचयमें अनेक कल्पनायें—इन पदार्थोंके स्वभावको जाने बिना इस लोककी दृष्टिमें इसके निर्णयकी अनेक कल्पनाएँ होने लगती हैं। कोई यह कहते कि ईश्वरने जगतको बनाया है, कोई यह कहते कि इसके लिए तीन देवता नियत हैं। एक दुनियाको बनाता रहे, एक दुनियाको मिटाता रहे और एक दुनियाकी रक्षा करता

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

रहे। देखो भैया, तीनों देवताओंका काम प्रत्येक अणु अणुमें, प्रत्येक पदार्थमें स्वतः सिद्ध हो रहा है। अथवा यों कहलो कि प्रत्येक पदार्थ त्रिदेवतामय है। वे तीन देवता हैं—उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य। सो यह त्रिदेवत्व प्रत्येक पदार्थोंमें अपने आप बसा होता है।

पदार्थोंमें चलाचलता—अब इस त्रिपुटीमें यह निर्णय किया जा रहा है कि इसमें जो चलपनेका अंश है वह है पर्यायदृष्टिमें पर्यायके द्वारा, और जो अचलपनेका अंश है वह है द्रव्यत्वमें द्रव्यदृष्टिके द्वारा। सो पदार्थ जितने हैं सब चलाचल हैं। कोई पदार्थ ऐसा नहीं है जो चल ही हो और कोई पदार्थ ऐसा नहीं है जो मात्र अचल हो। जिसके चलपना रंच भी न हो वह असत् है और केवल चल भी असत् है। यदि कुछ है तो वह चलाचल है। पदार्थोंका चलपना जुदे जुदे प्रकारका है। जैसे पुद्गलमें चलपना इस तरह हैं कि वह खिसक गया, मिट गया, बरबाद हो गया, चला गया, उड़ गया आदि। और जीवका चलपना यों है कि लो अब क्रोध हुआ, लो अब मान आ गया, लो अभी सुख था, अब दुःख आ गया, अभी तक प्रसन्न था अब अप्रसन्न हो गया, अभी तक कषायमें था, लो अब अकाषायमें पहुँच गया। गुणस्थान, जीव समास ये सब जीवके चलपने हैं। ये ध्रुव चीज नहीं है। सिद्ध अवस्था भी तो सदृश चल होती है।

सिद्धोंकी शुद्धता—सिद्धोंके गुणस्थान नहीं हैं, क्योंकि सिद्ध गुणस्थानातीत हैं, वे गुणस्थानसे ऊपर होते हैं। इसी प्रकार सिद्धोंमें मार्गणावोंका भेद एक एक रहित वाला चलता है, सिर्फ कुछ ही मार्गणावोंका रहित वाला भेद नहीं चलता। जैसे कि ज्ञानमार्गणामें सिद्ध भगवानके ज्ञानमार्गणाका कौनसा भेद है? केवल ज्ञान। दर्शनमार्गणामें दर्शनमार्गणाका भेद केवलदर्शन है और सम्यक्त्वमार्गणामें क्षायिक सम्यक्त्व है। अन्य मार्गणावोंके भेदोंमें सिद्धोंके रहितपना है। जैसे गतिमार्गणामें गति रहित, इन्द्रियमार्गणामें इन्द्रिय रहित आदि, यों वह मुक्त आत्मा गुणस्थान और जीव समासोंसे व मार्गणावोंसे परे है सो वह भी पर्याय है, वह द्रव्यपना नहीं है। द्रव्यपना तो वह है जो कि अनादिकाल से अनन्तकाल तक एक स्वरूप रहता है।

त्रिकाल व्यापक व सर्व दशाओंका स्रोत—अब त्रिकाल व्यापी सर्व पर्यायोंके स्रोतरूप एकस्वरूप आत्मद्रव्यकी खोजमें चलें। जिस प्रकार—कि एक जीव है वह निगोदमें था। वहाँ से निकलकर त्रस पर्यायमें आया, उसमें भी उत्कृष्टकाय मनुष्य हुआ, फिर वहाँ मुनि बना, फिर अरहंत अवस्थामें पहुँचा, फिर सिद्ध हुआ। कितनी दशाओंसे यह जीव गुजरा, पर उन सब दशाओंमें जो एक ही रहा, एक ही स्वरूप रहा, वही द्रव्य है। उन दशाओंमें एक रूप क्या रहा ? चैतन्य, चित्स्वभाव। वह

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

चित्स्वभाव, चैतन्य, ज्ञायकस्वभाव आत्मद्रव्य है उसकी दृष्टिसे जीवको देखा तो सर्वत्र वही है।

द्रव्यदृष्टिका चमत्कार—यह द्रव्य दृष्टि इतनी तीक्ष्ण होती है कि अनेक आवरणोंको भेदकर ठीक अन्तरमें एक्सरेके समान पहुँच जाती है। जैसे किसी हड्डीका फोटो लेनेवाला यन्त्र, एक्सरा फोटो लिए जाने वाले व्यक्तिके वस्त्रादिको भेदकर याने सूई चुभोकर नहीं, किन्तु फोटोमें न लाकर मात्र उस हड्डीका ही फोटो लेगा। देखो भैया, एक्सरा एक अजीब यान्त्रिक यंत्र इतने आवरणोंको भेदकर, उसके कितने अन्दर पहुँच गया। इसी प्रकार द्रव्य दृष्टि एक्सरा लेनेवाले यन्त्र से भी अधिक पैनी है।

यदि द्रव्य दृष्टि होगी तो वह द्रव्य दृष्टि न तो निगोद अवस्थाको ग्रहण करेगी, न इन्द्रिय अवस्थाको ग्रहण करेगी, न मनुष्य अवस्थाको ग्रहण करेगी, न मुनि अवस्थाको, न अरहंतको, और न सिद्ध प्रभूकी अवस्थाको ग्रहण करेगी, किन्तु इन सब पर्यायोंको भेद करके अर्थात् इन सब पर्यायोंको न ग्रहण करके मात्र एक शुद्ध चैतन्यको ग्रहण करेगी। तो जिस दृष्टिका गुण गुप्त ही गुप्त है, काम ही गुप्त है, गुप्त होकर गुप्तको, अव्यक्तको भी ग्रहण करले, ऐसी दृष्टि आज तक मोही संसारी जीवको नहीं प्राप्त हुई। इसी कारण जगतके जीव विषयोंमें रति करते हुए अब तक रुलते चले आ रहे हैं। इन विषयोंमें जो मौज है, वैभवका उपयोग है, अच्छा अच्छा रूप देखना है, इन्द्रियविषयोंका भोगना है ये सब इस जीवने अनन्त बार पाये हैं। इन विषयोंका सब वृतान्त अनन्तों बार सुना है, परिचयमें आया है, इन्हींमें यह रचा चला आया है किन्तु निज एकत्वकी दृष्टि इसको कठिन हो रही है।

पर्यायदृष्टिका फेर—भैया, जीवलोकको विषयोंकी बड़ी जानकारी है, दौड़ दौड़ कर खूटा तोड़ कर, खूटा तोड़नेका मतलब यह है कि जीव चाहे धार्मिक वातावरणमें भी आ गया हो, चाहे ज्ञानकी प्रगतिमें लगा हो, चाहे ज्ञानी विरक्त संत जनोंका संग पाकर कुछ अपने उद्धारका लक्ष्य भी कर चुका हो, पर भीतर ही मोह यदि उठ खड़ा हो जाता है तो वेदना बढ़ जाती है। यों मोहके ही कारण जीव अपनेको बन्धनमें करके धार्मिक वातावरणका ध्यान छोड़कर विषयोंमें घुसने लगता है, सो धार्मिक खूटोंको तोड़कर विषयोंकी ओर प्रवेश करता है। कुछ नियम ही ले लें, प्रतिज्ञा भी ले लें, फिर भी भीतरमें ऐसा मोहका धक्का लगता है कि नियमका, व्रतका ख्याल गौणकर जिस तरहसे मौजमें रह सकें, चलनेको दौड़ते हैं। तो वह सब बात क्या है ? पर्यायोंकी दृष्टिका फेर है।

निर्विषयपराङ्मुख दृष्टिकी विषयोन्मुखता—द्रव्य का जिसे परिचय नहीं,

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

जो द्रव्यको ही पर्याय मानले कि यही सब कुछ है, अपने आपको पर्यायस्वभावरूप माने और अन्य पदार्थोंके पर्यायको भी निजस्वभाव माने तो ऐसी पुरुषोंकी दृष्टि चूँकि मोही है, सो विषयोंकी ओर ही जायगी क्योंकि उनका उपयोग तो निर्विषय, निश्चल एक स्वरूप ज्योतिर्मय आत्मतत्त्वको देखता ही नहीं है।

शुद्धविकास व स्वाभाविक समानता—जैसे कि निर्मल जलको और जलके स्वभावको अगर जानोगे तो एक लक्षण ही मिलेगा। स्वच्छता, निर्मलता उस जलमें है और इस जलमें भी स्वच्छता स्वभावमें है। तुम्हारा स्वभाव और परमात्माका विकास ये दोनों एक स्वरूप हैं। इसी कारणसे आप हम और भगवानमें द्रव्यत्वसे कोई अन्तर नहीं है। अन्तर तो यह है कि भगवानमें केवल शुद्ध विकास ही दीखता है और यहाँ अशुद्ध विकास। वहाँ देखो प्रभुका विकास, यहाँ देखो इसका अपना विकास, तो उसके विकासमें अन्तर है ही। उनका विकास है अनन्तानन्दमय और हम लोगों का विकास है क्लेशमय, दुखमय, सुखमय, संसारकी अवस्थाओंमय, यह अन्तर है हममें और उस प्रभुके विकासमें। प्रभुके विकासमें और हमारे स्वभावमें मेल करें तो एक है, प्रभुके स्वभावके समान ही हमारा स्वभाव है पर हमारे विकासमें और प्रभुके विकासमें समानता नहीं है। सो जिस रूपसे अपनेमें हम प्रभुके समान हैं उस स्वभावके लक्ष्यको लेकर चलें तो शान्तिका मार्ग मिल सकता है।

जीव अवस्थितता व अनवस्थिततामें अनवस्थित—अब तक यहाँ यह कहा गया है कि जीव द्रव्यरूपसे तो अवस्थित है और पर्यायके रूपसे अनवस्थित है अर्थात् जब द्रव्यत्वपर दृष्टि देते हैं तब यह प्रतीत होता है कि वहीका वही जीव है और जब पर्यायपर दृष्टि देते हैं तब भिन्न-भिन्न प्रतीत होते हैं। जो सुबह था वह दोपहरको नहीं है और जो दोपहरको था वह सामको नहीं है। जो इस भवमें हैं वह अगले भवमें नहीं, जो पहले भवमें था वह अब नहीं। इस तरहसे इस जीवको अनवस्थित कहते हैं। इसका अनवस्थितपना तो स्पष्ट जाहिर है। कभी पशु हुए, कभी पक्षी हुए तो पशु पक्षी इत्यादि भी बदलते रहते हैं। जीवका अनवस्थितपना बिल्कुल स्पष्ट नजर आ रहा है और अवस्थितपना नजर आ रहा नहीं। कीड़े हो गये, मकोड़े हो गये, मर गए, कुछ और हो गए, यह अनवस्थितपना विशद नजर आ रहा है। तो यहाँ जीवनमें अनवस्थितपना क्यों हुआ? इसकी अनवस्थितताका क्या कारण है? इस बातको यहाँ प्रकट करते हैं।

तम्हा दु गत्थि कोई सभावसमवट्ठिदोत्ति संसारे।
संसारे पुण किरिया संसरमाणस्स दव्वस्स॥ १२०॥

इस संसारमें कोई ऐसा नहीं है जो स्वभावसे अवस्थित हो, अर्थात् जो एक रूप

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

चल रहा हो ऐसा कुछ भी नहीं है। वास्तवमें संसार परिभ्रमण करने वालेको याने संसारी जीवकी विभाव क्रियाको कहते हैं।

शुद्ध जीवकी अव्याकृत अनवस्थितता—परमार्थसे देखो तो पर्यायदृष्टिसे शुद्ध जीव भी अनवस्थित है पर उसे अनवस्थित यों नहीं कहते कि उनका प्रतिक्षण शुद्ध-शुद्ध परिणमन चल रहा है। अनवस्थितपना तो वहाँ कहा जाता है कि जिसके परिणमनमें भेद नजर आता है। उनके परिणमनमें भेद नजर नहीं आता है फिर भी जो पर्याय पूर्व समयमें है वही पर्याय उत्तर समयमें हो ऐसा तो मुक्त जीवोंके भी नहीं है। हाँ उनके समान समान ही पर्याय होती है। वह पर्याय दूसरे क्षण हो ऐसा नहीं है, क्योंकि द्रव्यका स्वभाव ही है कि प्रतिक्षण ऐसा इसका परिणमन होता ही रहता है। सभी द्रव्योंमें अपना-अपना पूर्व पर्याय विलीन होता है और उत्तर पर्यायका उत्पाद होता है। यह तो पदार्थका स्वरूप ही हैं, बस अन्तर्भेद यह हो गया कि उपाधि न होनेसे और अपने आपका शुद्ध विकास होनेसे जो भी परिणमन परमात्मामें चलते हैं वे समान समान परिणमन चलते हैं।

प्रभुके ज्ञानमें कालकृत विकल्पोंका भी अभाव—ज्ञानबलके द्वारा इस समय त्रिलोक त्रिकालवर्ती समस्त अर्थ को जानलें तो अगले समयमें भी ज्ञानबलसे इतना ही जान लेंगे, उसके जानने में भेद नहीं पड़ता है। इतना भी तो उसमें घुमाव नहीं है कि इस समय जिस पदार्थको जानते हैं अगले समय में उसको भेद रूपसे जानें, इतना भी उसमें घुमाव नहीं, इनका सीधा परिणमन है। जैसे कि मोटे रूपमें लोग कह देते कि जिस चीजको इस समय वर्तमान रूपमें जान रहे हैं उस चीजको अगले समयमें भूत रूपसे जानेंगे और जिसको अभी भविष्य रूपसे जानते हैं उसे वर्तमान रूपमें जानने लगेंगे यह भेद भगवानके ज्ञानमें नहीं है। इतना निर्मल निर्विकार ज्ञान हैं, प्रभु का कि वह जानता सब वही है जैसा जो पदार्थ हैं किन्तु किसी भी प्रकार का भेद करके नहीं जानता।

कालकृत अविकल्पताके लिए क्षेत्रकृत अविकल्पताका एक उदाहरण—भैया एक उदाहरण लेलो। जैसे यहाँ गेहूंके कई दाने रखे हैं उन सारे दानोंको तो देखलें और यह ख्याल न लायें कि इस दानेके पहिले यह दाना रखा, इसके पहिले यह रखा। इस तरहसे क्या कोई जान नहीं सकता है? जानते हैं। जितने दाने रखे हैं सबको जान लिया और जाननेमें भी वे ठीक ढंगमें याने ज्ञेयाकारकी निवृत्तिमें क्रम तो आ गया मगर जाननेकी क्रियामें क्रम नहीं आया कि वह जाननेमें भी विकल्प करता हो कि इसके पहिले यह पर्याय है, इसके बाद यह पर्याय है ऐसा उनके जाननेमें क्रम नहीं है और जिस तरहके पदार्थ हैं उस तरहका जान लेना हो रहा है।

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

इसके लिये यह उदाहरण काफी हैं कि गेहूँके दाने सब एक-एक करके रखे हैं, यह हम सब जान जाते हैं पर उसमें यह क्रम नहीं लगाते हैं कि इसके पहले यह रखा, इसके पहले यह रखा। गेहूँका ढेर बाजारमें रखा हो उसको हम जान लेंगे और जो कुछ जान रहे हैं वह उसके अविरुद्ध जान रहे हैं। रखे हैं इस बगलमें दाने और जानते हों उस बगलमें, ऐसा ती नहीं है। सब देख जान कर यह भी विकल्प नहीं है कि इस दानेके बाद यह दाना, इस दानेके बाद यह दाना। जैसा है तैसा जान लिया, फिर भी विकल्प नहीं है। यह है ज्ञानकी उदारताका चमत्कार।

इस प्रकरणमें बात यह बताई जा रही है कि पर्यायदृष्टिसे कोई भी पदार्थ अवस्थित नहीं है, अनवस्थित है। परमात्मपदार्थ अनवस्थित यों नहीं कहे जाते कि उनके पूर्वोत्तर पर्यायमें भेद नहीं है, समानता है, वैसी ही वैसी पर्याय बनती हैं। खैर, इस प्रकरणमें संसारी जीवोंका वर्णन चल रहा हैं कि इस संसारमें कोई भी जीव ऐसा नहीं है जो स्वभावसे अवस्थित हो, इस वाक्यका कितना ही अर्थ लगाते चले जायें इस संसारमें अर्थात् समस्त पदार्थ समूहमें कोई सा भी पदार्थ ऐसा नहीं है जिसका ऐसा स्वभाव हो कि वह तो परिणमन ही न करेगा, निश्चल ही रहेगा। जिसमें परिणमन नहीं है ऐसा कोई पदार्थ नहीं है सो यह कह रहे हैं कि जीव पदार्थ द्रव्यरूपसे अवस्थित है और फिर भी पर्यायोंके रूपमें अनवस्थित हैं। द्रव्यको यहाँ सामान्य माना और पर्यायको विशेष माना। सो पदार्थोंको भी सबको निरखते जावो, सब पदार्थ सामान्यरूपसे अवस्थित हैं और विशेषरूपसे अनवस्थित हैं।

अपेक्षावोंका योग्य उपयोग न होनेसे आपत्तियाँ—पदार्थोंमें रहनेवाले इस स्वभावका प्रतिपादन करके जो विस्तृत वर्णन चला उसको सुन कर भगवान जिनेन्द्र देवके शासनकी दृष्टियोंको किसीमें किसीको मिला कर विद्यावंतोंने जो धारणा बनाई उससे कितने मार्ग दिखाई देने लगे कि जीव ब्रह्म है, अपरिणामी है, क्षणिक है, ईश्वरकृत है आदि। सो भैया, पदार्थका मूल स्वरूप अवश्य ज्ञात कर लेना चाहिए। जब पहिले रेल गाड़ी चली थी तो सुनते हैं कि जब रेलगाड़ी निकले तो हर गाँवोंके लोगोंकी भीड़ उस रेलगाड़ीको देखनेके लिये निकले कि कौन सी अजीब चीज है। रेलगाड़ीके पहिले हिस्सेको देख कर लोग कहते थे कि यह जो काला-काला लगा है इसमें देव हैं और वही देव इसको चलाता है। अच्छा जब भ्रम धीरे-धीरे मिट गया तो अब वे यन्त्रकी ठीक-ठीक बात जान गए। पहिले जानते थे कि कोई देवशक्ति है जिससे यह चलती है, पर अब जानते हैं कि इसमें पानी है, कोयला है और भाप बनती है तब यह चलती है।। कोई देवता चलाता है, अब यह भ्रम नहीं है। जब पदार्थगत परिणमनशीलताकी विशेषता समझमें नहीं आती तब किसी अन्यको कर्त्ता

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

खोजनेका श्रम किया जाता है। पदार्थ है और परिणमते हैं, ये ये बातें पदार्थमें तन्मय होकर गुम्फित हैं। मैं हूँ और परिणमता हूं। यदि परिणमन नहीं तो वह है ही नहीं। जो है नहीं वह परिणमेगा क्या। है का और परिणमनका ऐसा परस्परमें अनिवार्य समन्वय है।

है और होने का अविनाभाव—भैया, संस्कृतभाषाके विद्वान जानते हैं कि एक धातु है अस्, "अस् भुवि" जिसके वर्तमान कालके रूप चलते हैं अस्ति स्तः सन्ति, जिसका अर्थ हिन्दी में होता है, हैं, हैं। पर अस्तिका असली अर्थ क्या है? अस्, भुवि, अस् का अर्थ है भू अर्थात् होना। भू का अर्थ क्या है? भू का अर्थ बताया गया है भू सत्तायां। अब भू का अर्थ है अस् वा अस् का अर्थ है भू। भू के वर्तमान कालमें रूप चलते हैं—भवति, भवतः, भवन्ति। इनका अर्थ है—होता है, होते हैं। तो ऐसा परस्पर अर्थ प्रदानका तात्पर्य क्या निकला कि है, होता है बिना नहीं है और होता है, है बिना नहीं है। है का अर्थ ले लो ध्रौव्य और होता है का अर्थ ले लो उत्पाद व्यय। माने जो नहीं है वह हो और जो पहिले था वह मिटे और नया होने व पुराना मिटने पर भी वही का वही रहे। तो होता है का अर्थ है ध्रौव्य। ध्रौव्य उत्पाद व्ययका बहिष्कार कर दे तो ध्रौव्य का अभाव हो जायगा और उत्पाद व्यय ध्रौव्य का वहिष्कार करदें तो उत्पाद व्ययका हो नाश जाय। यही है भेदवाद व अभेदबाद की बात। अभेदवादने उत्पाद व्ययका बहिष्कार किया और भेदवादने ध्रौव्यका बहिष्कार किया। उत्पाद व्यय ध्रौव्यका अबिनाभाव जाने बिना यह अनर्थ हो गया।

जीवलोककी अनवस्थितताका हेतु संसार—यहाँ कहा जा रहा है कि पदार्थ द्रव्यत्वके रूपमें अवस्थित है और पर्यायके रूपमें अनवस्थित है। सो जिस कारण यह जीव अवस्थित है और अनवस्थित भी हैं सो उस कारण यह मालूम पड़ता है कि संसारका कोई भी जीव ऐसा नहीं हैं जो स्वभावसे अवस्थित ही हो। इस संसारमें जीवलोकमें जो अनवस्थितपना आया है उसका हेतु क्या है? संसार। यहाँ संसार का जो अर्थ अभीष्ट है सो आगे कहेंगे।

अवस्थित ही अनवस्थित व अनवस्थित ही अवस्थित—अब यहाँ बतलाते है कि यह अनवस्थितपना जीवमें स्वयं ही बना हुआ है, क्योंकि यह जीव मनुष्यादिक पर्यायों रूप है। कोई मनुष्य हो गया, कोई तिर्यञ्च हो गया, कोई देव हो गया, कोई नारकी हो गया, कोई सिद्ध हो गया। सो पर्याय तो बदल गयी, किन्तु उस जीव को पर्यायके रूपसे देखो तो जीव स्वरूपसे अनवस्थित है। यह स्पष्ट अनवस्थितपना केवल संसारी जीवोंमें देखा जा रहा है। क्या हुआ कि द्रव्यमें जो परिणति हुई वह तो परिणाम हुआ, सो पूर्व परिणामका त्याग किया और उत्तर परिणामका ग्रहण

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

किया। यह हुआ एक कार्य, जीवमें भी यह कार्य एक ही समयमें पाया जाता है। (१) पूर्व दशाका त्याग और (२) उत्तर दशाका ग्रहण।

कार्यका स्वरूप—भैया, जो वस्तुकी उत्तर दशा है वह तो है उत्पाद रूप और जो पूर्व दशा है वह है व्यय रूप। पूर्व दशाका त्याग करना और उत्तर दशाका ग्रहण करना ऐसी जो जीवमें बात है उस ही का नाम एक कार्य है। कार्यका आशय उत्पाद और व्यय दोनोंसे है। उसको ही परिणाम कहते हैं। और यह परिवर्तन रूप परिणाम संसारका स्वरूप है कि इन विचित्र पूर्व पर्यायोंका त्याग और उत्तर पर्यायोंका ग्रहण होता रहता। ऐसा परिणमन होनेका कारण संसार परिणाम है अर्थात् इस संसाररूप हेतुसे जीव अवस्थित नहीं है। सो भैया, यह जीवद्रव्यके रूपमें अवस्थित है परन्तु पर्यायके रूपसे अनवस्थित है। इस वस्तु स्वरूपकी दृष्टिसे अनेक जिज्ञासावों का समाधान हो जाता है। इस सृष्टिका कारण कौन है। इस उत्पादव्यय ध्रौव्यात्मक एक सत्तासे जो रचा गया है उसही पदार्थमें परिणामनशीलताका स्वभाव पड़ा है, जिसके कारण सृष्टि होती रहती है।

प्रतिक्षणपरिणमनशीलता—कितने ही पदार्थ ऐसे हैं कि जिनको हम नहीं जानते मगर वे अपना परिणमन एक क्षण भी नहीं बन्द करते। सारे जगतको रचने का अधिकार एक को हो, तो इतनी बड़ी व्यवस्था करते हुए में यदि चौथाई पदार्थोंका ख्याल न रहे तो वहाँ क्या गजब हो जाय? वस्तु निश्चल हो जाय, अवस्थित हो जाय। निमित्त नैमित्ति भाव व पूर्वोत्तर परिणमन योग तो होता ही रहता है। घड़ी बिल्कुल ठीक चलते वाली हैं, बिगड़ी नहीं है, चाभी लगाकर भरकर धर दो, उस घड़ीका ख्याल भी न रहे मगर वह घड़ी अपना ही काम कर रही है।

पदार्थोंकी परिणमनशीलतामें अपने ही द्रव्यत्वका प्रभाव—इस जगतमें जितने भी पदार्थ है वे सब निरन्तर परिणमते रहते हैं। मेरु पर्वतके नीचे रहने वाली मिट्टी या रत्न इत्यादि भी सत् हैं और वे प्रतिक्षण परिणमते रहते हैं। वहाँ किसी की गति नहीं है, वे दिखते नहीं हैं, किन्तु वे स्वयं प्रतिक्षण परिणमते रहते हैं। तो सत् होनेके कारण जीवका स्वभाव निरन्तर परिणमते रहनेका है। अशुद्ध उपादान इसमें है तो जैसी—जैसी उपाधिका निमित्त पाता है उस—उस पर्यायमें बदलता रहता है। जीवके यों अनवस्थित होनेमें हेतु क्या है? अन्तरंगमें तो स्वयंकी योग्यता और बहिरंगमें उपाधिका सान्निध्य।

भैया जो मनुष्य है वह यदि मर कर पक्षी हो गया तो कहते है कि हाय, यह तो गजब हो गया। भैया, मैंने क्या किया? अरे! कारण कहाँ ढूढ़ते हो, जो मरकर पक्षी हुए तो अपनी ही करतूतोंसे हुए। जो दुःखी होता है वह अपने ही किसी

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

कारणसे दुःखी होता है। अरे दुःखोंका देनेवाला किसे बाहर ढूढ़ते हो ? क्या तुम्हें कोई दूसरा दुःख देता है ? तुम खुद अपनेको दुःखी कर लेते हो। अपने ही अन्तरंग को तको, उसमें ही दृष्टि दो, उसमें ही लगाव रखो, परके लगावको छोड़ो, तो दुर्गति व दुःख दोनोंका अन्त हो जावेगा। दुःखोंका कारण बाहर कहाँ ढूढ़ते हो ?

दुःखकी उपादानसे प्रादुर्भूतिः—यदि कभी तुम्हें दुःख मिलेगें तो तुम्हारे ही द्वारा तुम्हें दुःख मिलेंगे। ऐसा सत्य निश्चय करलो कि दूसरे पदार्थोंसे हमें दुःख नहीं मिलता है। कभी-कभी यह कहेंगे कि अरे मैंने कोई भी गलती नहीं की, फिर भी इस दुष्टने मुझे दुःख दिया। मैं रंच भी अपराधी नहीं रहा, किन्तु इस दुष्टने मुझे बहुत अधिक दुखित किया। भैया ! किसी दूसरेने मुझे दुखित नहीं किया किन्तु तुमने स्वयं अपने कषाय भावके परिणाम बनाये, इसीसे तू दुखी हुआ। इसने स्वयं अपनी अशुद्धिसे, अपनी अज्ञानतासे अपने ख्याल बना करके दुःखी अपनेको बना लिया है। इसका कारण वर्तमानका अपराध है और परम्परासे देखो तो पुराना अपराध कारण है। वर्तमान अपराध तो यह है कि तुम स्वभावसे हटकर, अपनी एकत्वदृष्टिसे हटकर बाह्य पदार्थोंमें लग गए हो, यह तो है वर्तमान अपराध, और पूर्व अपराध क्या है कि इसने पूर्व समयमें कोई दुराचार किया जिससे इस प्रकारका कर्मबन्ध हुआ, जिसके उदयकालमें ऐसा ही स्थान मिला, ऐसा ही निमित्त प्रसंग हुआ कि जो अब भी दुःखी होना पड़ रहा है।

चाहे पूर्वकी बातें सोचो, चाहे वर्तमानकी बातें सोचो, दुखी होनेका कारण तो तेरा ही अपराध है। दूसरेके अपराधसे कोई अन्य दुःखी नहीं होता। इसने अपने दुःखी अज्ञानके कारण, अपने अपराधके कारण ही अपनेको बरबाद कर लिया है, अपनेको बना लिया है। सो अपनी प्रत्येक बातकी अपनेमें दृष्टि बनाओ तो अपनी सारी समस्याएं यहीं हल हो सकती हैं। इस ही प्रकारका यथार्थ ज्ञान ही मोक्षके मार्गमें ले जाने वाला है।

अपने आपका ही अपने आपमें प्रत्येक जानन :—यह संसार परिणामात्मक है। जीवोंका यह संसार जीवोंके परिणामस्वरूप है। जब आप अपने मनमें प्रसन्न रहते हैं तो बाहर भी सब लोग प्रसन्न प्रतीत होते हैं। जब आप अपनेमें दुःखी रहते हैं तो दुनिया भी कुछ दुःखमय प्रतीत होती है। कारण यह है कि हम बाहर कुछ नहीं देखा करते हैं, न बाहर जाना करते हैं। जानते हैं तो वास्तवमें हम हमने आपको ही जाना करते हैं। तो जिस रूपमें हमने अपने आपको जाना उस व्यवस्थासे ही हम बाहरी पदार्थोंका व्याख्यान कर रहे हैं, वैसा ही ज्ञेयाकार होता है। इस कारण जो भी समझमें आता है वह सब जैसा है तैसा समझमें आता है। मतलब यह है कि

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

हम परको जानते तक भी नहीं तो अब और बातकी चर्चा ही क्या ? जब भी यह जीव अपनेको दुःखी अनुभव करता है तब किसी भी कारणसे कुछ भी निमित्त लेकर संकट अपने ख्यालमें बनाता है। बाहरमें देखो तो वहाँ उसके विरुद्ध कुछ नहीं हैं। मेरे अनुकूल भी कुछ नहीं होता, तो विरुद्ध भी क्या होगा।

भ्रमसे विचित्र प्रदर्शन :— जैसे कोई बहमी आदमी किन्हीं लोगोंपर कुछ बहम कर लेता है अथवा लोगोंको कुछ भी उसके बारेमें पता नहीं है, सबकी दृष्टिमें वह शुद्ध है, सरल है, ठीक है, लेकिन यह बहमी आदमी कुछ बहम कर-कर के संकटोंमें पड़ा हुआ है कि उसे अपना दिल थामना ही कठिन हो रहा है। बाहरमें कुछ बात भी नहीं है पर बहमी अपनेमें स्वयं दुःखी है। यह सब एक मोहका बहम है। हम जिस प्रकारका बहम करते हैं अर्थात् मोह करते है, ख्याल बनाते हैं वैसी ही बात कुछ भी बाहर नहीं है। हम मोह करते हैं और उसमें विकल्प भी रखते हैं कि हमारे वे दो चार आदमी कैसे हैं ? ठीक हैं, बड़े प्रिय हैं ये हमने केवल मोहके परिणाम बनाये। वे हैं क्या ऐसे ? नहीं हैं।

ममतासे भी ममत्व होनेका अभाव—भैया ! मैंने सोचा कि ये मेरे हैं तो क्या ये मेरे हैं ? क्या ये मेरे हो गए ? नहीं हुए। वे वे ही है, उनका स्वरूप उनमें है, उनका चतुष्टय उनमें है। अर्थात् वे अपने ही परिणमनसे परिणमते हैं, अपने ही भावसे सत् हैं, अपने ही प्रदेशमें रहते हैं अपने ही गुण पर्यायके अधिकारी हैं, उनसे बाहर उनका कुछ नहीं है। वे मेरे जरा भी नहीं है। सच-सच निरखो तो जरा भी गुंजाइश नहीं है कि कुछ भी अन्य मेरा हो जाय। वे कोई भी मेरे नहीं होंगें, कोई भी मेरे नहीं है। वहाँ तो कुछ बात ही नहीं, पर बहमी लोग बहम करके, मोह करके, ख्याल करके महान् दुःख कमाते चले जा रहे हैं। यदि सोचो कि ये मेरे हैं, बड़े भले हैं तो क्या मेरे सोचनेसे ऐसा हो जायगा ? नहीं। वे भले हो सकते हैं तो अपने खुद से ही भले हो सकते हैं, दूसरोंसे वे भले नहीं हो सकते हैं।

परिणममान पदार्थकी पर्यायमें असरका व्यपदेश :—किसी भी पदार्थका दूसरे पदार्थोंपर कोई असर नहीं पड़ता। यहाँ तो जिनपर असर पड़ा है उन परिणममान पदार्थोंकी ही यह कला है कि वे योग्य पदार्थोंका निमित्त पाकर अपनी कलाके द्वारा अपनी परिणतिसे अपने आपमें अपना असर कर बैठते हैं। केवल उसमें निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध है इस कारणसे व्याबहारिक भाषामें यह कहा जाता है कि यह असर उसका पड़ा है, पर वास्तवमें परिणमनेवाले पदार्थके स्वरूपने ही अपने आपमें यह असर उत्पन्न किया है।

यद्यपि यह असर स्वभावसे नहीं उठा, स्वरसतः नहीं उठा, उसके अस्तित्व

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

मात्रके कारण नहीं हुआ, तथापि हुआ तो उसकी परिणतिसे, याने योग्य निमित्तकी सन्निधिमें यह असर खुद ही से बन बैठा। ऐसे निमित्तनैमित्तकसम्बन्धको देखकर यह कहा जाता है कि यह असर उसका है। जो पदार्थ जिस रूप परिणमते हैं उसही परिणमनका नाम असर है और वह असर अर्थात् परिणमन उस पदार्थमें उस ही की परिणतिसे होता है।

भैया, जो कुछ मेरा है वह मेरे ही क्षेत्रमें है। मेरी दुनिया, मेरा संसार, मेरा परिणमन मेरे में ही है। यह परिणामात्मक संसार है। इस लोकमें नजर ही और क्या आ रहा है? परिणामात्मक पदार्थ ही यहाँ नजर आ रहे हैं। परिणामात्मक पदार्थके समूहका नाम लोक रखा गया है। इस परिणामात्मक संसारमें पुद्गल कर्मका श्लेश कैसे हो गया, जिससे कि उन पुद्गलोंके विपाकसे मनुष्यादिक पर्यायात्मकता हो गई है, अर्थात् मनुष्य, पशु, पक्षी इत्यादि नाना विकाररूपता हो गई है।

पुद्गलोंका श्लेष कैसे हो गया? इस प्रश्नका उत्तर :—द्रव्य कर्मके सम्बन्धका क्या कारण है, इस प्रश्नका उत्तर इस गाथामें गर्भित है। जो भी यह संसारनामक आत्माका विभावात्मक परिणाम है वही पुद्गल कर्मके बंधका हेतु है। अन्योन्य पदार्थमें परस्पर कर्तृकर्मभावका न होना और निमित्तनैमित्तिकसम्बन्धका होना ये दोनों ही बातें अकाट्य हैं, और इन दोनों बातोंके विषय दो प्रकारके हैं—कर्तृकर्म-भाव न होनेकी बात अपनी निश्चयदृष्टि बने बिना समझमें नहीं आ सकती और निमित्तनैमित्तिकसम्बन्ध होनेकी बात अपनी व्यवहारदृष्टि बने बिना समझमें नहीं आ सकती। निश्चय और व्यवहार दोनोंका जो विषय है उसे निश्चय दृष्टि जैसा उपयोग बनाकर देखो तो वह समझमें नहीं बैठता। और उससे लाभ न होकर हानि ही होती है।

निश्चयका अपना स्थान :—भैया, बातें दोनों नयोंकी सच हैं। क्या यह सत्य नहीं है कि जीव केवल अपने परिणामोंका ही कर्ता है। अपने परिणामोंके द्वाराही करता है, अपनी ही शक्तिसे करता है और उस परिणमनका जो फल है उसको यही अनुभवता है। क्या यह बात सत्य नहीं है? खुद ही कर्त्ता है, खुद ही कर्म है, खुद ही कारण है, खुद ही कर्मफल है। किसी भी जीवको ले लो, निगोदको उदाहरणमें ले लो, मनुष्यको उदाहरणमें ले लो, प्रभुको उदाहरणमें ले लो, सब तरफ यही बात है कि चारोंकी चारों बातें सब जीवोंमें है। जैसे यह जीव जो मनुष्य पर्यायके रूपमें है, यह क्या करता है? यह अपने मनुष्य पर्यायके योग्य परिणामको करता है। राग हो, द्वेष हो, विकल्प हो, कुछ भी हो, परिणामी अपने ही परिणामको करता है।

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

तो कर्ता यह खुद हुआ, अपने ही उस विभावको किया तो वह कर्म हुआ, उसने अपनी ही परिणतिसे किया तो यही कारण हुआ। दूसरे पदार्थोंका इसमें कुछ आता ही नहीं, उनका मुझमें अत्यन्ताभाव है। सो दूसरोंके द्वारा तो नहीं किया, अपने ही द्वारा किया, तथा जो किया उससे गति किसकी बनी ? फल किसने पाया ? राग परिणाम किया ना इसने, तो उसके फलमें क्लेश हुए, आकुलताएं हुईं, क्षोभ हुए, उनको इसने ही तो माँगा, ये सारी बातें उसपर ही तो बीतीं, अतः कर्मफल भी यह स्वयं हुआ।

सिद्धपरिणतिका अभेददर्शन :—अब सिद्धोंमें कर्तृकर्मभाव देखो—वह मुक्त प्रभू क्या करता है ? करनेके माने परिणमन करना। यः परिणमति स कर्त्ता, यः परिणामो भवेत्तु तत्कर्म। या परिणतिः क्रिया सा त्रयमपि भिन्नं न वस्तुतया। जो परिणमता है वह कर्त्ता है। जो परिणाम है वह कर्म है और जो परिणति है वह क्रिया है। वास्तवमें ये तीनों भिन्न-भिन्न द्रव्यमें नहीं होती हैं। सिद्ध भगवान किस रूप परिणमता है ? वह प्रभु शुद्ध, स्वच्छ, ज्ञान, दर्शन, आनन्द रूप परिणमता है। जो उनका स्वभाव परिणमन है वह उनका कर्म है और उस कर्मका कर्त्ता वह प्रभु स्वयं है। और, यह परिणमन किसके द्वारा किया गया है ? निज शक्तिके द्वारा किया गया है। जो अनन्त चतुष्टयका गुणानुवाद करता है उनके द्वारा सिद्धोंका कुछ बनता है क्या ? हम उन्हें जान पावें तो क्या, न जान पावें तो क्या वह जैसा ज्ञानमय, आनन्दमय है सो ऐसा ही उनका परिणमन उनकी ही परिणतिके द्वारा होता है, सो कारण भी वही प्रभु हुआ। जो परिणमन हुआ उस परिणमनका प्रभाव किसपर हुआ ? उस परिणमनका फल किसको मिला ? उन्हीं को मिला जो अनन्त आनन्दमय हैं, उनके ही कर्मका फल आनन्दका अनुभव है, सो कर्मफल भी वही हुआ। क्या यह बात सत्य नहीं है ? सत्य है। यह निश्चय दृष्टिमें एक ही सत् को निरखकर परिणमनके व्याख्यानका विधान है। किसे कहते हैं सत्य ? सत्में होने वाली बातको सत्य कहते हैं।

व्यवहारका अपना स्थान—अब दूसरी ओर चलो। व्यवहार दृष्टिसे देखो, यह किलबिलाता हुआ सारा जीवलोक जो यह बन गया है वह क्या केवल अपनी सत्ताके कारण बन गया है ? अर्थात् यह जीव सत् है इसलिए यह रागी भी हो गया, ऐसी बात तो नहीं है। युक्तिसिद्ध बात यह हैकि जितना भी विभाव होता है, वह चाहे जीव पदार्थोंमें हो चाहे अजीव पदार्थोंमें हो, उसका परिणमन उसके स्वरूपसे है, किन्तु पर उपाधिके सन्निधान बिना विभाव बिल्कुल होता ही नहीं है। इस उपाधिने कुछ नहीं किया, बीचमें निश्चयदृष्टिकी बात आती जा रही है, पर प्रसंग अब व्यवहार दृष्टिका किया जा रहा है। सो यह बिदित होता है कि कर्मोदय बिना किसी जीवका विभाव

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

हुआ हो ? ऐसा कहीं नहीं होता। विभावरूप परिणमते हैं तो उन बाह्य पदार्थोंकी सन्निधि पाकर परिणमते हैं। द्रव्यका स्वभाव परिणमनशील है, उसका काम परिणमनका है। वह परिणमनकी हठ किए है, यह जीव भी परिणमनका हठ किए हुए है, क्योंकि प्रत्येक सत्में परिणमनका स्वभाव पड़ा हुआ है। सो वह परिणमता है, किन्तु परिणामविशेष पर उपाधि हुए बिना नहीं होते, क्या यह सच नहीं है ?

निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध होनेपर भी कर्तृकर्मभावका अभाव—विज्ञानसिद्ध बात यह है कि जैसा उपादान है, जैसी योग्यताका है, निमित्तका सान्निध्य पाकर उपादान उन परिणतियोंको बना लेता है, उन परिणतियोंके रूपसे उत्पन्न हो जाता है। ये सब बातें झूठी हैं क्या ? झूठ नहीं है, फिर भी सब कुछ जान लेनेके बाद अपने हितपथमें हम आगे बढ़ें तो उपयोगरूप कदम कैसा बढ़ना चाहिए ? इसमें भी विवेक करना बहुत जरूरी है। उसका उत्तर एक ही शब्दमें है कि हम अपने आप जैसे स्वभाव रूप हैं वैसी दृष्टिमें अन्तस्तत्त्वमें बढ़ें तो हमें हित मिल सकता है। हम अपने स्वभाव दृष्टिमें जिस प्रकार बढ़ सकते हैं इसको सिद्ध करनेमें ये नय दृष्टियाँ सहायता किया करती हैं। प्रयोजन और काम तो हमारा स्वभावदृष्टिमें रहनेका है। इस कामके लिए निश्चयका आशय बनाया।

निश्चयनयका प्रयोजन स्वभावोन्मुखता—देखो भैया, अशुद्ध निश्चयनयकी सीमा में अपनी ही परिणतिसे अपने ही आपमें अपने आपको यह इन-इन परिणामोंरूप कर रहा है। मात्र उसके देखने पर, परका ख्याल नहीं रहता, आश्रयभूत पदार्थोंका आलम्बन न रहे, ऐसी स्थितिमें चूँकि ये रागादिक विकल्प परमें ही दृष्टि करके ऊधम मचाते थे, सो इस निश्चयकी दृष्टिमें उनको सहारा न मिलनेसे ये शिथिल हो जाते हैं। ऐसी स्थितिमें अशुद्ध परिणमनकी दृष्टि छोड़कर हम स्वभावके स्पर्शमें जा सकते। हाँ अशुद्ध-परिणतिकी दृष्टिद्वारकी अपेक्षा शुद्ध परिणतिकी दृष्टिद्वारसे स्वभावको सुगमतया पहिचान लेते हैं। अशुद्धनिश्चयदृष्टि करके स्वभावको पहिचानना कुछ कठिन होता है, पर शुद्धनिश्चयदृष्टि करके स्वभावकी पहिचान सरल होती है। प्रयोजन सब, निश्चयनयोंका यह है कि परम शुद्धस्वभावकी ओर झुकाव बने। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन आदिक जो परिणमन हैं इन परिणमनोंको यह ही जीव करता है, अपनी परिणतिसे किया करता है। इस तरह शुद्ध निश्चय दृष्टिका विषय दृष्टिमें लेनेके पश्चात् निश्चय पद्धतिसे स्वभावतक पहुँचना जरा सरल हो जाता है, क्योंकि उसके उपयोगमें अशुद्ध परिणमन नहीं था, शुद्ध परिणमन है और यह स्वभावके अनुरूप है। यदि सीधे स्वभावसे हम जाना चाहते हैं तो आगे बढ़कर जब परम शुद्धका आलम्बन किया तो उसका तो साक्षात लक्ष्य स्वभावका है। वह बन सका तो हम स्वभावदृष्टिमें

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

एकदम साक्षात् आ जाते हैं। स्वभावदृष्टिमें आनेका प्रयोजन इन निश्चयनयोंने सिद्ध कर दिया।

इस प्रकार उस स्वभावका दृढ़ अभ्यासी कभी-कभी व्यवहारनयसे तकता है। तो उन नयोंसे भी स्वभाव दृष्टिका काम निकालता है। ये रागादिक हैं, ये तो मात्र आत्माके स्वभावसे नहीं होते। ये आत्मा अपने सत्में तो टंकोत्कीर्णवत् ज्ञायकस्वभाव है। यह नाटक बना तो उपाधिका निमित्त पाकर बना। आत्मस्वरूपमें यह नाटक है ही नहीं। ऐसी दृष्टि गड़ावो तो और अधिक शुद्धताकी पहिचान हो। इस तरह व्यवहार करके कर क्या रहे हैं कि सारे परिणमनोंको स्वभावसे हटा रहे हैं और यह समझमें आरहा है कि यह सब नाच मिथ्या है। यह तो बिपाकजन्य है, इसमें ये हुए कैसे ? इस व्यवहारनयका उपयोग अपनी स्वभावदृष्टिकी धुनको लेकर यह ज्ञानी कर रहा है।

अब परिणामात्मक संसारमें आखिर पुद्गलकर्मका यह श्लेष क्यों हो जाता है ? जिससे मनुष्यादिक-पर्यायमयता होती है। इसका कारण क्या है ? उसका कारण बताने के लिये इस गाथामें समाधान किया जायगा।

नोटः—(इसके बाद १२१ वीं गाथाका नोट न हो सका।)

परमार्थसे देखा जाय तो आत्मा द्रव्य कर्मका कर्त्ता नहीं है। आत्माके साथ सबसे ज्यादा घनिष्ट चिपका हुआ पदार्थ है द्रव्यकर्म याने ज्ञानावरणादि ८ कर्म हैं। जैसे कहते हैं ना, कि यह घरसे चिपका हुआ है, कुटुम्बसे चिपका हुआ है, सो यह तो दूरकी चीज है, पासमें तो यह कर्म और शरीरसे चिपटा हुआ है। सबसे घनिष्ट सम्बन्ध आत्माका चिपके हुए ज्ञानावरणादिक ८ कर्मोंसे है। सो इस गाथामें यह बतला रहे हैं कि यह आत्मा घरको क्या करेगा, शरीरको क्या करेगा। कुटुम्ब परिवार को क्या करेगा। यह आत्मा तो इन कर्मोंको भी नहीं करता है। ये कर्म स्वयं ही परिणम जाते हैं, जबकि आत्मामें विभावों का निमित्त मिलता है।

निमित्त नैमित्तिक भावका लोकदृष्टान्त—जैसे यह चौकी अंगुलीकी जैसी छायारूप परिणम गयी, छायारूप परिणम गयी, इसका मतलब यह है कि परिणमी तो यह चौकी ही है किन्तु इसमें यह हाथ निमित्त मात्र है, यह हाथ चौकीको छायारूप नहीं परिणमा देता, यह चौकी ही स्वयंकी परिणतिसे छायारूप परिणम गयी है। इसमें हाथ निमित्त है, हाथने इस चौकीको कुछ नहीं किया, कुछ ऐसा ही मेल हैं कि हाथका निमित्त पाया और यह जगह छायारूप परिणम गई। हाथका आकार मुक्का बनाया तो मुक्कारूप परिणम गई, कछुवा बनाया हो कछुवारूप परिणम गई, और बिल्ली बनाया तो बिल्लीरूप परिणम गई। जैसा ही निमित्त होता है वैसा ही यह छायारूप परिणमता जाता है, फिर भी हाथने इस छायाको नहीं परिणमाया है।

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

दृष्टान्तमें निमित्त नैमित्तिक भाव—इसी प्रकार द्रव्यकर्मकी भी बात है। आत्मा कार्माणवर्गणावोंको ज्ञानावरणादिरूप परिणमाता नहीं है, परन्तु ऐसा ही यहाँ निमित्त नैमित्तिक सहज मेल है कि जहाँ अशुद्ध भाव आया तहाँ कार्माण स्कन्ध कर्म रूप खुद परिणम गया। यह एटोमेटिक काम चलता है। चेतन या अचेतन कोई भी परको परिणमाता नहीं, इस पदार्थसमूहको करनेवाला किसीको मानो तो उस परिणमानेवालेको किसी चीकका ध्यान न रहे, कोई चीज रह जाय, किसी चीजकी खतौनी ठीक न बैठे तो अव्यवस्था हो जायगी, किन्तु निमित्त नैमित्तिक सम्बन्धमें अव्यवस्था नहीं। जहाँ आत्माने विभाव किया तो आत्मा मंदिरमें हो, चाहे जंगलमें हो, जैसा परिणमन किया वैसा बन्धन बँध जाता है, कर्म अपने आप परिणम जाता है। परमार्थसे देखो तो आत्मा, द्रव्यकर्मोंका कर्त्ता नहीं है।

परिणामो सयमादा सा पुण किरियत्ति होदि जीवमया।
किरिया कम्मत्ति मदा तम्हा कम्मस्स ण दु कत्ता ॥१२२॥

आत्मा स्वयं परिणमनस्वरूप है। आत्मा ही क्या, जितने भी पदार्थ हैं वे सब निरन्तर परिणमते रहते हैं। सो वह जो आत्माका परिणमन है वह आत्मा ही तो है। हाथ अगर टेड़ा मेड़ा किया गया तो यह टेड़ा मेढ़ा होना हाथ ही तो है कि और कोई अलग चीज है ? जो भी परिणमन किया वह वही द्रव्य तो है, दूसरा द्रव्य नहीं है क्योंकि जो परिणमनेवाला है वह अपने स्वयंके परिणमनका कर्त्ता होता है, क्योंकि प्रत्येक पदार्थ अपने परिणमनसे अभिन्न है।

दृष्टान्तपूर्वक उत्पाद व्ययका अभिन्नत्व व कर्तृ कर्मभाव—भैया, एक दृष्टान्त है कि एक बुढ़िया थी रांटा कातने वाली। रांटा कातते-कातते उसका तकुवा टेड़ा हो गया। सोचा कि किसी लोहारके पास जावें और सीधा करवालें। लुहारके पास पहुँची और कहने लगी कि भाई मेरे तकुवाका टेड़ापन ठोक पीट कर निकाल दो। तुमको दो टका देंगे। लुहारने टेड़ापन निकाल दिया। तकुवा सीधा हो गया। अब लोहार कहता कि टेड़ापन निकल गया ना ? लावो दो टका। तो बुढ़िया कहती है कि जो टेड़ापन तुमने निकाला है वह हमें दे दो। जैसे लाइटमें बैट्री भराने जाते हैं तो नई भरानेपर पुरानी वापिस लेनेका तो अधिकार है ही। बुढ़ियाने कहा—भाई ! जो टेड़ापन तकुवाका निकाला है वह टेढ़ हमको दे दो। अब बताओ तकुवाका टेढ़ दे दिया तो पैसा काहेका। टेढ़ न दे तो दाम नहीं देती। वह तो एक अखण्ड पदार्थ है, उसमें पूर्व पदार्थका व्यय होता है और उत्तर पदार्थका उत्पाद होता है। वह पूर्व पर्याय कहीं चली गई क्या ? नहीं, तकुवामें बिलीन हो गई। इसमें टेड़ी अवस्था थी, अब टेड़ीपनकी अवस्था तकुवामें बिलीन हो गई, क्योंकि उसमें पदार्थका नया

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

विशेष प्रकट हुआ, है सो पुराना बिलीन हो गया। होता रहा सब उसीमें; उससे भिन्न कोई चीज नहीं है। आत्माका परिणमन आत्मामें ही है।

अपना परिणमन ही अपना कार्य—भैया, जो जीवोंका परिणमन है वही जीवोंका कार्य है। और वह कार्य जीवमयी है, अन्य नहीं है, जीव स्वरूप है। क्योंकि सभी पदार्थ अपने परिणमरूप परिणमते हैं। आत्माका काम क्या है ? आत्माका काम भाव करना है। हम आप क्या कर रहे हैं ? केवल अपने विचार, केवल अपनी परिणति। बाहरमें जो कुछ होता है वह उन पदार्थोंकी परिणतिसे होता है। होता स्वयं जगत परिणाम, मैं जगका करता क्या काम। जगतकी परिणति स्वयमेव होती है। मैं उन परिणतियोंका करने वाला नहीं हूँ अर्थात् सबका परिणमन अपने-अपने परिणमनसे होता है। अगर तुम अपने ८-१०-१२ सालके बच्चेको कहो कि पानी ले आवो। यदि वह खेलता होगा तो खेलमें लग जावेगा, पानी नहीं लावेगा। तो आपका बच्चोंपर भी अधिकार नहीं हो सकता है, क्योंकि उनकी परिणति उनमेंही है। अभी कोई सोचे कि इन नौकरोंपर मेरा अधिकार है तो ऐसा सोचना सही नहीं है। नौकरोंको खुदगर्जी लगी है वे अपने परिणामोंसे प्रेरित होकर अपने हितके लिए वे अपना काम करते हैं, वे मालिकका कुछ काम नहीं करते हैं। मालिकके कहने से वे काम नहीं करते। जब नौकरोंके मनमें न रहे तब वे जबाब दे देते हैं कि हिसाब करलो। सो अब समझ गए ना सब, कि अपने ही परिणामोंसे सब परिणमते हैं।

भ्रमकी भ्रामकता—भैया, यह भ्रम ही संसारको रुलाने वाला है, जो यह विश्वास बना है कि पर पदार्थोंमें मेरा अधिकार है। ऐसा झूँठा विश्वास ही दु:ख देने वाला है। देखो भैया–दूसरोंका मोह देखकर उनकी बेवकूफी जल्दी समझमें आ जाती है। दूसरोंको देखकर कहते कि यह देखो धनके पीछे परेशान है, पर खुदको नहीं देखते। यही तो पर्यायबुद्धिकी बात है, जितने खेल हैं वे सब दृष्टिके खेल हैं, तुम्हारी दृष्टि निर्मल हो जाय तो आनन्दमग्नता हो जाय। और, अगर दृष्टि निर्मल नहीं रहती तो दु:खमें डूबे हुए रहना ही पड़ेगा।

दृष्टिके अनुसार सृष्टि होनेका नियोग—एक बार राजाने मंत्रीसे पूछा कि यह तो बतलावो कि अपने राज्यमें भले लोग कितने हैं और बुरे लोग कितने हैं ? तो वह मंत्री राजासे कहता है कि सभी भले हैं और सभी बुरे हैं। राजाने कहा कि ऐसा कैसे ? जो बुरे हैं वे भले कैसे ? जो भले हैं वे बुरे कैसे ? मंत्रीने कहा कि हम बतलावेंगे। तो मंत्रीने दो चित्र एकसे ही स्त्रीके समझो या पुरुषके, बनवा करके जैसे घंटाघर होता है ना, वहीं ले जा कर एक चित्र रख दिया और सूचना लिख दी कि इस चित्रमें जिस भाई को जो चीज बुरी लगती हो उसमें निशान लगादे और

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

अपने साइन करदे। बहुतसे लोग आए, देखते हैं कि इसमें कान ठीक नहीं, इसमें नाक ठीक नहीं, १०-२० आए सब इस फिराकमें रहे कि इसमें बुरी चीज क्या है ? सभीने कुछ न कुछ बुराई बताई और अपने साइन करदिए। बुरी लगी चीज पर निशान लगा दिए। दूसरे दिन उसी प्रकारका दूसरा चित्र रख दिया और लिख दिया कि इस चित्रमें जिस भाईको जो चीज अच्छी लगती हो उसमें निशान लगादे और अपने साइन करदे। दूसरे दिन जो फोटो रखा था उसमें जरा भी अन्तर न था, पर वे ही लोग जो पहिले बुरा बताते थे सोचने लगे कि इसमें अच्छी चीज क्या है सभी ने उस पर निशान लगाया कि इसका कान अच्छा है, इसका नाक अच्छा है और अपने साइन कर दिए।

वे ही लोग जो पहिले बुरा बतलाते थे अब अच्छा बतलाते हैं, ऐसा दिखाकर मंत्रीने राजासे कहा कि महाराज देखिए जब हमने बुरी दृष्टिके लिए कहा तो सभी ने बुरी दृष्टिसे देखा और जब अच्छी दृष्टिके लिए कहा तो सभीने अच्छी दृष्टिसे देखा। सो जैसी दृष्टि करो वैसा ही दीखता है। अब इन संसारी जीवोंमें देख लो ये भ्रमकी दृष्टि करते हैं तो रुलते फिरते हैं। चाहे जहाँ रहें घरमें या दूकानमें, यह विचार करो कि अनेकों दिन हो गए बाहरी पदार्थोंकी बातें करते करते, बाहरी पदार्थोंको अपना मानते मानते, पर अबतक लाभ क्या रहा ? जीवमें कषायकी भावना न आए और यथार्थ श्रद्धाकी बात, न्यायकी बात आवे तो समझो कि अब प्रेरणा जगी है। अगर ऐसी प्रेरणा जगी है तो समझो कि धर्मका फल पाया है।

अन्तः शुद्धि बिना धर्म कहाँ—भैया, अन्तः शुद्ध प्रेरणा बिना तो धर्मकी धुन भी एक मोहका कार्य है। मन्दिरमें पहुँचते हैं तो भक्ति भावसे भर जाते हैं, पर जब मन्दिरसे निकलते हैं तो भिखारीको भीख भी नहीं देते और कहते, जा, जा, हट, हट। सत्य लक्ष्य बिना अनेक प्रकारके कषाय जाग्रत हो जाते हैं। जब मन्दिरके अन्दर रहते हैं तो केवल मन्दिरमें पार्ट अदा करते है और जब संस्थामें आते हैं तब संस्थामें झगड़े किया करते हैं, संस्थाका, समाजका पार्ट अदा करते हैं। तो यह मनुष्य जहाँ रहता है वहीं अपना पार्ट अदा करता है। गाँठमें कोई मौलिक चीज लेकर यह जीव उतरा है क्या ? मालूम होता है कि कोई मौलिक चीज लेकर यह जीव नहीं उतरा है।

कल्याणका कारण मौलिक दर्शन—हे आत्मन् ! मूलमें ख्याल होना चाहिए कि हमारा काम तो सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्रका है। सो हम इस प्रकारके काम करते रहें जो कि आत्माके अनुकूल पड़ें। कितने ही पार्ट ऐसे अदा किए जाते हैं कि स्वाध्याय भी कर रहे होंगे जाप भी कर रहे होंगे, , ऐसे भी पार्ट अदा करते हैं, बिना स्नान किए खाना भी नहीं खाते, सब कुछ श्रम करें किन्तु पार-

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

मार्थिक कल्याणमय वह एक बात तो नहीं रही। एक संस्कार ही ऐसा पड़ गया है कि बिना स्नान किए खाना नहीं खाते, अन्य भी बाह्य पवित्र वृत्ति करते। भैया, मन्दिरमें इस प्रकारके भाव लेकर जावो कि भगवान मेरेमें जो राग आ गए हों वे मुझसे दूर हों। मैं २३-२३॥ घंटे परिवार व ममताके पीछे ही परेशान रहता हूँ, हे प्रभो! उन परेशानियोंसे दूर होने का मुझमें बल प्रकट हो। यदि इस प्रकारका ख्याल करो तो शान्ति मिल सकती है।

दुर्लभ नर जन्मको सफल करने वाली एक दृष्टि :—भैया, सबसे मुख्य तो यह दृष्टि बनाओ कि मैं आत्मा सबसे निराला केवल स्वरूपमय हूँ और जो कुछ मैं करता हूँ मात्र अपनी ही भावनाओंसे करता हूँ। अपने भावोंके अतिरिक्त मेरा कुछ नहीं है। यदि ऐसी दृष्टि हो तो बाहरी पदार्थोंमें आसक्ति नहीं हो सकती है। मैं सबसे न्यारा हूँ, केवल अपने ही भावोंका करने वाला हूँ, मैं ही अपने भावोंका भोगने वाला हूँ, एक चेतन सत हूँ। इन भावोंसेही धर्मका पालन है। इतनी बात जब देखने में आ जाय तो समझो कि मैंने धर्म किया।

धर्मकी निजमें उपलब्धि :—धर्म आत्माका काम है, धर्म आत्मासे प्रकट होता है और आत्मामें ही धर्म मिलता है। धर्म हमारा कहीं बाहर नहीं है। व्यवहार धर्म तो हम अपने ज्ञानको विशुद्ध बनानेके लिए करते हैं, विषय कषायोंको, आपदाओंको हटानेके लिए करते हैं। सदा इतनी बात ध्यानमें रहे कि मैं सबसे न्यारा हूँ, मैं ही अपने भावोंका कर्त्ता हूँ और मैं ही भोगने वाला हूँ। ऐसा विश्वास होना ही धर्मका प्रारम्भिक पालन है।

आत्माकी परिणतिक्रियाके प्रयोगका स्थान :—यहाँ यह कहा जा रहा है कि आत्माका कर्म क्या है? याने आत्मा काम करता क्या है? आत्मा तो एक ज्ञानानन्दभावका पिण्ड है। उसमें रूप, रस, गंध, स्पर्श आदिक कोई मूर्तिपना नहीं है, केवल भावात्मक पदार्थ है। जानना होगा, निराकुलताका अनुभव होगा या विकृत अवस्था भी हो तो सुख दुःखका अनुभव होगा, वे सब भावात्मक चीजें रहीं। यह आत्मा केवल भाव बनाता है, भावके अलावा और कुछ नहीं कर सकता। वैभव, भोगसाधन बिल्कुल भिन्न चीज है, उसमें आत्माका कोई स्पर्श नहीं है। परिवारके लोग बिल्कुल भिन्न हैं उनका करेगा क्या? पर वस्तुवोंमें जो भ्रम किया जाता है, स्नेह किया जाता है, उसके कारण विपदा अपनेको उठानी पड़ती है।

अचेतनकी अपेक्षा चेतन परिवारसे हानिकी अधिकता :—भैया, इस हानिके मामलेमें पूछो तो जड़ पदार्थ अपनेको उतना नुकसान नहीं पहुंचाते जितना कि कुटुम्ब मित्र ये चेतन पदार्थ नुकसान पहुँचाते हैं। घर है, सुन्दर बना है, अथवा

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

और चीज है—जैसे घड़ी है, रेडियो है, सुन्दर है तो हम अपनी तरफसे, राग बढ़ता हो तो बढाते हैं; घरकी तरफसे, घड़ीकी तरफसे, रेडियोकी तरफसे कोई अनुक्रिया नहीं होती। किन्तु कुटुम्ब आदि चेतन पदार्थ अपनी ही खुदगर्जीके कारण ऐसी चेष्टा करते हैं कि उसको विषय बना कर हमें राग उत्पन्न हो जाये। मित्र हो, पुत्र हो, स्त्री हो, ये लोग ऐसी मोहक बातें करते हैं कि यदि कुछ ज्ञान आना चाहता हो, बैराग्य आना चाहता तो ज्ञान और बैराग्यमें बाधा पहुँच जाय। खैर यहाँ किसी अन्यपर क्या एहसान देना। आत्माके जो कार्य होते हैं वे कार्य अन्य सबसे भिन्न रूप हैं, उस भावके कार्यको और दूसरे करेंगे क्या ? यह जीव स्वयं ही स्वतंत्र वस्तु होकर खुद कार्यको करता है। तो आत्मा ही स्वतंत्र होकर अपने परिणामोंको करता है। और, वह कार्य आत्माका कर्म है।

शान्तिका कारण शुद्ध ज्ञान :—आत्माका कर्म ज्ञानावरणादिक नहीं है, वह तो पौद्गलिक है, भिन्न चीज है। अन्यमें यह आत्मा करेगा क्या ? उनका यह करने वाला नहीं है। भले ही द्रव्यकर्म आत्माके साथ है फिर भी वह पर द्रव्य है परकी परिणतिको पर पदार्थ नहीं कर सकते। आत्मा तो केवल परिणामको करता है। चाहे अच्छा परिणाम करले, चाहे गंदा परिणाम करले। यही आत्माकी करतूत है। इसके आगे आत्माका कोई कर्तव्य नहीं है। परमार्थसे देखा जाय तो आत्मा अपने ही परिणमनको करता है, दूसरेके परिणमनका कर्ता नहीं है। ये जितने जीव हैं, कोई हल्ला कर रहा है, कोई डोल रहा है, सब अपने भीतरमें अपनी कम्पनी चला रहे हैं। बड़े हों, छोटे हों, जिसका जैसा परिणमन है वे अपने परिणमनसे अपने भावोंकी कम्पनी चला रहे हैं, भावोंके अलावा और कुछ नहीं कर रहे हैं। यही बात जब समझमें आवे तो इसमें ज्ञानका उदय होता है। और जब ज्ञान उजेलेका उदय हो तो इसको शान्ति मिलती है। तो जीवकी शान्तिका कारण शुद्ध ज्ञान हुआ।

भैया, मेरा जगतमें कहीं कुछ नहीं है। मैं निर्लेप हूँ निराला हूँ, अपने स्वरूप रूप हूँ, जो कुछ करता हूँ अपनेमें करता हूँ। अपनेसे आगे मेरा कोई कर्म नहीं है। इतनी बात समझमें आवे तो यह जीव निष्काम बन सकता है, निष्काम हो सकता है। तो यहाँ यह सिद्ध हो गया कि मैं मकानका तो करने वाला क्या, कुटुम्बका करने वाला क्या, में तो द्रव्यकर्मका भी कर्ता नहीं हूँ। तब फिर यह शंका होती है कि द्रव्यकर्मका करने वाला कौन हुआ ? मैंने तो केवल भाव किया, कर्म फिर बन कैसे गए जो आत्माके साथ चिपटे हुए हैं, जिनका निमित्त नैमित्तिकसम्बन्ध चल रहा है।

द्रव्यकर्मका करने वाला कौन ? :—भैया, ये द्रव्य कर्म जो बनते हैं वे पुद्गलोंके ही परिणमन है। पुद्गलोंका जो परिणाम है वह स्वयं पुद्गल ही है।

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

आत्माका जो परिणमन है वह आत्मा ही है। इसी तरह पुद्गलोंके जो और और परिणमन हैं वे भी पुद्गल ही हैं,। जितने भी पदार्थ होते हैं, परिणमनतत्त्व होते हैं, वे अपने परिणमनस्वरूपके ही कर्ता होते हैं, तो पुद्गल एक अपने परिणमनस्वरूपका कर्ता है। सो हम अपने परिणमनसे अनन्य हैं, अभिन्न हैं, पुद्गलका जो पर्याय होता है वह पुद्गलसे अभिन्न है। कार्माण वर्गणावोंमें जो कर्मरूप पर्याय होते हैं वे उन कार्माणवर्गणावोंसे अभिन्न हैं। तो कर्मोंने कर्मका काम किया और आत्माने आत्माका काम किया। कर्म न आत्माका परिणमन करते है और न आत्मा कर्मोंका परिणमन करता है, सबका अपने आपमें परिणमन अपने आप होता रहता है।

परस्पर कर्तृत्वका अभाव :—जैसे कोई दो बालक मित्र बन गए तो उन बालकोंका एक दूसरे बालकने कोई काम नही किया, न एकने दूसरेका कुछ किया और न दूसरेने उसका कुछ किया, सब कोई अपने आप अपना काम करता है। किसी पदार्थका कभी कोई दूसरा कर्ता नहीं होता है। अगर कर्ता हो जाता तो आज दुनिया साफ हो जाती। यदि कोई पदार्थ किसी दूसरे पदार्थका करने वाला हो तो उसके करनेमें व्यभिचार क्यों आये कि जो करना चाहते हैं वह होता नहीं; सोचते कुछ और हैं, हो कुछ और ही जाता है। करना चाहते हैं दूसरोंके लिए खराब, पर उनके लिए हो जाता है अच्छा। कभी करना चाहते हैं दूसरोंका भला और हो जाता है उस भलेके बावजूद भी बुरा। तुम बालककी आँखमें अंजन सलाईसे लगाते हो उसके फायदेके लिए, पर कहीं हाँथ डिग जाय और आँख फूट जाय तो? तो करना तो चाहते थे भला, पर बुरा हो गया। जैसे किसीके सिरमें किसी प्रकारका रक्त बिकार होगया है, बड़ा भारी दर्द है, और कोई ढेला मारे उसको सतानेके लिए, पर यदि उस ढेलेके लगनेसे उनके सिरसे बिकारवाला खून निकल जाय और वह ठीक हो जाय तो यह हो गया उसके फायदेके लिए। तो कोई किसीका कर्ता नहीं है, सभी जीव अपना-अपना पुण्य पाप लिए हुए हैं, उनका काम अपने आप चलता रहता है। हम तो केवल अपना परिणमन करते हैं, और कुछ नहीं।

दूसरेको दुःखी करनेके भावमें खुदको ही क्लेश होता निश्चित :—देखो दूसरेको दुःखी करनेका परिणाम किया, तो परिणाम ही तो किया; दूसरेको दुःखी तो नहीं किया, और दुःखी करनेका जो परिणमन है वह परिणमन मलिन है कि विशुद्ध है। अपना परिणमन मलिन करेगा तो उसका फल उसको मिलेगा कि नहीं? मिलेगा। दूसरेको दुःखी करनेका भाव करेगा तो खुदको तो नियमसे दुःखी होना ही पड़ेगा, दूसरा कोई दुःखी हो या न हो। इसमें रंच भी सन्देह नहीं है दूसरा दुःखी भी

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

होगा तो उसके दुःखी करनेके भावकें कारण दुःखी न होगा, उसका उदय ही ऐसा होगा, उसका परिणाम ही ऐसा होगा कि वह दुःखी होता रहेगा। यदि किसीको दुःखी करनेका प्रयत्न करोगे तो तुम्हारा दुःखी होजाना बिलकुल निश्चित ही है।

दूसरोंके प्रति सुखकी भावनामें सुख निश्चित :—इसी तरह जो दूसरोंके सुखी करनेका भाव बनाए तो यद्यपि वह दूसरा चाहे सुखी न हो क्योंकि उसका उदय उसके साथ है तुमने जो दूसरोंके सुखी होनेका परिणाम बनाया सो वह तुम्हारा परिणाम विशुद्ध है कि नहीं ? विशुद्ध परिणाम करोगे तो उसका फल विशुद्ध होगा। दूसरोंको सुखी करनेके भावमें खुद निश्चित सुखी होगा, वहाँ दुःख न होगा ; क्योंकि उसका परिणाम इतना सावधान है कि दूसरे जीवोंकी उसे खबर है और दूसरोंको सुखी करनेका उसका परिणाम बना हुआ है। वह सावधान है, निर्मल है, इस कारण उस जीवको सुख होगा, दुःख न होगा। तब यही सिद्ध हुआ कि अपने ही परिणामके कारण अपना सुख होता है और अपने ही परिणामके कारण अपना दुःख होता है।

दुःखपूर्वक दुःख देनेकी भावना संभव :— भैया ! सुखी होनेका ही अपना काम करो, दुःखी होनेका काम क्यों करते हो। और भी अनुभव करके देखलो। अगर तुम बुरे परिणाम करके दूसरोंके विरूद्ध कुछ करना चाहते हो तो कहनेसे पहिले दिल काँपने लगेगा। अगर तुम दूसरेको दुःखी करनेके लिए भाव बनाते हो तो पहिले तुम्हें दुःखी होना पड़ेगा। जब तक खुदको दुःखी नहीं कर लोगे, खुदको नहीं तड़फा लोगे तब तक तुम दूसरोंको नहीं तड़फा सकते। याने दूसरोंके तड़फानेके बुद्धिपूर्वक निमित्त नहीं हो सकते। तो पहिले अपनेको दुःखी कर पाया तो दूसरोंको दुःखी करनेकी बात कह सके। और जब दूसरोंको दुःखी होनेकी बात कह सके तो दूसरे भी जबाब देने लगे, दुःखी करने लगे। इससे उसका दुःख और बढ़ जायगा। तो दूसरी आपत्ति यह आई। तीसरी आपत्ति यह आती है कि उस जातिके बुरे कर्म बनेंगे। तो उन बुरे कर्मोंका जब उदय आयगा तो आगे और दुःख भुगतना पड़ेगा। तो दूसरोंको दुःखी करनेके भावमें तो दुःख ही दुःख आयगा। उसमें सुखकी आशा न करो।

सुखी रहनेका उपाय :—यदि सुखी रहना चाहते हो तो दूसरे जीवोंके सुखी रहनेकी भावना अपने मनमें बनाओ। पहिली बात तो यह है। सब जीवोंको अपने से भिन्न जानकर किसीमें मोह मत लावो, यह दूसरी बात है। ये दो काम यदि करोगे तो अपनेमें शान्ति बढ़ती जायगी। एक तो किसी जीवको दुःखी होनेकी भावना न करो, सुखी होनेकी भावना करो कि सब जीव सुखी हों, कोई भी प्राणी दुःखी न हो। कोई बैरी हैं, कोई बिरोधी है, उसके प्रति भी यह भाव लावो कि वह सुखी रहे तो तुम सुखी हो जावोगे। एक काम तो यह करके देखलो और दूसरा काम यह करो

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

कि घरमें रहते हो, वहाँ स्त्री हैं, पुत्र हैं, उनके मध्य रहना होता है फिर भी सही बात तो मनमें लावो कि ये मेरे कुछ नहीं है, ये भिन्न-भिन्न सत्तावाले हैं, इनकी सत्ता इनके साथ हैं, अन्य किसीसे रंच भी सम्बन्ध नहीं है। व्यावहारिक सम्बन्ध तो इनका यों बनाया गया कि वैराग्यहीनताके कारण साधु तो बन नहीं सकते थे, महाव्रत तो पाल नहीं सकते थे, और यहाँ विषयकषायोंकी वेदना सह नहीं सके, सो ऐसा बन जाना आवश्यक था कि चलो अब देशव्रतसे ही महापाप तो छूटे, इसलिए अब रहना ही पड़ रहा है परन्तु यहाँ किसी का है कुछ नहीं।

आत्माकी यथार्थ भावना आनन्दप्रदायिनी :—मैं तो सबसे निराला शुद्ध चैतन्य स्वरूप हूँ। मैं अपने ही परिणामोंकी करता हूँ। तो मेरा कार्य मेरेसे बाहर है नहीं। मेरा दुनियामें है क्या ? केवल आत्मा ही मेरा है, परिणाम करता हूँ, उन परिणामोंका निमित्त पाकर ये ज्ञानावरणादिक कर्म, कर्मरूप परिणाम जाते हैं। वे अपनी ही परिणतिसे परिणमते हैं, हम अपनी ही परिणतिसे परिणमते हैं। किसी एकका दूसरेके साथ करनेका सम्बन्ध नहीं है। पुद्गलमें जितने परिणमन हो रहे वे पुद्गल ही हैं। पुद्गलका परिणाम पुद्गलसे अभिन्न है। उस पुद्गलमें जो परिणमन हो रहा है बस यही उस पुद्गलका कार्य है। इसके आगे पुद्गलका कार्य नहीं है। पुद्गलके कार्य पुद्गलमय हैं और जीवोंके कार्य जीवमय हैं। तुम केवल भावोंके कर्ता हो, अन्यके नहीं। ऐसा बिल्कुल पूर्ण नियम है कि सभी द्रव्य केवल अपने अपने परिणमन करते हैं और अपने अपने परिणमनरूप जो कार्य हैं वे उन उन रूप ही होते हैं, कोई कार्य किसी दूसरे रूप नहीं हो सकता है। हम हाथ हिलाते हैं तो हाथका जो हिलना है वह हाथमय है कि कमण्डलमय है ? हाथमय है। हाथसे अभिन्न है। इसी तरह जितने भी पदार्थ हैं, उन पदार्थोंके जितने कार्य हैं वे उन पदार्थोंमय हैं, अन्यरूप नहीं हैं।

भैया, जीवोंकी जो क्रिया है वह जीवमय है, जीव केवल अपने भावोंका करने वाला है, किन्हीं अन्य पदार्थोंका करनेवाला नहीं है। इसलिए हम अपने आपमें विश्वास जमाये रहें और सब द्रव्योंको स्वतंत्र स्वतंत्र निरखते रहें। किसीके आधीन कोई दूसरा पदार्थ नहीं है, किसी दूसरेके आधीन कोई दूसरा जीव नहीं है। प्रत्येक जीव केवल अपने परिणामरूप परिणमते हैं, इस तरहकी दृष्टि बन जाय तो मोक्षका मार्ग मिलेगा। छूटना है ना पर पदार्थोंसे तो-पर पदार्थोंसे छूटनेका काम तभी बनेगा जब यह मानलें कि हम पर पदार्थोंसे अलग ही हैं। और पर पदार्थोंमें हम मिले हुए हैं ऐसा परिणाम रखो और चाहो कि हम पर पदार्थोंसे छूट जाएं तो क्या यह हो सकता है ?

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

मुक्ति के लिए पृथक्त्वभावनाकी समर्थता :—यदि संसारसे छूटना चाहते हो तो यह विश्वास बनाओ कि हम संसारसे न्यारे हैं। कर्मोंसे छूटना चाहते हो तो यह विश्वास बनाओ कि हम कर्मोंसे न्यारे हैं, शरीरसे छुटना चाहते हो तो यह विश्वास बनाओ कि हम रागादिक भावोंसे न्यारे हैं। न्यारेपनकी भावनाका परिणाम न्यारा हो जाना है। यदि न्यारापनका विश्वास नहीं है और छूटना चाहते हो तो यह अंधेर त्रिकाल भी नहींहो सकता है। सत्य ज्ञान किए बिना, सबसे न्यारा अपने को समझे बिना मुक्तिमार्गका लाभ हो ही नहीं सकता। भैया, आनन्द तो न्यारा रहनेमें है। प्रसन्नतासे न्यारा रहनेका उपाय यह है कि पर पदार्थोंका यथार्थ स्वरूप समझलो। सारे पदार्थ स्वयं ही भिन्न हैं, ऐसी केवल अपनी दृष्टि जगाओ, सारे पदार्थोंसे मोह हटावो तो सबसे छूटनेका उपाय बन सकता है। सबसे छूटे बिना चैन न मिलेगी। जब पर पदार्थोंसे हटोगे तभी चैन मिलेगी। अपने ज्ञानको जगावो और अपने आप स्वयं ज्ञान परिणतिके कारण सुखी होओ।

प्रत्येक परिणमनोंकी परिणमनोंके आधारसे अभिन्नता :—भैया आज यह प्रवचनसारकी १२२ वीं गाथा आरही है जिसमें यह बताया है कि आत्मा कर्म द्रव्यका कर्ता नहीं है क्योंकि जो भी परिणमन होता है वह परिणमन परिणामोंसे अभिन्न होता है, अन्य द्रव्यसे भिन्न होता है और वह परिणामी परिणामस्वरूप अपने भावोंका कर्ता होता है। यह वस्तुमें होने वाली बात वस्तुमें ही कही गई है। जीवका जितना भी काम है जितना भी परिणमन है वह जीवमयी है। जीवका काम पुद्गलमयी हो जाय सो ऐसा नहीं होता। पुद्गलका काम जीवमयी हो जाय सो नहीं होता। जगतमें पदार्थ अनन्ते हैं और सभी अपनी अपनी गांठमें परिणमनशीलता रखते हैं और उस परिणमनशीलताके कारण परिणमते चले जाते हैं। पर उनके परिणमनेमें एक खास विशेषता यह है कि वे यदि विभाव रूप परिणमें तो किसी पर द्रव्यका निमित्त पाकर ही वे परिणमते हैं। और इसी कारण जितने भी विभाव परिणमन हैं वे स्वभाव नहीं कहला पाते। परभावकी स्थितिमें भी परकी सन्निद्धि मात्र निमित्त है, वहाँ उपादान अपनी ही परिणतिसे परिणमता है। विभाव रूप परिणमनका यह ढंग है।

निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध होनेपर भी निज अस्तित्वकी दृढ़ता—इतना होनेपर भी वस्तुके चतुष्टयको देखो। प्रत्येक वस्तु अपने ही प्रदेशोंमें हैं, अपने ही गुणों में है, और अपने ही गुणोंके परिणाम रखते हैं। यह व्यवस्था ६ साधारण गुणोंसे अपने आप हैं। इस बातको बतानेके लिए आचार्योंने ६ साधारण गुणोंका वर्णन किया है। पदार्थ है, न तो नहीं कहेंगे। "हैं" दिखते हैं और लगते हैं कि हैं, कुछ भी न हो और मात्र मायाजाल हो, ऐसा तो नहीं है। है, यह अस्तित्व गुण कहता है।

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

वस्तुत्व गुणकी समर्थता—भैया ! अस्तित्वने तो यह ही बात बतायीकि "है"। और हैं का नाम सुनकर वे पदार्थ उद्दण्ड हो चलें कि तुमको अस्तित्व गुण ने "है", दे दिया, आजादी दे दिया कि तुम हो। अब वे पदार्थ कहें कि हम किसी रूप हों। पर रूप हो जाँय, हम हैं ना ? किसी रूप हो जायें, हो जायें। जैसे कि यह घड़ी है। हम नाम लेकर न कहें, तो सब रूपकी "है" लगायेंगे हम तो। यह वस्तु चौकी है, घड़ी है, दरी है, अन्य अन्य है, ऐसी उद्दण्डता करने लगे, तो कर नहीं सकता, क्योंकि उस उद्दण्डताको मिटानेके लिए दूसरा गुण है वस्तुत्व, जो यह समझाता है कि यह अपने रूपसे तो है और परके रूपसे नहीं है। इस अस्तित्व गुणके नाजायज फायदे को रोकनेके लिए वस्तुत्व गुणने एक कन्ट्रोल कर दिया कि वह अपने स्वरूपसे तो है और परके स्वरूपसे नहीं है।

द्रव्यत्व गुणकी समर्थता—दो बातें हो जानेपर भी अभी काम नहीं चला। अर्थक्रियाकी बात नहीं हुई जिससे "है" में खतरा हो गया। अर्थक्रिया नहीं है तो "है" का रूप क्या है। वह सद्भूत वस्तु किस रूपमें समझनें आए। यदि उसमें परिणमन नहीं हैं, उत्पाद नहीं है, उसका पर्याय नहीं बनता तो पर्यायरहित तो कोई होता ही नहीं है। अस्तित्व और वस्तुत्वसे तो अभी पर्यायकी बात नहीं हुई थी, वह तो है की बात कह रहा था। अस्तित्वसे है, वस्तुत्वसे अपने रूपसे है, परके रूपसे नहीं है। पर अभी पर्यायकी बात नहीं आयी जो कि अवश्यम्भावी है, क्योंकि पर्याय यदि नहीं हो तो "है" का भी अभाव हो जाता है। सो वे दोनोंकी दोनों मिटनेको थीं तो द्रव्यत्व गुणने उन दोनों गुणोंको नष्ट होनेसे बचाया। है, अपने रूपसे है, पर रूपसे नहीं है और प्रति समय परिणमता रहता है। यह द्रव्यत्व गुणकी बात बताई।

अगुरूलघुत्व गुणकी समर्थता—प्रतिसमय परिणमता रहता है इतना हुकुम मिल जानेके बाद द्रव्यत्व गुण भी उद्दण्डता मचा सकता है हमको तो यह सहूलियत मिली है कि हम परिणमते रहें। किसी रूप परिणमते रहें परद्रव्यरूप परिणम जायें। किसीभी रूप परिणमें, हम तो परिणमेंगे। परको परिणमा देना और पररूप परिणम जाना इन दोनों बातोंका अर्थ एक है। भैया, चाहे यह कहो कि पररूप परिणम जाय, चाहे कहो कि परको परिणमा दे, मतलब एक है। हाँ, तो यों द्रव्यत्वगुण उद्दण्डता मचाने लगे तो उसकी रोकथाम अगुरूलघुत्व गुणने की कि हम न लघु रहेंगे और न वजनदार। पदार्थ वजनदार कब बनते ? विवक्षित पदार्थकी पर्याय तो है ही और उसमें अन्य द्रव्यके गुण भी ठूस दिए जायें तब वजनदार बन जाँयगे। तथा पदार्थ लघु कब होंगे, जब इसकी पर्याय दूसरोंको दे दी जाये। मेरे में अन्य द्रव्यकी पर्याय भी ठूस दी जाय तो हम वजनदार हुए, और मेरे जो गुण हैं वे निकल कर दूसरेमें

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

पहुँच जायें, मेरे में जो परिणतियाँ हैं वे निकल कर दूसरोंके पास जायें तो हम लघु बन जायेंगे। किन्तु पदार्थ गुरु लघु नहीं हैं। पदार्थ अगुरुलघु है। यह परमार्थके लिए कल्याणके लिये आध्यात्मिक कहिए, वस्तुका स्वरूप कहिए, उसकी बात चल रही हैं। अगुरुलघुने क्या निर्णय किया है—स्पष्ट शब्दोंमें यह कह लिया जाय कि हम परिणमेंगे तो जरूर प्रतिक्षण, मगर न परके द्रव्य रूप बनेंगे, न परके पर्याय रूप बनेंगे।

और भी सूक्ष्मतासे उस वस्तुके ही एक अंतःस्थितिमें पहुँच कर देखें तो यह यह भी नहीं हो सकता कि उसी वस्तुका एक गुण उसी वस्तुके दूसरे गुणरूप बन जाय। उस वस्तुके एक गृहविभागकी बात कह रहे हैं। वह द्रव्य परके गुणरूप न परिणमें परके पर्यायरूप न परिणमे, यह तो एक वैदेशिक नीति है। मेरी खुद की घरकी नीति क्या है कि एक गुण दूसरे गुणरूप न परिणमे। एक गुणकी पर्याय दूसरे गुणकी पर्यायरूप न बन जाय। ऐसी ही बात है। कोई कानून नहीं बनाया जा रहा है। नियम नहीं बनाया जा रहा, चीज कैसी है, उसके समझनेके लिए यही उपाय है। वैसे तो व्यवहारमें देखा जाय तो कानून बनाए नहीं जाते हैं। कानून बनाए और चलाए भी अपने नहीं होते हैं। व्यवस्थामें अपने आप होने लायक बात क्या है? इस बातको कानूनके शब्दोंमें जड़ा जाता है। इसके विरुद्ध यदि कानून बनाए जाते हैं तो फेल हो जाते हैं। यहाँ पर भी यह नियम नहीं बनाया। ऐसा नहीं है कि कोई नियम बना दिया फिर उसके मुताबिक वस्तुस्वरूप बना दिया। वस्तु जो है जैसा है, स्वयं है, उसका ज्ञान कराया जा रहा है।

प्रदेशवत्व गुणकी शरणता—यहां तक तो ये सब बातें चलीं। वस्तुके गुण सब कुछ हों पर जबतक हमें उस वस्तुका आकार समझमें न आये, आकारका मतलब पौद्गलिकसे नहीं, वस्तु स्वक्षेत्रमें कितनी फैली है, यह बात समझमें जबतक न आये तबतक वस्तु समझ में न आयगा। इसका आधार क्या है। पहिलेके दो गुणसे तो "है" को सम्भाला और बादके दो गुणोंसे "परिणमता है" को सम्भाला। भैया, ये दो खास चीजें हैं कि हैं और परिणमते हैं। प्रत्येक पदार्थ हैं और परिणमते हैं। परन्तु जब तक इनका आधार नहीं मालूम पड़ता और हम जबरदस्ती कह रहे हैं कि भैया दो बातें देखो, तो कहनेसे क्या, तब तक अन्य बातें भी नहीं समझमें आ सकती हैं। सो उन चारोंको ठीक करने का श्रेय है—प्रदेशवत्त्वगुणका। इसने बताया कि पदार्थ अपने अपने प्रदेशोंको लिए हुए हैं।

प्रमेयत्व गुणकी व्यवस्था—इस प्रकार वस्तुके ५ साधारण गुण हुए। लो, वस्तुकी वस्तुगत व्यवस्था बन गई, किन्तु वह जब अपने ज्ञानमें ही नहीं, समझमें ही

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

नहीं तो समझने वाला तो जीव है उस जीवके ज्ञानमें वह कुछ नहीं है। वह सब कुछ है तब जब वह जीवके ज्ञानमें है। अभी इस सम्बन्धमें दो ढंगसे बातें कही जावेंगी। पहिले तो यों ही ले लिया जाय कि मानो सब कुछ है पर उनका जानने वाला कोई नहीं है अर्थात् अगर प्रमाता नहीं है तो क्या है। तो वे सब जब प्रमेय हों तब हैं। किन्तु इस ढंगमें एक प्रश्न यह हो सकता है कि भाई तुम जानो या न जानो, वह तो है ही है। वह प्रमेय हो या न हो, ५ साधारण गुण तो हैं ही। अभी एक ढंगसे बात कहते हैं, दूसरे ढंगसे फिर कहेंगे। अभी तो यह बात आई कि कोई भी पदार्थ ज्ञानमें है तो है अन्यथा "है" बताने वाला कौन है ?

इसको दूसरी तरहसे देखो कि आत्मा भी तो ६ साधारण गुण वाला है, उसमें यह है आत्मा, इसे कैसे जानोगे। तो असाधारण गुणसे यह जान लो कि जो चैतन्यात्मक है वह है आत्मा। यह जानन देखनहार है, ज्ञाता द्रष्टा है, ज्ञानस्वभावी है, याने इसका काम जानना है और परिणमना है, जाननरूप परिणमना है। बस यही जाननरूप परिणमता है। जो सत् है उनका जितना रूप है वह सब जाना जाता है। क्यों जी ! उस सत्में एक चौथाई जानें तो क्या ऐसा हो सकता है ? नहीं हो सकता है। यह तो जाननरूप परिणाम रहा है। इसका यह मतलब नहीं है कि कुछके जानन रूप परिणमें और कुछके जानन रूप न परिणमें। यह तो जितना सत् है सबके जाननरूप परिणमता है। फल यह निकला कि यह जाननरूप परिणमता है तो वह समस्त अर्थ जितना है उतनेके जानन रूप परिणता है। तब फिर सब ज्ञेय बन गए, और यह ज्ञाता बन गया। लो, यों सबमें ज्ञेयत्व सिद्ध हुआ और आत्मामें ज्ञातृत्व सिद्ध हुआ। रही विकारस्थितिकी बात सो इस स्थितिमें तो हम सबके ज्ञानरूप नहीं परिणमते, मगर यहाँ तो स्वभावकी बात कही जा रही है। आवरण खतम होनेपर वही विकास यहाँ आ जायगा। स्वभावकी बात है, स्वभावका वर्णन और पूर्ण विकासका वर्णन एक समान होता है।

स्वभाव और पूर्ण विकासकी समानताका दृष्टान्त—जैसे निर्मल जलका वर्णन और जलके स्वभावका वर्णन कीजिए। निर्मल जलका क्या स्वरूप है ? समझमें आ रहा है, क्योंकि निर्मल जल निर्मल पर्यायरूपमें स्थित है जो बिल्कुल स्वच्छ है जल ही जल है, और जो कुछ भी समझे, शब्दोंसे क्या कहें समझमें आ गया। अब देखिए—जलका स्वभाव कैसा होता है ? वही बात, इतनी ही बात यहाँ कहनी पड़ेगी तब जलके स्वभावको समझ पायेंगे। एक कीचड़वाला जल रख दें और पूछा जाय कि जलका स्वभाव क्या है ? तो यह इतना ही दृष्टिमें आना चाहिए

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

जितना कि निर्मल जलके वर्णन करनेमें शुद्ध तत्त्व आया था। हम जलके स्वभावमें दृष्टि करते हैं तो उतनी बात यहाँ भी आ जायगी।

दार्ष्टान्तमें स्वभाव और पूर्ण विकासकी समानता—भैया, इसी प्रकार यह आत्मा भी ज्ञानस्वभावी है, ज्ञानमय है इसको स्पष्ट सुगमतासे जानना है तो देखो पूर्णविकासी ज्ञानी आत्माको अर्थात् परमात्माको। परमात्मा ज्ञानस्वभावी है, ज्ञानमय है। कितना विशाल ज्ञान है प्रभुका? जितना सब कुछ सत् है उस सबके अर्थग्रहण रूप ज्ञान है प्रभुका। ऐसा ही इस आत्माका स्वभाव है जाननेका स्वभाव है, सब जाननेका स्वभाव है। सब ज्ञेय बनेगा, प्रमेय बनेगा और यह प्रमाता है। अविवेकके कारण हम आप सबको नहीं जान सकते हैं, न जानें, पर दुनियामें ऐसा कोई सत् नहीं है जो किसीके ज्ञानका विषय न हो, और हो। अतः यह प्रमेयता भी पदार्थोंमें अवश्य आ पड़ती है।

साधारण गुणोंसे निष्कर्ष—इस तरह पदार्थों के ६ साधारण गुण होते है। और उनको देखकर यह व्यवस्था स्पष्ट पदार्थोंमें जचती है कि प्रत्येक पदार्थ अपनी परिणामात्मकतामें परिणमता है। यह आत्मा अपने भावकर्मरूप परिणमता है। विकार अवस्थामें देख रहे हैं, निमित्तनैमित्तिकसम्बन्ध भी है, पर आत्मा द्रव्य-कर्मका कर्त्ता नहीं है। द्रव्यकर्मका फिर कर्त्ता कौन? द्रव्यकर्मका कर्ता वही पुद्गल है, वह ही परिणमन है, और वह द्रव्य उस परिणमनमें अनन्य है। मगर यह निमित्त नैमित्तिक भाव स्पष्ट है कि इसमें जब इस प्रकार विषयकषायरूप परिणमन होता है तो ये कर्माण वर्गणायें जो हैं वे खुदकी परिणतिसे कर्मरूप परिणम जाती हैं। ऐसा ही निमित्तनैमित्तिकसम्बन्ध है। भैया निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध तो परका परमें है, किन्तु कर्ताकर्मभाव नहीं है। दुनियाको तो यथासम्भव पूरी-पूरी जान लो और फिर आत्मकल्याणके मार्गमें अधिक लगो, तब सब बातें भूल कर केवल एक भावात्मक अपना स्वरूप लक्ष्यमें और दृष्टिमें रखोगे। इस तरह इस गाथामें यहाँ पूज्य अमृतचन्द्र जी सूरि यह स्पष्ट कररहे हैं कि परमार्थसे आत्मा द्रव्यकर्मका कर्ता नहीं है। आत्मविभावमें और द्रव्यकर्ममें मात्र निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध है, उसको लेकर आत्मा द्रव्यकर्मका कर्ता है, ऐसा कहना व्यवहारमें ठीक है।

पदार्थ और परिणमन—भैया, पदार्थ है और परिणमता है, इन दोनों बातों में ही सब तत्त्व आ गए। यह जीव है और परिणमता है। जीवका परिणमन जीवमय है अर्थात् वह जीव अपने ही स्वरूपमें परिणता है। परिणमना, यह प्रत्येक जीवका स्वभाव है। वह उत्पाद व्यय रूप परिणमन जीवमें जीवके तंत्र होकर ही होता है। यद्यपि जीवमें स्वभावविरुद्ध परिणमन उपाधिका निमित्त पाकर ही होता

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

है, निमित्त पाये बिना नहीं होता; तथापि जीवके अस्तित्वकी दृष्टिसे देखनेपर देखो तो जीवमें ही कुछ बदल गया। उसकी सीमामें ही अब वह विरुद्धरूप परिणम गया। इस प्रकारके परिणमनमें जीव स्वतन्त्र होकर परिणमता चला जाता है। इस प्रकार जीवमें जो बिभाव होते हैं वे जीवके तंत्र होते हुए प्राप्य हैं।

परिणमन की स्वतन्त्रता—इस प्रकारके विकार रूप परिणमनका ढंग परको निमित्त पाकर ही होनेका है, किन्तु इस वस्तुस्थितिमें तो परमार्थसे आत्मा, आत्म-परिणामात्मक क्रियाको करता है, और पुद्गल पुद्गलात्मक अपने परिणाम क्रियाको करता है। कार्माण पुद्गल आत्माके परिणमनरूप भावकर्मका कर्त्ता नहीं है और आत्मा भी पुद्गलके परिणमनरूप पुद्गलकर्मका कर्ता परमार्थसे नहीं है।

व्यवस्थित अस्तित्व—आज तक यह दुनिया क्यों टिकी है? सारे पदार्थ आज तक यहाँ क्यों है? इसी कारण हैं कि वे सब पदार्थ मात्र अपने अस्तित्वमें ही बनते हैं और अस्तित्वमें ही व्ययको प्राप्त होते हैं। यदि कोई द्रव्य किसी पर द्रव्यमें अस्तित्व बनाए, परिणमन करे, किसी दूसरे रूप बने, अर्थात् अन्यरूप बनें तब तो यह उस रूप बन गया, अब बतलावो कि वह निज रूप रहा कि पर रूप रहा? कोई दूसरे रूप बन गया तो सब अन्धेर नगरी हो जाय, और अंतमें सब गड़बड़ होकर, संकर होकर कुछ भी न रहेगा। ये सारे पदार्थ ही इस बातके प्रमाण हैं कि प्रत्येक पदार्थ अपने-अपने अस्तित्वमें ही रहते हैं।

ज्ञानभूत दृष्टिकी महत्ता:—यह चीज ज्ञानभूत क्यों है? ऐसी दृष्टि अमृत क्यों है? इसलिए कि इस दृष्टिके प्रतापसे मोह नष्ट होता है। लोकमें दुःख केवल मोहसे है और मोहका विनाश सम्यग्ज्ञानसे ही होता है। उसका उपाय दूसरा नहीं है। यदि एक निगाहसे देखो तो जो ये तीन कुतत्त्व हैं मोह, राग और द्वेष; इन तीनोंमें से मोहका नाश कर देना कितना सुगम है, कितना अपने आधीन है, यह बात समझमें आती है। मोहका बिनाश कर लेना बड़ा सुगम है। राग और द्वेषका विनाश कर लेना कठिन है। राग द्वेषके विजय करनेमें तो सुगम अपना बश नहीं है, पर मोहका नाश करनेमें अपना बश है, क्योंकि मोहका नाश होता है यथार्थ ज्ञान कर लेनेसे।

मोह, राग, द्वेषरूप परिणतिके सम्बन्धमें ज्ञानीकी दृष्टि:—मोह कहते इसको ही हैं कि एकको दूसरेका अधिकारी समझना, एकको दूसरेका कर्ता भोक्ता समझना। ऐसी दृष्टि होनेका नाम मोह है, और जहाँ वस्तुस्वातन्त्र्य समझमें आया वहाँ यह दृष्टि नहीं टिक सकती कि मेरा कुछ है, इसने कुछ कर दिया है, इसका अमुक पर भोक्ता है ऐसी दृष्टि नहीं ठहर सकती है। ऐसी दृष्टिका न रहना ही मोहका नाश है। दृष्टिसे मोहका नाश हो जानेपर भी ज्ञानीको राग द्वेष सताते हैं।

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

कुछ काल तक राग द्वेष सताते हैं, और ज्ञानी हैरान होता है। यह हैरानी ज्ञानीकी यद्यपि खतम नहीं होती है, उसे विकल्पोंमें रहना पड़ता है फिर भी चूँकि रागादिक भाव द्रव्यकर्मोंके विपाकसे उत्पन्न होते हैं ज्ञानके स्वभावमें नहीं हैं सो उनसे ज्ञानी विरक्त रहता है, उनसे हटकर अपनी ओर झुकनेका यत्न करता है। ज्ञानीके पुरुषार्थ करनेपर भी कुछ समय तक राग द्वेष रहते हैं, राग द्वेष सताते हैं सो समझो कि राग द्वेषोंका मिटाना मोहके मिटानेसे कठिन है। जैसे एक वृक्ष खड़ा है, सोचा कि इसको जड़से उखाड़ देना चाहिए, तो दो एक आदमी मिले और कुल्हाड़ी आदिसे काटना शुरू किया तो दो तीन घंटेमें गिरा देते है, और सब लोग सोचें कि इसके पत्तोंको सुखा दें, इसका हरापन खतम कर दें, जला देनेकी बात नहीं कहते। तो उसके हरेपनको मिटाने के लिए आप क्या करेंगे, हरापन कैसे मिटेगा ? वह दस पंद्रह दिनोंमें स्वयं मिटेगा, परन्तु जड़से उखाड़ देनेका काम इतने ही प्रोग्रामसे, इतनी ही तैयारी से दो तीन घंटेमें खतम हो गया।

मोहको हटानेमें दृष्टिबल :— मोहको हटानेके लिए यथार्थ वस्तुस्वरूपको ध्यानमें लाना होगा। वस्तुस्वातन्त्र्यको ध्यानमें लानेसे मोह मिटेगा। मोह मिटाकर ही रागद्वेष मिटते हैं। ज्ञानी बार-बार ज्ञानस्वरूप आत्मतत्त्वकी भावनाके अभ्याससे मोहको मिटाता है। मोहको मिटानेमें बिलम्ब नहीं लगता है। जैसे राग धीरे-धीरे मिटते मिटते अन्तमें कुछ सयम बाद मिटता है उसी तरह मोह धीरे धीरे मिटाते मिटाते मिटता नहीं है, वह तो जब मिटता है, प्रायःशीघ्र मिटता है। वह यदि है तो ढंगसे है और मिटता है तो मूलसे मिटता है। मोहके मिटानेमें धीरे धीरेका काम नहीं हैं, धीरे धीरेका मिटना तो राग और द्वेषमें चलता है। सब विषोंका मूल तो मोह है जिसके नशेसे जगतके जीव अधिक परेशान हैं।

मोहका स्तर—यह मोह है व्यर्थ का, दूसरेके मोहकी बात जरा जल्दी समझमें आ जाती है—ये भैया इतने तो बड़े आदमी हैं, इतने तो पढ़े लिखे हैं और इसमें इस तरहका मोह कर रहे हैं। घरमें इस तरहका मोह है, धनमें इस तरहका मोह है। देखो भाई ! दूसरेकी भूल कितनी जल्दी समझमें आ जाती है, और अपने आपमें मोहका होनेवाला नाच अपने आपकी बुद्धिमें जरा देरमें समझमें आता है। यह बात एक मोटे रूपमें व्यवहारागतके नाते कही जा रही है कि दूसरेकी भूल कितनी जल्दी ग्रहणमें आती है पर अपने आपकी बड़ी मूर्खता बुद्धिमत्ताके रूपमें समझी जाती है। कोई किसी काममें गुस्सा करता हो, धार्मिक काममें या किसी बातमें तो दूसरेकी गुस्सा अपनेको कैसी लगती है, हम झट कहते हैं कि देखो यह मूर्खताकी बात कररहा है। कैसा गुस्सेमें तना खड़ा है, कैसी पीली आँखें खोलता है, अपने आपको भूल रहा है और

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

खुदको गुस्सा आती है तो यह लगता है कि मैं उचित कर रहा हूँ, इसने बिल्कुल अपराध किया है। मेरा पक्ष सुधारका है, वहाँ सब गलतियाँ समझमें आती है।

ज्ञानाभ्यासका बल :—कोई अपने आपमें ज्ञानका अभ्यास कर रहा है, तो जैसे दूसरेकी बेवकूफी समझमें आती है वैसी अपनी बेवकूफी झट समझमें आ जाय, इतना जब अभ्यास हो जाता है तब उस ज्ञानीके लिए ये सब विषय सुगम हो जाते हैं कि मेरा मैं ही हूँ मेरा काम मुझमें ही है। क्या काम है ? परिणमना। इसके आगे और कोई काम नहीं है। परमार्थसे देखा जाय तो परिणमन होना ही आपका काम है, इतना बोलते हुए भी संगीत आदि गाते हुए भी वहाँ देखो कि आत्मा कर क्या रहा है ? आत्मा ज्ञान और इच्छा ही कर रहा है। जैसी इच्छा की, उसके अनुकूल इस आत्मामें योग हुआ, उस प्रसंगमें जहाँ कि बहुत बोला जा रहा है, गाया जा रहा है, कुछ संगीत बजाया जा रहा है आत्माने ध्यान किया, इच्छा की, और योग किया। ये परिणतियाँ आत्माके अस्तित्वको ज्ञेय करके, बिचार करके देखा जाय तो ज्ञान इच्छा और योगके ढंग, जाननरूप कार्यकी ये तीन परिणतियाँ, जिन्हें भेद करके कह रहे हैं, उसमें हो रही हैं। पर वस्तुतः उसमें जो हो रहा है सो हो रहा है। उसमें एक काम हो रहा है। उस होनेवाले एक कामको हम कैसे बतायें, उन्हें गुणभेद करके कहा जा रहा है कि वह ज्ञान कर रहा, इच्छा कर रहा और योग कर रहा।

ज्ञान, इच्छा, और योगकी निमित्तनैमित्तिकपरम्परा—इस जीवमयी क्रियाके निमित्तसे याने ऐसी आत्मपरिणतिका निमित्त पाकर इस देहमें जो एक बात दोष है, वायु है जिसका शब्द कभी कभी आपके शरीरमें हरकत करता है, ऐसा जो तत्त्व है वह वायु उस योगके अनुकूल चलती है जैसा कि इसने इच्छा और योग किया, क्योंकि इस अपनी प्रवृत्तिमें और इच्छा व योगमें परस्पर निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध है सो वह वायु चलती है, वायुका निमित्त पाकर ये ओंठ जीभ आदि हिले और जैसे हारमोनियम सितार आदिमें अंगुली धरनेपर हवा आनेपर रगड़ होनेपर अनुकूल शब्द निकलते हैं वैसे ही यह मुख भी एक अनोखा बाजा बजता है। जिस तरह जीभ हिले, ओंठ हिले उस तरह कंठके माध्यमसे मुखसे शब्द निकलते हैं जैसे क, ख, ग, घ, ह, बिसर्ग आदि कंठके माध्यमसे है;च, छ, ज, झ, आदि शब्द तालुके स्पर्शसे निकलते हैं;त, थ, द, आदि निकलते हैं दन्तस्थानसे। मूर्धामें जीभ लगानेसे ट, ठ, ड, ढ, आदि शब्द निकलते हैं, व ओंठमें ओंठ मिलनेसे प, फ, ब, आदि शब्द बनते हैं। भैया, एक नया बाजा रेडियोमें अक्सर बोलता है जिसको सुनकर ऐसा भ्रम हो जाता है कि इसमें कोई एक और मुखका बाजा बज रहा है। इसमें पैच मरोड़नेसे मिश्रित आवाज होती है, बिचित्र ढंगसे बोलता है, हारमोनियमकी तरहका होता है, बिजलीसे चलता है, इसी तरह कुछ और और हरकतें लगी रहती हैं जिनमें भिन्न भिन्न शब्द निकलते हैं। वे निमित्तोंसे

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

निमित्तोंकी परम्पराके द्योतक हैं। इन निमित्तोंकी परम्पराकी दृष्टिसे देखा जाय तो सारे संगीत, सारे भाषणमें मूलमें मूल आत्माका परिणाम ही उस निमित्तपरम्परा में होता है। किन्तु बहुत दूर होनेवाले परिणाममें निर्णय किया जाता है कि आत्मा ने यह शब्द बोला। देखो सब शब्दोंके बोले जानेका निमित्त है मुहके अंगोंका चलना। मुखके अंगोंके चलनेका निमित्त है वायुका चलना, वायुके चलनेका निमित्त है आत्म-प्रदेशोंमें परिस्पंदका होना, आत्मप्रदेशमें इस प्रकार परिस्पंद होनेका निमित्त है, आत्मामें एक प्रकारकी इच्छाका होना, इस प्रकारसे यह सब भाषावर्गणावोंकी परिणतियाँ व्यक्त हुई है। इनका विश्लेषण करके जो आत्मा अनात्माका भेद प्रतिभास होता है उस भेदविज्ञानको अपने ज्ञानमें उतारना है।

भेदविज्ञान संकटनाशक :—यह सब प्रताप ज्ञानका है। ज्ञान न हो तो सब व्यामोह हो जायगा। इसलिए सबसे बड़ा संकट जीवपर मोहका है, ऐसे प्रचण्ड मोह का संकट ज्ञानसे ही मिट सकता है। इसलिए सारे संकटोंको मिटा देनेमें समर्थ वस्तुस्वरूपका ज्ञान है। वस्तुस्वरूपके ज्ञानके बलसे मोह मिटा कि निःशंक समझ लीजिये कि अब सारे संकट खतम हो गए।

अज्ञानदृष्टिका-परिणाम :—जैसे किसीके घर कोई इष्ट पुरुष गुजर गया और घरवाले बड़ी वेदनामें पड़े हुए हैं तो मित्र, रिश्तेदार आदि आते हैं और समझाते हैं। यदि वे अपनी ऐसी सहानुभूति दिखायें कि बेचारा कितना अच्छा था, गुजर गया है, कितना प्यारा था, कितना मीठा बोलता था, घरमें कैसी मुहब्बत रखता था, ऐसा समझाते हैं तो बताओ, वे दुःखको बढ़ाते हैं कि काम करते हैं? बढ़ाते हैं। उसके पास तो गये थे दुःख मिटानेके लिए पर दुःख और बढ़ा दिया।

ज्ञानदृष्टिके परिणमनका उदाहरण :—अगर कोई उस वियोगीको ऐसा समझावे कि जगतमें अनेक जीव हैं, कोई किसी गतिसे आया है, कोई किसी गतिसे। ये सब अपने अपने कर्मोंसे जन्मते और अपने अपने कर्मोंसे मरते हैं। अकेले ही तो वे पैदा हुए हैं आयु पूरी हो गयी, मरकर चला गया, उससे किसीका सम्बन्ध नहीं है। वह तुम्हारा तो है नहीं। यदि तुम्हारा होता तो तुम्हारे पास सदा रहता। वह तो तुम्हारा दूसरे जन्मका इस कारण बैरी था जो थोड़े समयके लिए आया और विकल्पका कारण बनकर चला गया। तुम्हें दुःखी कर गया। यहाँ भेद विज्ञानकी बात कही जाती है। अगर ध्यानमें बैठे कि सच तो यही है कि किसीका यहाँ क्या है। थोड़े से भ्रमते फिरते जीव यहाँ इकट्ठे हो गए, मिल गये पर वे हमारे नहीं हैं। उपरोक्त प्रकारसे जब ज्ञान होता है तो वेदना शान्त होती है।

वेदना मिटनेमें कारण :—वेदनाको मिटानेका प्रताप पदार्थोंके स्वरूपास्तित्व

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

के अवगममें ही है। उसके प्रतापसे मोहके हटनेका प्रताप होता है। मोह टला तो सारे संकट दूर हो गए। उसके भीतर आकुलता थी, बाहरके अनेकों संकट छाए हुए थे, पर जब मोह चला गया तो संकट चले गए। दुकानकी फिरसे व्यवस्था कर ली, लोगोंसे ठीक ठीक बोलने लगा, आगे भी साफ साफ देखने लगा, सब ठीकसे काम होने लगा। यह किसका प्रताप है ? यह है मोह मिट जानेका प्रताप, और मोहके हटनेमें कारण स्वरूपास्तित्वके अवगमका प्रताप है।

बच्चे लोग एक छोटी कहानी बोला करते हैं एक स्याल था उसकी स्यालिनी भी थी, स्यालिनीके गर्भ था। स्यालसे स्यालिनीने पूछा कि बच्चे कहाँ पैदा करें ? तो स्यालने बताया कि शेरके खोहमें। शेरकी खोहमें स्यालिनीके बच्चे पैदा हुए। स्यालने स्यालिनीको कुछ समझा भी दिया। तब स्याल स्वयं भीटके ऊपर चढ़ गया। स्यालिनी जब कोई शेर देखे तो बच्चोंको रुला दे। स्याल पूछे कि बच्चे क्यों रोते हैं ? तो स्यालिनी कहती कि बच्चे शेरका मांस खाना चाहते हैं। इस तरहसे एक, दो, चार जो भी शेर आते सब डर कर भग जाते थे, यह समझकर कि हमसे भी बढ़ कर यहाँ कोई है। तब सब शेरोंने मिलकर यह सोचा कि यह जो स्याल ऊपर बैठा है उसकी सब धूर्तता मालूम होती है, चलो अपन सब मिलकर उसके पास चलें। उसे पकड़ कर मार डालें। बड़े बड़े शेर मिल कर आए सोचा कि एक पर एक ऊपर चढ़ कर, पास पहुँच कर पकड़ कर गिरा देंगे। सबने कहा बहुत ठीक। फिर चर्चा चली कि नीचे कौन रहे ? उन सबमें एक लंगड़ा शेर था, उसका एक पैर बहुत कमजोर था। सब शेरोंने सोचा कि यही लंगड़ा शेर नीचे रहे, क्योंकि यह दूसरेके ऊपर नहीं चढ़ सकता। सबसे नीचे लंगड़ा शेर खड़ा हुआ। उसके ऊपर दूसरा, फिर तीसरा फिर चौथा आदि खड़े हुए। कुछ देर तक एकके ऊपर एक चढ़ते रहे, थोड़ी देरमें स्यालिनीने अपने बच्चोंको रुला दिया। स्याल पूछता है कि बच्चे क्यों रोते हैं ? तो स्यालिनी कहती कि बच्चे लंगड़े शेरका मांस खाना चाहते हैं। यह सुनते ही लंगड़ा खिसका और सब शेर भद भद गिरे। भद भद गिरने और भागनेसे सब शेरोंपर ऐसा असर हुआ कि वे सब फिरसे उस तरफ झाँके भी नहीं। देखो भैया, एकके खिसकने से सारे खिसक खिसक कर भद भद करके गिर पड़े उसी प्रकार मोहरूपी शेरके खिसकनेसे सारे संकट खिसक खिसककर व एकदम समाप्त हो जाते हैं।

संकटोंका पालक :—अरे भाई ! सब संकटों कोपाल रखा है तो मोहने पाल रखा है। जब जीव वस्तुके स्वरूपके उन्मुख नहीं होता तब मोहके अंधेरेमें सारे संकट पनपते रहते हैं। समस्त संकट मोहराजाकी प्रजा है।

वस्तुस्वरूपके चिरन्तन अभ्यासकी प्रेरणा :—सब प्रकारके उपाय द्वारा

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

वस्तुस्वरूप अपनेको ज्ञानमें लाना चाहिए, ध्यानमें लाना चाहिए, काममें लाना चाहिए जिससे कि मोह सता न सके। वस्तु स्वरूपको पूज्यपाद उमास्वामीजीने तत्त्वार्थ सूत्रमें कहा—उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्। जो उत्पाद व्यय ध्रौव्य वाला है, उत्पादके माने बनना, व्ययके माने बिगड़ना, और ध्रौव्यके माने बना रहना। ये पदार्थके स्वतः सिद्ध तत्त्व हैं कि पदार्थ बने रहें, बिगड़ते रहें और बनते रहें। यदि पदार्थ बनता नहीं तो बिगड़ना व बना रहना ये तत्त्व भी नहीं हो सकते। यदि पदार्थ बिगड़ते नहीं तो बनना व बना रहना नहीं हो सकता। यदि बने नहीं रहते तो बनना बिगड़ना नहीं हो सकता। वे अपने ही तत्त्वमें हैं और अपने ही स्वरूपमें रहकर अपनेमें ही उत्पाद व्यय करते हैं। ऐसा वस्तुगत स्वतंत्र स्वरूप दृष्टिमें रहे तो हम मोहसे दूर रहकर सुखी हो सकते हैं।

आत्मस्वरूप :—आत्मा अपने आत्मस्वरूपसे परिणमता है। इसका वर्णन होनेके बाद यह प्रश्न किया जा रहा है कि वह स्वरूप क्या है जिस स्वरूप से आत्मा परिणमता है? समाधानमें पूज्य श्री कुन्दकुन्दाचार्य देव कहते हैं कि—

परिणमइ चेयणाए आदा पुण चेदणा तिधाभिमदा।
सा पुण णाणे कम्मे फलम्मि वा कम्मणो भणिदा॥ १२३॥

यह आत्मा चेतनास्वरूपसे परिणमता है और वह चेतना तीन प्रकारसे अभिमत है, इष्ट है, माना गया है अथवा उस चेतनारूपके परिणमनेको तीन रूपसे देखा जाता है। प्रथम ज्ञानचेतना, द्वितीय कर्मचेतना और तृतीय कर्मफलचेतना है। चेतनाके ये साधारण परिणमन संसारी और मुक्त दोनों ही प्रकारके जीवोंमें तथा मिथ्यादृष्टि व सम्यक् दृष्टिमें भी घटित होते हैं। इस प्रकार साधारण परिणमनका अर्थ लगानेके लिए इसकी व्याख्या की जायगी कि आत्मा किस प्रकार चेतनामें परिणमता है जिससे ज्ञान, कर्म व कर्मफल विदित होते हैं।

ज्ञान चेतना :—ज्ञानचेतनाकी बात बिल्कुल स्पष्ट है। जीव ज्ञानसे चेतते हैं, यह साधारण अर्थको लेकर कहा जा रहा है। कोई विशेष अर्थ नहीं लगाना है। यहाँ यह देखना है कि जीव जानते हैं, वे जानते क्या हैं, पहिले यह बताओ? चाहे संसारी हों, चाहे मुक्त हों, सब अपने स्वरूपकी ही वृत्ति करते हैं, ज्ञान एक गुण है और वह गुण आत्मप्रदेशोंमें ही है। आत्मप्रदेशसे बाहर ज्ञान गुण है क्या किसी जीवका? जीवका ज्ञानगुण अपने प्रदेशोंमें ही है। वह ज्ञानशक्ति चाहे किसी रूप परिणमन करे वह अपने आत्मप्रदेशीय क्षेत्रमें ही वृत्ति करेगा या आत्मप्रदेशोंके बाहर? ज्ञानशक्तिका परिणमन आत्मप्रदेशोंमें ही जाननरूप होता है तो जानन क्रिया आत्मप्रदेशमें हुई। जहाँ ज्ञानकी क्रिया हुई वहाँ ही तो जाननवृत्ति और जाननका

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

प्रयोग हुआ। इस जाननने जाननको ही जाना, परखा। हां यह बात जरूर है कि जो ज्ञान अपनेको अन्य रूपोंमें चेतता है वह तो होता है मिथ्याज्ञान और जो ज्ञान चेतनको ज्ञानरूपसे चेतता है वह होता है सम्यग्ज्ञान। ऐसा ज्ञानका परिणमन परमार्थसे ज्ञानको ही चेतता है। अर्थात् सब जीव अपनेको ही जानते हैं किन्तु जाननमें अन्तर यह होता है कि कोई जीव अपनेको शरीरवाला, कोई जीव अपनेको परिवारवाला और कोई जानता है कि मैं बच्चोंवाला हूँ, तो कोई अपनेको ज्ञानमात्र जानता है। ये जाननरूप परिणतियोंके नाना रूप हैं। मैं परिवार वाला हूं ऐसा जानकर भी उसने हूँ शब्दसे अपनेको ही जाना, अन्यको नहीं जाना, क्योंकि परमार्थ दृष्टिसे देखा जाय तो प्रत्येक पदार्थ अपने ही द्वारा प्राप्य है, अपनेमें ही अपना प्रयोग करते हैं, अपने आपमें ही उनका वर्तन रहता है। इस दृष्टिसे यह ज्ञानचेतना सब जीवोंमें है। सिद्ध भगवान अपने ढंगसे, अपने ज्ञानसे चेतते हैं और संसारी जीव अपने ढंगसे अपने ज्ञानसे चेतते हैं। इस प्रकार प्रथम ज्ञानचेतना बताई गयी है कि यह जीव ज्ञान चेतनासे किस प्रकार परिणमता है।

कर्मचेतना :—दूसरी चेतना है कर्मचेतना, कर्म शब्दसे यह जानना है कि आत्माका कर्म क्या है इस प्रश्नका भाव है, क आत्माकी क्रिया क्या है? आत्माका जो परिणमन है बह आत्माका कर्म है। वह क्या है? जो अपने आपमें पर्याय होती है, परिणति होती है, वह कर्म है, ऐसा वह कर्म सब जीवोंमें पाया जाता है। मुक्तमें, संसारीमें, मिथ्यादृष्टिमें सबमें कर्म अर्थात् परिणमन होता है। परिणमन अपने अपने रूपसे होता है। कर्म बिना कौन पदार्थ है? मुक्त जीवोंका कर्म क्या है? विश्वको जानना। सर्वज्ञताका जो काम हो रहा है वह मुक्त जीवोंका कर्म है। अब जब कर्म है तो उस कर्मका कोई फल है। तो कर्मका फल तो वस्तुकी सत्ता बनी रहे यही मुख्य है जोकि सब पदार्थोंमें है। यदि कर्म न हो तो बस्तुकी सत्ता नहीं हो सकती, उत्पादव्ययध्रौव्य न होसकता।

कर्मफलचेतना :—तो कर्म फल क्या है? उस पदार्थका अस्तित्व बना रहना सबसे बड़ा भारी फल है और जीव तो चेतना रूप है। सो जीवका चेतना भी फल है। मुक्त जीवोंका फल क्या है? अनन्त आनन्दरूप परिणमना। कर्म शब्दकी रूढि ज्ञानावरणादिक कर्म शब्दसे है। किन्तु अभी कर्मको सुनकर ज्ञानावरणादिक कर्मका अर्थ नहीं लगाना, किन्तु क्रिया लगाते जाना, तो यह आत्मा तीन रूपोंसे परिणमता है और एक साथ परिणमता है। यह नहीं कि जिस समय ज्ञानरूपमें परिणति हो उस समय कर्मरूपमें न परिणमें। फलतः एक साथ प्रत्येक जीव तीन रूपोंमें परिणत होता है। क्योंकि, क्रियाशून्य वस्तु कभी नहीं रहती है और क्रियाफलशून्य भी कभी नहीं रहती है। कर्म का व कर्मफलका मुख्य अर्थ यह लगाओ।

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

विभिन्न जीवोंकी विभिन्न चेतन परिणतियाँ:—कुछ संकुचित अर्थ लगावो तो यह यह अर्थ लगावो कि कोई जीव ज्ञानचेतना से परिणमता है, कोई कर्मचेतनासे, और कोई कर्मफलचेतनासे परिणमता है। जिनके सम्बन्धमें बताया गया है कि कर्मफलचेतनाकी परिणति स्थावरजीवोंमें है, क्योंकि वे चल नहीं सकते, उनके अंगोपांग नहीं हैं, सो व्यवहारमें दिखने वाली क्रिया स्थावरोंके हो ही नहीं सकती सो कर्मफलचेतनामें स्थावर आते हैं और ज्ञानचेतनामें सम्यग्दृष्टी जीव आते है और कर्मचेतनामें सब त्रस जीव आते हैं। किसी दृष्टिमें केवल अरहंत और सिद्ध भगवान ज्ञानचेतनामें आते हैं, यह भिन्न भिन्न चेतनाका परिणमन है।

जीवकी स्वस्वरूपपरिणति:—अब इस प्रश्नका निर्णय करो कि जीव किस स्वरूपसे परिणमता है। समाधान यह है कि जीव चेतनास्वरूपसे परिणमता है। मैं चैतन्य हूँ और परिणमता रहता हूँ, अन्य रूपोंमें नहीं परिणमता हूँ। मिथ्यादृष्टि भी अपने आत्मस्वरूपसे परिणमता है, किसी परके स्वरूपसे नहीं परिणमता है। मैं परको करता हूँ इस प्रकारके विकल्परूपसे यद्यपि अज्ञानी परिणमा, किन्तु परिणमा पर रूपसे नहीं। अज्ञानी भी परका कर्ता नहीं होता। मात्र परका कर्ता हूँ इस प्रकारके विकल्पोंकाही वह कर्ता होता है। यह तो वस्तुस्वरूपकी सीमा है। अगर अज्ञानी परका कुछ करदे तो अनन्त शक्तिमान परमात्मासे भी अधिक शक्तिमान उसे कहना चाहिए। भगवान या परमात्मा तो परका कुछ कर्ता नहीं है मगर यह अज्ञानी मोही परका कर्ता बन गया। अगर यह परका कर्ता हो जाय तो भगवानकी भी किसी दिन यह खबर ले डालेगा। जैसे मानलो कि एक देश आजकल आक्रमणका कर्ता है और विस्तारवादमें चल रहा है। यदि विस्तारवादमें सफलता मिलती चली जावे तो न जाने वह दुनिया का क्या क्या कर डाले।

अज्ञानके विस्तारवादकी कल्पना—अज्ञानका विस्तारवाद पता नहीं जीवका क्या क्या कर डालेगा। अगर परका कर्ता बन जाय तो सबको मिटायेगा। किसी दिन यह भगवानकी भी खबर ले डालेगा। भगवान भी पर पदार्थ है, उसको भी यह मिटा डालेगा। यदि इससे बढ़ कर कोई अज्ञानी मिल गया तो वह इसको भी नष्ट कर देगा, किन्तु यह अन्धेर नहीं हो सकता। वस्तुस्वरूपकी सीमा है। हाँ, विज्ञानसिद्ध यह बात अवश्य है कि जो विकाररूपसे परिणम रहा है वह किसी परका निमित्त पाए बिना नहीं परिणम रहा है, निमित्तको पाकर परिणम रहा है। यह निमित्त नैमित्तिक संबंध अटल बात है। नहीं तो, कभी चूल्हेपर रोटी बनावे तो कभी पानी पर भी बना लेंगे। यह अव्यवस्था हो जायगी।

निमित्तनैमित्तिक स्वरूपका अवलोकन—तो यह निमित्त नैमित्तिक बात तो

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

है, पर उसको इस ढंगसे देखना चाहिए कि वर्तमानमें वस्तुमें क्या गुजर रहा है। उसको देखकर यह सोचना चाहिए कि देखो यह पदार्थ कैसी योग्यता रखता है कि अमुक प्रकारका निमित्त पाये, तो यों परिणम जाय इस प्रकारकी योग्यता रखता है और निमित्त सन्निधिमें इस प्रकार अपनी योग्यतासे अपनी कलासे अपना खेल करता है। यह दृष्टि किसी सिद्धान्तका लोप नहीं करती। प्रत्युत वस्तुस्वरूपको देखकर जो वस्तुस्वातन्त्र्यकी दृष्टि बनती है वह मोहका विनाश करती है। मोहका नाश वस्तु-स्वातन्त्र्यके दर्शन बिना नहीं हो सकता है, क्योंकि मोह कहते ही इसको हैं कि परसे परका सम्बन्ध, कर्तृत्व, अधिकार लगाव आदि-आदि मिलाए रहना, देखते रहना और स्वरूप अस्तित्व समझमें न आना इसका ही नाम मोह है। जैसे घर कुटुम्ब परिवारमें जहाँ मोहकी बात रहती है वहाँ क्या होता है कि वह अपनेको नगण्य समझता है। और घरके पुत्रोंको समझता है कि ये ही मेरी जिन्दगी है, इन्हींसे मुझे सुख मिलता है। कोई-कोई तो साफ-साफ कह भी देते हैं भैया, ये पुरुष व महिलाएं कि मेरा आधार यही है, इन्हीं पर मेरे प्राण टिके हैं, जो होनी थी वह तो हो गई, घरका मालिक गुजर गया पर मेरे प्राण अब इन बच्चोंके ऊपर टिके हैं। मोहके माने यही है कि अपनेको नगण्य मानें और अपनी रक्षा, अपना सत् परके ही सहारे है, पर ही मेरा कर्ता है, ऐसा माने यही मोहका भयानक रूप है। मोहको ही अज्ञान कहते हैं, मूर्खता कहते हैं। अब किसीको कहा जाय कि भैया तुम बड़े मूढ हो तो बुरा मान जायगा और यह कहा जाय कि तुम बड़े मोही हो तो बहुत बुरा न मानेगा। पर मोही या मूढ कुछ भी कहो अर्थ दोनों का एक ही लगता है।

मोही परिणमन व उससे पृथक्ताकी प्रेरणा—मुह धातुमें घञ् प्रत्यय करके संज्ञा बनाकर मोह बना दिया और मूढमें मुह धातुमें क्त प्रत्यय लगाकर मूढ बना दिया। मूढ परफेक्ट का रूप है। मूढ कहो, मोही कहो एक ही मतलब है। जो मोही है वही मूढ है। जहाँ मोह है उस जगह आपदा है। आपदा पर वस्तुमें नहीं है। आपदा तो मोहके अभावमें है, कैसी भी स्थितियां हों चाहे धनी हो, चाहे गरीब हो चाहे नेता हो चाहे विद्वान हो पर जहाँ मोह है वहीं आपदा है मोही प्राणी उपरोक्त प्रकारसे तथ्यकी बात नहीं देखता।

एक दम्पती था याने पुरुष था और उसकी स्त्री थी। पुरुषका नाम था बेवकूफ और स्त्रीका नाम था फजीहत। कभी-कभी इनमें लड़ाई भी हो जाती थी और फिर शान्ति हो जाती थी। एक दिन उनमें लड़ाई हुई, तो फजीहत अपना घर छोड़कर कहाँ भग गई। वह बेवकूफ अपने पड़ोसियोंसे जाकर पूछता है कि मेरी फजीहत को तुमने कहीं देखा है? तो पूछते हैं कि क्या लड़ाई हो गई थी? अनेक परिचित लोगों

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

से पूछा। सबने फजीहतका अर्थ लगा लिया कि इसकी स्त्री है। एक अपरिचित व्यक्तिसे पूछा कि कहीं तुमने मेरी फजीहत देखी है? सो वह अर्थ नहीं समझ सका। सो वह सोचता है कि फजीहत क्या चीज है? वह फजीहतका मतलब न समझ सका। सो पहिले यही पूछता है वह अपरिचित कि तुम्हारा नाम क्या है? वह बोला कि मेरा नाम बेवकूफ है। तो अपरिचित व्यक्ति बोला कि भाई बेवकूफ होकर भी तुम फजीहत ढूढ़ते हो। जहाँ बेवकूफ चला जाय, अटपट बोल दे वहीं हर जगह जूते लाठी तैयार हैं। सो जब मोह है तो इस मोहवाले को विपत्तिकी कमी कहाँ है? भैया! असलमें यह बात नहीं है कि कुछ चीज मिली और कुछ न मिली इससे दुःख है। उसके साथ जो अज्ञान लगा हुआ है, जो मोह लगा हुआ है, उसीके कारण उसको आपत्ति है, संकट है। यह आपत्तिका प्रस्फोट रूप है जो लोग परका नाम लेकर कहते हैं कि देखो मुझपर दो लाखका टोटा पड़ गया है, बड़ी आपत्तिहै तो जहाँ मोह है वहाँ आपत्ति है। टोटेवाली विकल्पना मोहका विकसित अर्थ है। विपत्ति परकी परिणतिसे नहीं है। विपत्ति तो भीतरमें मोह विकल्पकी है। सो विपत्ति, मोह, विकल्प ज्ञानसे ही नष्ट होता है। यथार्थ ज्ञान वही है जहाँ आत्माका स्पर्श हो।

तप क्या है? :—विद्या तो तप है। तो जो भी विद्यायें पढ़ी जाती हैं, अणुकी विद्या, बमकी विद्या, संगीतकी विद्या, पी० एच० डी की विद्या, और भी अनेकों जो विद्याएँ हैं वे तो सब तपस्यायें कहलाती होंगी। ऐसी चर्चा आज प्रातः पर्यटनमें श्री प्रो० लक्ष्मीचंद जी एम, एस सी, की चल रही थी। तो उस समय बात करनेमें यह सूझी कि भैया, जिसमें आत्माका स्पर्श सम्भव है वह स्वाध्याय तप है, मगर जो लौकिक विद्यायें हैं उनका मूल्य ऐसा है जैसा कि कोई कंजूस धनी है, लखपती है तो उसके धनका वर्तमानमें कोई फल नहीं है पर धन तो है ही। किसी भी समय उसका भाव मोड़ खा जाय तो चीज तो गाँठमें है, उसका उपयोग कर सकता है। इसी तरह जिसकी ऐसी विद्यायें हैं जिन विद्याओंसे आत्माका स्पर्श नहीं है, आत्मकल्याणकी दृष्टि नहीं है तो वह विद्या कंजूसके धनकी तरह है। पर वह विद्या तो है, किसी भी समय उसका मन मोड़ खा सकता है। कभी भी अपने आत्मस्वरूपकी ओर मोड़ आ सकता है तब वही विद्या आत्मस्पर्शमें सहायक हो जाती है। तप वह है जिसमें आत्मस्पर्श हो, अपने ज्ञानका अनुभव हो, ज्ञानानुभवकी कोशिश हो, ऐसी वृत्तियाँ हों तो वह तप है। और इन वृत्तियोंमें, इन तपस्याओंमें वह महत्त्व है जिनको कि पंडित दौलतराम जी ने लिखा है कि कोटि जन्म तपे तपैं ज्ञान विन कर्म झरें जे ज्ञानीके छिन माँहि त्रिगुप्ति ते सहज टरें ते। ऐसा ही प्रकरण एक जगह प्रवचनसारमें आया है कि अज्ञानीके जितने कर्म कोटि जन्ममें खिरते हैं, अज्ञानीके कर्म तो खिरते ही नही है, याने खिरते हैं और कर्म बंधते हैं सो अज्ञानीके तो निर्जरा कहना नहीं है,

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

नहीं तो कुछ न कुछ निर्जराका अधिकारी अज्ञानी भी बन गया चाहे करोड़वाँ हिस्सा भी निर्जरा हो, उसके सम्बन्धमें आचार्य देवने यह बता दिया है कि अज्ञानीका कर्मनिर्जरण आरोपितसंतान हो जाता है। जैसे कोई मनुष्य कर्जसे लदा है वह अब दूसरी जगहसे कर्ज लेकर पहिलेका कर्ज चुकाता है, तो यद्यपि वह प्रथम व्यक्तिके कर्जसे दूर हुआ है, किन्तु वास्तवमें तो वह कर्जसे ज्योंका त्यों पूरा लदा हुआ है। वहाँ यहाँका और कर्जा जो लिया है उसपर दृष्टि न दो और यों हिसाब लगा लो कि इतने चुकाये इसी प्रकार अज्ञानीके उदय, उदीरणासे कर्म तो खिर गये, किन्तु नवीन कर्मोंके भारसे तो और ज्यादह लद गया। सो नवीन कर्मबंधनपर तो दृष्टि न दो और केवल झड़ेको देखकर हिसाव लगा दो कि अज्ञानीके करोड़ों जन्मोंमें जो कर्म खिर जाते हैं उतने कर्म ज्ञानीके क्षणमें नष्ट हो जाते हैं। ऐसी दृष्टि लेकर बात बन जाती है, पर अज्ञानीके कर्म खिरते नहीं हैं। तो हम आपका हित इसीमें है कि हम अपनेको भीतरमें गुपचुप, कोई दिखानेकी बात नहीं। वस्तु दिख जाय कि यह मैं जाननस्वरूप हुँ। जानन आत्म-प्रदेशोंमें है, ऐसा निर्णय करो और स्वरूपस्वातन्त्र्यकी बात मान कर रहो तो मोह गल जायगा। अगर मोह गल गया तो अपना काम बन गया।

आत्माका असाधारण गुण चैतन्य :—आत्माका स्वरूप चैतन्य ही है, क्योंकि वह चैतन्य आत्माके निजके सारे धर्मोंमें व्यापक है। आत्माका चैतन्यस्वरूप अनादिसे अनंत काल तक निरंतर बना रहने वाला सर्वस्व है। आत्माके विषयमें यदि कोई जानना चाहे कि यह किमात्मक है, किस स्वरूप वाला हैं? तो इसके ज्ञानके लिए जबतक आत्मप्रतिभासकी दृष्टि न आवेगी, तब तक चैतन्य स्वरूपकी दृष्टि न आयगी और जबतक चैतन्य स्वरूपकी दृष्टि न आयेगी तब तक आत्मस्वरूप समझमें नहीं आवेगा। चैतन्य आत्माका असाधारण गुण है। आत्मामें अन्य जितने सामान्य और विशेष धर्म माने गए हैं, अस्तित्व, वस्तुत्व, चरित्र, आनन्द आदि ये सब मानों चैतन्यस्वरूपकी रक्षाके लिए, अस्तित्वके लिए, रहनेके लिए, या सेवाके लिए हैं। इसका अर्थ यह है कि यदि चैतन्यगुण आत्मामें न माना जाय किन्तु और सब धर्म माने जावें आनन्द चरित्र आदि, तो इन सबका क्या मूल्य है। चैतन्य ही आत्माका एक ऐसा असाधारण गुण है, स्वरूप है, जिसके द्वारा यह आत्मा परिणमता रहता है। जो कुछ भी इसमें गुणोंका परिणमन होता है वह चैतन्यात्मक परिणमन होता है। जो कोई भी आत्माका परिणमन हो वह चेतनाका उल्लंघन नही करता। जैसे एक जगह समयसारमें लिखा है कि जहाँ आत्माको ज्ञानस्वरूपके द्वारा लक्ष्यमें लेनेका यत्न कराया है वहाँ सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र क्या है? यह बताया है। जीव आदिक तत्त्वोंके श्रद्धान स्वभावसे ज्ञानके होनेको सम्यग्दर्शन कहते हैं तथा जीवादिक तत्त्वोंके जाननेके स्वभावसे ज्ञानके होनेको ज्ञान कहते हैं। और रागादिकके

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

त्यागस्वभावसे ज्ञानके बननेको सम्यक्चारित्र कहते हैं। याने तीनों ही बातें ज्ञानके परिणमनमें घटाई हैं अर्थात् आत्माके समस्त गुणोंका परिणमन चेतना गुणोंका उल्लंघन न करते हुए चैतन्यस्वरूप ही होता है।

चेतनाके प्रकार व स्वरूप—चेतना तीन प्रकारकी कही गयी है, ज्ञान, कर्म और कर्मफल। ज्ञानपरिणतिका नाम ज्ञानचेतना है, कर्म परिणतिका नाम कर्मचेतना है और कर्मफल परिणतिका नाम कर्मफलचेतना है। वह ज्ञान क्या है, कर्म क्या है और कर्मफल क्या है ? इन तीनोंके स्वरूपको भगवान कुन्दकुन्दाचार्यजी कहते हैं कि,

णाणं अट्ठवियप्पो कम्मं जीवेण जं समारद्धं।
तमणेगविधं भणियं फलंत्ति सोक्खं व दुक्खं वा ॥ १२४ ॥

ज्ञान क्या चीज है ? अर्थका विकल्प। अर्थग्रहण अर्थात् पदार्थका जानना ज्ञान है। और कर्म क्याचीज है ? जीवने जो किया सो कर्म है। कर्मके करनेका जो फल हुआ वह कर्मफल है। यह कर्मफल कारणभेदोंसे नाना प्रकारके हैं। जो अर्थका ग्रहण है वह ज्ञान है अर्थात् स्व और परके विभागसे अवस्थित जो सारा विश्व है वह अर्थ है। उस अर्थके ग्रहणका नाम ज्ञान है, उस अर्थको प्रयोजनवश, "स्वपर विभागसे अवस्थित विश्व" इन शब्दोंमें कहा है।

स्वपर विभागसे विश्वके कथनका आशय—सारा विश्व स्व और परमें आ गया। स्वमें निज चेतना आई परमें अन्य अनन्त सब चेतन व अनंतानन्त समस्त पुद्गल द्रव्य, एक धर्मद्रव्य, एक अधर्म द्रव्य, एक आकाश और असंख्यात काल द्रव्य ; ये सब परमें आगये। तथा विकल्पका अर्थ, अर्थके आकारका अवभासन हुआ। आकारके माने सब कुछ, द्रव्य, गुण, पर्याय है इनका अवभासन हुआ सोई अर्थविकल्प है। इस समस्त विश्वको इस प्रकारके विशेषणसे बतानेका प्रयोजन व अध्यात्मिकशिक्षा यह है कि पदार्थ तो सब अनन्त हैं किन्तु उनमें स्व केवल एक मात्र मैं हूं यह और समस्त पदार्थ सजातीय तथा विजातीय पर हैं, मुझसे अत्यन्त भिन्न है।

दृष्टान्तमें द्रव्यसंग्रहमें जीवमजीवं दव्वं कहनेका प्रयोजन—द्रव्यसंग्रह के मंगलाचरणमें भी लिखा है कि जीवमजीवं दव्वं जिणवरवसहेण जेण णिद्दिट्ठं। जीव और अजीव द्रव्यको जिसे जिनवरवृषभने निर्दिष्ट किया है। पहिले तो यह जो विशेषण दिया गया है, वह क्या प्रयोजन रखता है ? इसपर विचार करो। पहिली बात तो यह है कि द्रव्यसंग्रहका वर्णन करना है सो द्रव्योंको छूता हुआ विशेषण बनाया गया है। दूसरे जिन द्रव्योंका वर्णन करना है उन द्रव्योंके वर्णनमें प्रामाणिकता आवे कि जिनवरवृषभ भगवानने जीव अजीवका व्याख्यान किया इससे इस ग्रंथमें प्रामाणिकता आयी कि उनकी परम्पराका यह वर्णन है। तीसरी बात यह देखो कि

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

जीवमजीवं क्यों कहा ? मुत्तममुत्तं क्यों नहीं कहा ? जहाँ मूर्त और अमूर्तका वर्णन किया है वहाँ मूर्त अमूर्तमें कुछ छूटता है क्या ? उसमेंभी सब आजाता,कोई द्रव्य छूटता नहीं है। तब अन्य कुछ शब्द न रखकर यही बचन रखा कि जीवमजीवं। ऐसा क्यों ? वह इसलिए रखा कि हित करना है जीवको, और जीवका हित है अजीवसे अलग रहनेमें। तो यह दृष्टि भी जल्दी आ जाय इसके लिए जीवमजीवं शब्द दिया है। कोई कहे कि मूर्तामूर्तमें भी यह बात आ जाती है अमूर्त है आत्मा, और उसका हित करना है तो मूर्तसे अपनेको न्यारा समझे। पर यह अमूर्त आत्मा मूर्तसे तो न्यारा है, किन्तु अमूर्तमें तो धर्म, अधर्म आकाश और काल द्रव्य भी हैं, उनसे जीव न्यारा कैसे सिद्ध होगा और जीवाजीव कहनेपर यह जीव सब अजीवोंसे न्यारा है, ऐसा विभक्तपना हो जाता है। इसी कारण वहाँ प्रयोजनवश जीवमजीवं कहा गया है।

प्रकृतमें विश्वकी स्वपरविभागावस्थितता कहनेका प्रयोजन—'जीवमजीवं" की भाँति यहाँ भी प्रयोजनवश स्वपरविभागेन अवस्थितं विश्वं कहा है। यहाँ अर्थका अर्थ करते हुए पूज्यश्री अमृतचंद्रजी सूरि कहते हैं कि अर्थ क्या है। स्वपरविभागेन अवस्थितं सर्वं विश्वं। भावार्थ-स्व में आया यह मैं आत्मा और परमें आए अन्य समस्त अनन्तानन्त जीव तथा उनसे अनन्तानन्तगुणे पुद्गल और धर्म, अधर्म, आकाश, एक-एक तथा असंख्यातकाल द्रव्य। जीवोंमें कौन किससे अधिक है ? सबसे अधिक संसारी जीव हैं। मुक्त जीव तो अनन्त हैं, किन्तु उनसे अनन्त गुणे संसारी जीव हैं। संसारी जीव ४ गतियोंमें हैं, उनमें सबसे कम जीव मनुष्यगतिमें है; उनसे ज्यादह नरकगतिमें हैं, उनसे ज्यादह देवगतिमें हैं, उनसे अधिक तिर्यञ्चगतिमें हैं। तिर्यञ्चगति में भी अधिक जीव एकेन्द्रिय हैं और एकेन्द्रियमें भी सबसे अधिक जीव वनस्पति कायमें हैं और वनस्पतिकायमें भी सबसे अधिक जीव साधारण वनस्पतिकायमें हैं। साधारण वनस्पतिकायिक जीव अनन्तानन्त हैं।

जीवका पौद्गलिक परिवार—इन संसारी जीवोंके साथ एक क्षेत्रावगाह रूपमें कितने पुद्गल द्रव्य एकत्रित हैं ? सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म शरीर निगोदका है। वह शरीर भी अनेक पुद्गल परमाणुवोंका पिंड है। हम आपका तो यह स्थूल शरीर है जो कि बड़ा दीखता है, पर उनका वह शरीर जो अंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण है वह शरीर भी अनन्त पुद्गलपरमाणुवोंका पिंड है। शरीरमें जितने अनन्त पुद्गलपरमाणु हैं उनसे भी अनन्त गुणे कर्मपरमाणु इस आत्माके साथ लगे हैं। देखो भैया, एक जीवके ही कितना पुद्गलपरिवार-प्रपंच लगा है, फिर जो जीवत्यक्त स्कन्ध हैं, जिसे सब देख रहे हैं, भींट हैं, किवाड़ हैं, दरी हैं, ये सब भी अनन्तानन्त पुद्गल परमाणुवोंके पिंड हैं। इस प्रकार कितने पर पदार्थ हैं जगतके अन्दर, उनमें स्व केवल एक निज जीव है और परमें आया अन्य समस्त यह विश्व।

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

निजकी उपेक्षा—देखो भैया, जब स्वकी व्यवस्था तो हम न कर सके और परकी व्यवस्थामें रहे तो फिर बतलावो अपनेलिए शान्ति और सन्तोषका उपाय क्या किया ? वास्तवमें परकी व्यवस्थामें कोई नहीं रहता, परकी व्यवस्था करनेके ही विकल्पमें ये रहते हैं। पर, पर हैं, कदाचित अपने विकल्पोंके अनुकूल किन्हीं पर पदार्थोंका परिणमन भी हो गया तो भी वह परका परिणमन उसके विकल्पोंके कारण नहीं हुआ, उसकी इच्छाके कारण नहीं हुआ। हाँ, वहाँ जो यत्न होगा, उद्यम होगा, कुछ भी होगा उसमें निमित्त कारण विकल्प और इच्छा है।

परिणामकी स्वतन्त्रता—विकल्प और इच्छाने पर पदार्थोंका परिणमन यों कर दिया यह बात नहीं है, वहाँ वह अपने परिणमनसे परिणत हुआ, निमित्तनैमित्तक योग सहज है ही। सो तुम्हारे अनुकूल भी कुछ परिणाम गया तो भी वह तुम्हारी इच्छा के कारण नहीं परिणमा। इच्छा करते-करते भी प्रतिकूल परिणमन परमें होता है अर्थात् पर जैसा परिणमता है, परिणमता है, उसको हम प्रतिकूल समझ लेते हैं। प्रतिकूल और अनुकूल परिणमन कुछ है नहीं। परिणमन तो परिणमन है, उसे जब हम इष्ट समझते हैं तब हम अपनेमें यह भाव रखते हैं कि मेरे अनुकूल परिणाम गया है और जब हम अनिष्ट समझते हैं तो हम यह भाव करते हैं कि यह मेरे प्रतिकूल परिणाम गया है।

पराश्रयकी पृथक्तासे ही अलौकिक आनन्द—अनुकूल परिणमनकी स्थितियाँ कम हैं और प्रतिकूल परिणमनकी स्थितियाँ बहुत अधिक है, जितना जो कुछ हो रहा है उनमें करीब-करीब सभी के ६५ प्रतिशत प्रतिकूल परिणमन होता है। २, ४, ५, प्रतिशत अनुकूल परिणमन होता हैं। यदि हम ५ प्रतिशत परिणमनमें भी इच्छा और भावना जो कि पराश्रयता व पराधीनताके कारण हैं, नहीं करें तो भाई ! ६५ प्रतिशत के समान आपका लगाव इन ५ प्रतिशतोंमें भी न रहनेसे आपके आत्मीय अलौकिक क्षेत्रमें स्वभावकी वृद्धि होनेसे आपको अलौकिक आनन्द प्राप्त होगा।

अलौकिक आनन्दके भोक्ता—इतना साहस प्रत्येक आत्महितैषी महान साधु योगी, संन्यासी जिन्होंने चिरन्तन अभ्याससे अपने इन्द्रिय और मनको साध लिया है, करते हैं। और, वे प्रत्येक स्थितिमें अलौकिक आनन्द प्राप्त करते हैं। पर हम और आप यह विश्वास ही निरन्तर बनाए रहें कि पर पदार्थ चाहे अनुकूल परिणमें चाहे प्रतिकूल परिणमें, उनके स्वतन्त्र परिणमनसे आत्मामें कोई सुधार बिगाड़ नहीं होगा। आत्मसुधार तो आत्मस्थितिसे और आत्मबिगाड़ अनात्मस्थितिसे ही होगा। यह सारा विश्व जो कि स्व और परके रूपमें अवस्थित हैं उनका जो जानन है उसे कहते हैं ज्ञान, और इस ही क्रियाको कहते हैं कर्म और इस क्रियाके फलमें जो

To report error, please contact vikasnd@gmail.comVersion 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

जो आनन्दका परिणमन भोगमें आता है उसे कहते हैं कर्मफल। ज्ञान, कर्म, और कर्मफल इन तीनोंका स्वरूप इस १२४वीं गाथामें लिखा है। इसी का स्पष्टीकरण टीकामें किया जा रहा है।

ज्ञान परिणमन—जैसे दर्पणके हृदयमें, उसके प्रदेशोंमें, पदार्थोंकी झलक होती है, आकारका अवभासन होता है, उसी प्रकार एक साथ प्रतिभासमें आने वाले स्व और परके आकाररूपमें अवस्थित पदार्थोंका प्रतिभास हो, उसे ज्ञान कहते हैं। ज्ञानकी वृत्ति जाननेके लिए दर्पणका उदाहरण दिया जाता है। पर उसका प्रयोजन, अवभासनमात्रसे है। ऐसा नहीं है कि जैसे दर्पणमें पदार्थ प्रतिभासित होता है तो तिखूंटी चौखूंटी वस्तुका जो कुछ आकार है उस रूपसे दर्पणका परिणमन हो जाता है। इस तरहसे जो ये पदार्थ अवस्थित हैं और इनका जो आकार है उन-उन आकाररूपोंसे ज्ञान परिणम जाता है, ऐसी बात नहीं है, क्योंकि पदार्थोंके अवभासन होनेका नाम ही आकारग्रहण है। आकारग्रहणके माने यह नहीं है कि इस आत्म-प्रदेशमें कुछ स्थानोंमें इन लम्बी चौड़ी चीजोंके आकार ज्ञानमें आ गये या झलक गये, क्योंकि पदार्थोंका आकार भी यदि ज्ञानमें झलके तो ज्ञान तो आत्माके असंख्यात प्रदेशोंमें है और यह आकार कितनी जगहमें आया सो बतलावो। उन असंख्यात प्रदेशोंमें यदि सभीमें वे आकार आये तो आकार खतम है। जैसे कि यही चश्माघर है और उसका आकार इतना लम्बा चौड़ा है। यदि आत्माके सब प्रदेशोंमें आए तो इसका आकार वहाँ यह रहा नहीं, क्योंकि वह तो आत्माके सबप्रदेशों में आया। जब सब प्रदेशोंमें आया तो सब प्रदेशोंका जो आकार है उस रूप ग्रहण होगा। यह अर्थका आकार आ जाय यह बात तो नहीं रही। और कहें कि आत्माके प्रदेशोंमें पदार्थोंका सर्वत्र आकारका ग्रहण नहीं है, किन्तु कुछ प्रदेशोंमें है; तो कितने प्रदेशोंमें है और कितने प्रदेश जाननवृत्तिसे छूट गये? सो बतलावो। इसका विचार करनेमें ज्ञानकी सत्य व्यवस्था होती नहीं इसलिए अर्थग्रहणका नाम ज्ञान है। अर्थका जानना है, पदार्थप्रतिभास है, इसको कहते हैं ज्ञान। अब कर्म क्या है और कर्मफल क्या है? आगे बतलावेंगे, और इसमें उसी दृष्टिका वर्णन है कि जैसा कि कल दो बातोंमें पहिली बात को कहा था कि सब अपनेमें घटित होती है, ज्ञान, कर्म और कर्मफल। सभी जीवोंमें तीन चेतना पाई जाती है, आज उन्हीं तीनों चेतनाओंके स्वरूपका वर्णन किया जा रहा है।

ज्ञान, कर्म और कर्मफल चेतना—चेतना तीन प्रकारसे परिणमती है, ज्ञान, कर्म और कर्मफल। ज्ञान हुआ एक साथ प्रकट होने वाला निज और पर पदार्थोंके आकारका अर्थात् स्वरूपका ग्रहण (विकल्प); जितने भी जीव हैं सभी जीवोंमें यह ज्ञानवृत्ति चलती है। कर्म हुआ वह भाव जो आत्माके द्वारा किया जा रहा है। आत्माके

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

द्वारा किया जाने वाला जो भाव है वह आत्मामें ही है, आत्मासे पृथक् नहीं है प्रत्येक क्षण उस-उस भावसे होते हुये आत्माके द्वारा जो भाव होते हैं वे आत्माके द्वारा ही प्राप्य है। अतः कर्म- जो आत्माका परिणमन है वही आत्माका कर्म है।

कर्मके प्रकार व परिणमनका दृष्टान्त—कर्म एक प्रकारका है परिणमन। वह मूलसे तो उठा हुआ एक तरहका है, पर द्रव्यकर्मकी उपाधिका सन्निधान होनेसे और द्रव्यकर्मकी उपाधि न होनेसे वह कर्म भी अनेक प्रकारका बन गया है। जैसे एक मोटी मिसाल ले लें कि इञ्जनका कोई बड़ा चक्र खूब तेजीसे चलरहा है उसका काम एक ही है निरन्तर चलते रहना; पर चलते हुए उस चक्रमें कोई कपड़ा आदि आ जाय, कोई चीज फस जाय तो वह चक्रतो चलता ही रहता है। उस चक्रके साथ वह कपड़ा अथवा मैल भी भ्रमण कर रहा है। मूलमें तो बात वहाँ भ्रमणकी है। उस भ्रमणमें जो उपाधि साथ लग गयी तो उस प्रकारका भी भ्रमण साथ चल रहा है। और भ्रमणका भी जो मूल भ्रमण है वह भी बराबर चल रहा है। फर्क प्रकृतमें इतना ही है कि वह मूल परिवर्तन जुदा नहीं है।

कर्म और कर्मफल—पदार्थमें ६ साधारण गुण होते हैं उनमें द्रव्यत्व नामके गुणके प्रतापसे पदार्थ प्रतिक्षण अपने भावसे परिणमते रहते हैं। जीव और पुद्गल दो प्रकारके पदार्थोंमें विभावशक्ति है, वहाँ जीवको उपाधिकी सन्निद्धि हो तो वह अनेकरूप परिणम जाता हैं। और जीवके विभिन्नरूप परिणमनसे कर्म अनेक प्रकारके बन जाते हैं। अभी साधारण दृष्टिसे एक चीज चल रही थी कि आत्माके द्वारा जो किया जाता है वह कर्म है। आत्माके द्वारा आत्मात्मक परिणति होती है पर द्रव्यकर्मकी उपाधिका सन्निद्धिसे और असन्निधिसे अनेकविधतासे वे कर्म नानाप्रकारके हो जाते हैं फिर उस कर्मका जो निष्पाद्य फल है सुख और दुःख, वह कर्मफल कहलाता है। आनन्द नामक गुणका जो परिणमन है उसे फल कहा गया है। मुक्त जीव है तो उनमें शुद्ध आनन्दरूप, संसारी जीव हैं तो उनमें आनन्दका विकार रूप फल है। वह फल है सुख अथवा दुःख इस तरह जीवमें ज्ञान, कर्म और कर्मफल चलता है। मुक्त जीवोंमें ज्ञान है शुद्ध ज्ञान, कर्म है शुद्ध कर्म याने शुद्ध परिणमन। कर्मफल है शुद्ध कर्मफल। सकल ज्ञेय ज्ञायक तदपि निजानन्द रसलीन, यही उनकी ज्ञान, कर्म और कर्मफल की चेतनारूप परिणति है।

दृष्टिमें अमृत व विष—यह जीव संसारमें जिस-जिस रूप अपनेको जाने उस-उस रूपसे उसकी चेतना है। मिथ्यादर्शनसे अपनेको किसी अन्यरूप जाने, उसकी अन्यरूप चेतना है जिसे अज्ञानचेतना कहते हैं, क्योंकि उसने अपनेको यथार्थ रूपसे चेता नहीं। जैसा कि यथार्थ रूप है उस रूपसे नहीं चेता, मगर वह ज्ञानको ही उस रूपसे चेतरहा है, किसी अन्यको नहीं चेतरहा है। मिथ्यादृष्टि जीव भी किसी

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

बाह्य पदार्थको जानता है, चेतता है, वह भी बाह्य पदार्थोंको नहीं चेतता, किन्तु बाह्य पदार्थोंका जो अवभासन हो, विकल्प हो, उस रूप परिणमता है याने अपने आप की आत्माको चेतरहा है।

व्यवहार—व्यवहार परमार्थका प्रतिपादक होता है। परमार्थसे मर्मवाली बात क्या है उसको बतानेवाला व्यवहार है। सो व्यवहारको परमार्थका प्रतिपादक कहा गया है। इस विषयका समयसारमें जहाँ यह प्रश्न किया है कि व्यवहार परमार्थ का प्रतिपादक कैसे हैं ? तो वहाँ श्रुतकेवलीका दृष्टान्त दिया है।

निश्चयश्रुतकेवली, व्यवहारश्रुतकेवली—निश्चयश्रुतकेवली वह है जो शुद्ध आत्माको जानता है और व्यवहारश्रुतकेवली वह है जो समस्त द्वादशांगको जानता है। इतनी बात सुनकर कुछ लोग यह भी अर्थ लगाने लगे कि एक शुद्ध चैतन्य स्वभावको जानलो तो निश्चयश्रुतकेवली हो गये और जो द्वादशांगको जाने वह व्यवहार श्रुतकेवली है। इस व्याख्यामें निश्चयश्रुतकेवली सरल और व्यवहार श्रुतकेवली अधिक कठिन हो गया, क्योंकि निश्चयश्रुतकेवली होनेमें थोड़ा सा भी बल न लगाना पड़ा। मात्र कल्पनाकी उड़ानसे ही बातकी बातमें बन गया, और व्यवहारश्रुतकेवलीमें ज्ञानावरणके क्षयोपशमका पूर्ण बल लगाना पड़ा। अतः भैया, ऐसी व्याख्या निश्चयश्रुतकेवली और व्यवहारश्रुतकेवलीकी नहीं, उसे समझनेके लिए एक दृष्टान्त लीजिए। कोई मनुष्य घड़ेको जानता है, उसका नाम क्या रखा ? घटज्ञानी। जो घटको जाने वही घटज्ञानी है। घटज्ञानी पुरुष परमार्थसे करता क्या है, अब इस बातको बताना है, तो यह कहा जाता है कि यह घटको जानता है। पर क्या पुरुष दूर पड़े हुए दस पाँच हाथ दूर रखे हुये उस घटपर ज्ञानक्रियाका प्रयोग कररहा है। इस प्रयोगमें ज्ञानकी परिणति क्या घटपर लगी रहती है ? नहीं, किन्तु ज्ञानकी परिणति तो आत्म-प्रदेशोंमें ही लगी रहती है। अतः परमार्थसे घटज्ञानीने क्या किया ? यही तो किया कि जिस प्रकारका घट अवस्थित है उस प्रकारका उसे जानन हुआ जिसे घटाकार-अवभासन नामसे कहा जाता है। और, घटाकारके अवभासनकी परिणतिने अपने आपको जाना, इस वृत्तिमें रहनेवाले पुरुषोंको कहते हैं घटज्ञानी। निश्चयसे घटज्ञानके प्रसंगमें उसने किसको जाना ? उसने एक मात्र घटाकारपरिणत उन-उन विकल्पोंसे परिणत आत्माको जाना। सभी ऐसा कहते हैं कि मात्र आत्माको जानें, इस मात्र शब्दका अर्थ है शुद्ध। शुद्धको जाना याने दूसर पदार्थोंपर प्रयुक्त न हुई, मात्र अपनेपर प्रयुक्त हुई परिणतिसे ऐसे परिणत केवल आत्माको जाना, घटाकारपरिणतिकी बातको हम आप लोगोंको जल्दीमें कैसे बतलावें ? उसके लिए ये शब्द है कि यह घटको जानता है, तो निश्चयसे घटज्ञानी क्या और व्यवहारसे घटज्ञानी क्या ? निश्चयसे घटज्ञानी वह है जो केवल

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

आत्माको जानता है। कैसे आत्माको जानता है ? यह मनमें सोचलो घटाकार परिणत याने घटज्ञान वृत्तिसे परिणत जो आत्मा है उसको जानता है और व्यवहारमें वह थोड़ी दूर पड़े हुए उस घट पदार्थको जानता है।

निश्चयश्रुतकेवलीपना और व्यवहारश्रुतकेवलीपना एक ही जीवमें—इसी तरह से यह निश्चयश्रुतकेवलीपना और व्यवहारश्रुतकेवलीपना ये दोनों बातें एक ही जीवमें घटाई गई हैं, भिन्न-भिन्न दो जीवोंमें नहीं घटाई गई हैं कि निश्चयश्रुत केवली वह है जो मात्र आत्माको अर्थात् शुद्ध चैतन्यस्वरूपको जानता है, किन्तु व्यवहारश्रुतकेवली वह है जो समस्त द्वादशांगोंको जानता है। द्वादशांगमें जो लिखा है, जो शब्द है, जो उनको जानता है उस एक पूर्णश्रुतज्ञानीके बारेमें पूछा गया है कि वह निश्चयसे किसको जानता है ? उसका उत्तर है कि द्वादशांग बचनके आकाररूप परिणत इस तरहकी ज्ञेयाकार परिणतिसे परिणत अपने आत्माको जानता है अर्थात् जो इस शुद्ध अपने आत्माको जानता है वह निश्चयश्रुतकेवली है। उसने क्या जाना ? उसने निश्चयकलाको जाना।

परमार्थसे सबके निजचेतकत्व—भैया, जगतके सभी जीव अपनेको ही चेतते हैं, अपनेको ही जानते हैं। पर कोई इस तरह जानता है कि—"मैं सुखी दुःखी मैं रंक राव, मेरे धन गृह गोधन प्रभाव। मेरे सुत तिय मैं सबल दीन, वे रूप सुभग मूरख प्रवीन ॥" मैं धनवाला हूँ, बच्चोंवाला हूँ, परिवार वाला हूँ जाननेवाला हूँ, इस तरह अपनेको नानारूप जानते हैं पर जानते हैं अपनेको ही। और ज्ञानी पुरुष उसी एक शुद्ध सहज चैतन्य रूपसे अपनेको जानता है। वह ज्ञानी जानता है कि मैं केवल अपने स्वरूपसत्तामात्र हूँ। इस तरह कोई अपनेको यथार्थरूपमें और कोई अयथार्थरूपमें जानता है, पर जानते सभी अपने आपके ज्ञानको हैं। इस कारण ज्ञान चेतना सब जीवोंमें है, और उसकी जो क्रिया है, वृत्ति है वह भी सबमें है, और उस वृत्तिका जो फल होता है वह भी सबमें है। उस कर्मफलमें द्रव्यकर्मकी उपाधिकी सन्निद्धि न होनेसे जो कर्म जीवके होते हैं उनका अर्थात् आत्मपरिणतियोंका फल अनाकुलतारूप सुख है। और द्रव्यकर्मकी सन्निद्धि होनेसे जो कर्म होते हैं, क्रिया होती है, जीवोंमें उसका फल अनाकुलता तो है नहीं, विकृतिभूत दुःख है। इस प्रकार ज्ञानका स्वरूप, कर्मका स्वरूप और कर्मफलके स्वरूपका निश्चय किया गया है।

ज्ञानचेतनासे प्रेरणा—इस प्रकरणसे हमें क्या शिक्षा मिलती है ? यह शिक्षा मिलती है कि जो कुछ हम करते हैं वह अपने आपको करते हैं, और उस अपने आपको करनेका जो फल है वह उसी समय तुरंत हमें मिलता रहता है। अच्छा परिणाम किया तो अच्छा फल, बुरा परिणाम किया तो बुरा फल अर्थात् जिस प्रकारकी भी

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

आकुलता या अनाकुलता जो कुछ भी होती है वह मिलेगा । बुरा परिणाम करनेपर उस ही समय जो विह्वलता, आकुलता हो सो फल मिलेगा ।

वर्तमान और भावी कर्मफल—यह तो आगेकी बात है कि अशुभ भाव हुआ तो कर्मबंध हुआ और आगे उसका फल मिलेगा, यहां यह नहीं कहा जा रहा है। यहाँ तो यह बताया जा रहा है कि जिस समय जो कुछ किया उसी समय उसका फल मिलता है । फलसे लगी हुई ही क्रिया होती है । यह किस फलकी बात कही जा रही है ? उस फलकी कि भाव हुआ और भावके समय जो इसपर गुजरा । गुजरता तो है ही, तुरंत आकुलता गुजरी, निराकुलता गुजरी, यह उसकी वृत्तिका फल है । यह उसका वर्णन परमार्थदृष्टिसे चलरहा है, बाह्यदृष्टिसे नहीं, जैसे कभी कोई पुरुष कसाईका काम किए हुए है, खोटा कामकर रहा है, उसे लोग देखते हैं कि यह मौजमें है, खूब धनी भी है, किन्तु उसपर क्या गुजर रही है कि वह अपने ज्ञानको अज्ञानके रूपमें चेतरहा है, अपनेको नाना रूपोंमें चेतरहा है और वहां जो उसकी क्रिया होरही है वह विकट रागरूप होरही है । उस समयका फल तो उसे श्रम व क्षोभ है ही, उस क्रियाके फलमें उसके भीतर विह्वलता, आकुलता, मार्ग भूलना, बेहोशी है, ऐसा फल मिलरहा है । उस भावका फल धनादि नहीं है या बैभव नहीं है, या मौज नहीं है जैसे कि लोग देखते हैं । उसने अशुभ भाव किया और उस अशुभ भावसे ही उसपर अज्ञानता गुजर रही है, अंधेरा छाया है, मार्ग भूला हुआ है आदि जो स्थिति उसपर गुजर रही है वह विकट है । उसपर इतने संकट हैं कि उसको खबर नहीं रहती कि । हमपर खोटी स्थिति गुजर रही हैं, यह उसका फल है, पर लोग समझते हैं कि वह मौजमें हैं ।

परिणमनका फल, अस्तित्वकी निरन्तरता—हर एक जगह पदार्थ हैं, वे परिणमते हैं और परिणामनका फल पाते हैं । पुद्गलपरिणमनका फल क्या कहा जाय, यह कि उसका सत्त्व रहता है । उनके परिणमनका फल उनका अस्तित्व बना रहना है । उसकी परिणति हो तो अस्तित्व बना रहता है । उनके फलकी विविधता नहीं हो सकती है । यह जीव है, ज्ञानस्वरूप है । उसका जो परिणमन है वह तो है ही यही कि अस्तित्व बना रहता है । परिणमन न किया करे तो बह रहेगा नहीं । सो वह तो फल है ही और इसके साथ चूँकि उसमें ज्ञान है, अनुभव है सो विचित्र रूपसे अपनेको अनुभवता रहता है, सुखरूप, दुःखरूप आनन्दरूप अनुभवता रहता है । इस समय भी यह मैं जीव अपने आपको समझता रहता हूँ कि मैं किस रूप हूँ । जानन वृत्तिके फलमें कुछ दुःखी हूँ, ज्यादा दुःखी हूँ, सुखी हूँ । जो भी अनुभूति हैं, नाना प्रकारकी बातें हमपर हो रही हैं ।

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

वस्तुस्वातन्त्र्यदृष्टिका फल—आत्मा किन्हीं भी बाह्य पदार्थोंका कर्ता नहीं है, केवल अपने स्वरूपके परिणमनका करनेवाला है। उस परिणमनकी विविधतासे ये नानारूप कर्म बन गए और नानारूप कर्मफल बन गया। परन्तु "पर पदार्थ हैं व जैसा परिणमते हैं। उनका परिणमन, जीव पुद्गलका परिणमन जैसी योग्यताका है और परका सन्निधान है वह अपनी परिणतिसे उपादानमें उस प्रकार परिणम जाता है, ऐसी वस्तुकी स्वतन्त्रता देखनेवाले ज्ञानी पुरुष मोहको नहीं प्राप्त होंगे। तथा किसी प्रकारकी उनमें आकुलता नहीं होती।

अब आगेकी गाथामें यह बात बतलाई जावेगी कि आखिर वह ज्ञान, कर्म और कर्मफल क्या न्यारी-न्यारी बात है ? नहीं, वह सब आत्मरूपमें ही है। वह ज्ञान भी आत्मा है, वह कर्म भी आत्मा है और वह कर्मफल भी आत्मा है, इस प्रकारका निश्चय करना है, समझना है। इस ही बातका निश्चय करनेके लिए पूज्य श्री प्रभु कुन्दकुन्ददेव अगली गाथाको अवतरित करते हैं। इसमें युक्तिपूर्वक यह बता रहे हैं कि ज्ञान, कर्म तथा कर्मफल ये तीनों आत्मभावरूपसे ही हैं।

अप्पा परिणामप्पा, परिणामो णाणकम्मफलभावी।
तम्हा णाणं कम्मं फलं च आदा मुणेयव्वो ॥ १२५ ॥

ज्ञान, कर्म और कर्मफलकी आत्मपरिणामात्मकता—इस गाथामें यह बतलाया जा रहा है कि ज्ञान, कर्म और कर्मफल यह आत्मा ही है। आत्मा तो वह है जो यहाँ परिणामात्मक होरहा है, और आत्माका जो परिणमन है वह ज्ञान, कर्म और कर्मफल इन तीनों रूपोंमें होता है। तभी तो कर्मफलमें आनन्द गुणकी पर्यायें आईं, कर्ममें अन्य सब परिणमन आए। अन्य सब परिणमन ज्ञानात्मक है, इसलिए ज्ञान परिणमन हुआ। अथवा कर्ममें आया ज्ञानपरिणमन और कर्मफलमें आया आनन्दपरिणमन। और, ये दोनों प्रकारके परिणमन आत्मामें हैं इस कारण परिणामात्मक जो आत्मा है वह है ज्ञान रूप। इस कथनसे ज्ञान, कर्म और कर्मफल आत्मा ही जानना चाहिए। आत्मा परिणामात्मक ही है क्योंकि आत्मा परिणामस्वरूप है, ऐसा पहिले कहा गया है। अर्थात् आत्माका जो परिणमन है वह अनात्मा नहीं है। जैसे यह अंगुली है उसे टेढ़ी सीधी कैसी भी की जाय तो वह अंगुली ही तो है। अंगुलीसे अन्य किसीरूप तो नहीं है। इसी प्रकार जितने भी परिणाम हैं वे सब परिणाम आत्मा ही तो हैं, ऐसा पहिले बताया है और आत्माका जो परिणमन है वह चैतन्यात्मक है, क्योंकि वह चैतन्य तत्त्व है। तो उसका जो परिणमन होगा वह चैतन्यात्मक होगा। सो चैतन्यात्मक होनेके कारण एक परिणाम तो हुआ ज्ञान, और

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

एक परिणामस्वरूप कर्म है तथा परिणामका कर्मफल भी है, वह सब चैतन्यात्मक ही होता है। इससे यह सिद्ध है कि ज्ञान, कर्म और कर्मफल आत्मा ही है।

शुद्ध द्रव्य—शुद्ध शब्दका अर्थ है केवल एक द्रव्य। द्रव्यदृष्टिमें शुद्ध शब्दसे प्रयोजन केवल एक वस्तुमात्रसे है। वस्तुमात्रमें वस्तुका परिणमन दृष्ट नहीं है, आत्माका परिणमन चाहे रागरूप हो, चाहे बिरागरूप हो, चाहे निर्मल हो, चाहे मलीन हो, वहाँ तो शुद्ध दृष्टिमें वस्तुमात्रका अवलोकन है। इसमें अन्य वस्तुका तिलतुष मात्र सम्पर्क नहीं है। शुद्ध दृष्टिका मतलब बीतराग या निर्मल पर्यायसे नहीं है, वरन् मात्र एक केवल वस्तुसे है। शुद्ध द्रव्यके निरूपण करनेमें पर द्रव्यका सम्पर्क तो देखा ही नहीं जाता है, केवल एक द्रव्यके देखनेतक शुद्ध द्रव्यका देखना कहा जाता है। इस देखनेमें चाहे वह आत्मा रागात्मक दृष्ट हो, चाहे बिरागात्मक दृष्ट हो, किन्तु इस दृष्टिमें भिन्न द्रव्यका सम्पर्क न आवे ऐसी दृष्टि शुद्ध दृष्टि कहलाती है और उच्च शुद्ध दृष्टि वह दृष्टि है जिसमें अवलोकित शुद्ध द्रव्यमें उसकी पर्यायकी दृष्टि न हो अर्थात् पर्याय भी अन्तः प्रलीन हो जाय।

शुद्धदृष्टि व परम शुद्ध दृष्टि—आगे एक शुद्ध दृष्टि वह है जिसे हम दो शब्दों में कह सकते हैं, शुद्धदृष्टि और परमशुद्धदृष्टि। शुद्धदृष्टिके दो भेद हैं, (१) शुद्ध निश्चयनयदृष्टि और (२) अशुद्धनिश्चयनयदृष्टि। शुद्ध निश्चयनयदृष्टिमें तो शुद्धपर्याय परिणत वस्तु ज्ञात होती है। और अशुद्धनिश्चयनयकी दृष्टिमें अशुद्धपर्यायपरिणत वस्तु ज्ञात होती है इस दृष्टिके आगे यत्न होनेपर परमशुद्ध निश्चयनय दृष्टिका प्रारम्भ होता है तब यहाँ पर्याय बिलीन हो चुकती है, वहाँ तो अनादि अनन्त एक स्वभाव अवगत होता है। इस प्रकार शुद्ध द्रव्यके निरूपणमें आत्मा शुद्धद्रव्यमय आत्मा ठहराता है। यहाँ शुद्ध दृष्टि एक द्रव्यमें उसी एक द्रव्यको दिखाती है और दूसरे द्रव्यको व समस्त परिणतियोंको भुला देती है।

शुद्ध दृष्टिका प्रताप—शुद्ध दृष्टिके प्रतापसे परस्परके सम्बन्धका उपयोग नहीं रहता। निमित्तनैमित्तिक भावोंका भी उपयोग नहीं रहता, परदृष्टि नहीं रहती। ऐसी स्थितिमें, जब परदृष्टि न रहे तो रागादिककी वृत्ति तो परका आश्रय बना कर ही हुआ करती है। इस शुद्ध द्रव्यदृष्टिमें परका आश्रय नहीं बनाया और परका आश्रय न बनानेसे रागादिक भावोंकी हीनता होने लगती है। इस तरह शुद्धद्रव्यके निरूपणमें, उपयोगमें शुद्ध द्रव्य आत्मा ही ठहरनेसे कल्याणकी प्राप्ति होती है।

अशुद्ध द्रव्यदृष्टि या व्यवहारदृष्टि—अब अशुद्ध द्रव्यका निरूपण कर रहे हैं। अशुद्ध दृष्टिके माने व्यवहार दृष्टि है और शुद्ध दृष्टिके माने निश्चय दृष्टि है। जैसे शुद्ध दृष्टिका अर्थ दो तरहसे होता है, वैसे ही अशुद्ध दृष्टिका भी अर्थ दो तरहसे

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

होता है। एक तो यह है कि अशुद्ध परका सम्बन्ध देखना, अमुकका निमित्त पाकर इसमें यह हुआ अथवा अमुकका संयोग है, इन सब बातोंका देखना अशुद्ध दृष्टि है। यहाँ अशुद्धका अर्थ है अकेवल अर्थात् केवल एक न देखना किन्तु दो वस्तुकी बातोंको देखना। परस्परमें निमित्तनैमित्तिक भाव गलत नहीं है। है, पर दो द्रव्योंका सम्बन्ध बताना ही अशुद्ध दृष्टि है। वह केवलका निरूपण नहीं हैं, केवलका निरूपण शुद्ध निरूपण है और दो और दो के सम्बन्धका निरूपण अशुद्ध निरूपण हैं। व्यवहारमें व्यवहारका विषय गलत नहीं है किन्तु आत्माके कल्याणके लिए जो विशेष प्रगति होती है, विशेष तैयारी चलती है इसमें व्यवहारदृष्टि, व्यावहारिकता दो से सम्बन्ध-होनेके कारण बाधक बनती है। इस कारण अध्यात्मसाधनामें निश्चयदृष्टिसे परमार्थका अवलम्बन करना बताया गया है। विज्ञानसिद्ध बात यह सब कैसी है ऐसा बतानेमें व्यवहारदृष्टि समर्थ है।

व्यवहारमें निश्चय दृष्टि—यह कैसे होता यह विवरण करना व्यवहार है। इस दृष्टिमें भी परको पर और निज को निज देखना अर्थात् वस्तु जैसी है वैसी ही है और उसका परिणमन जैसा है वैसा ही है, याने पर वस्तु अपने ही स्वरूपमें है और अपने ही स्वरूपमें परिणमती है। "है" और परिणमना यह सब पदार्थोंमें दृष्ट आ रहा है। कोई किसीको अपना द्रव्य गुण, पर्याय नहीं देता, न कोई अपने अगुरुलघुत्व गुणका उल्लंघन करता ऐसी स्थिति समझना वही निश्चय दृष्टिकी बात है।

निश्चयकी शाब्दिक व्याख्या—निश्चय शब्दका अर्थ है, निश्क्रान्तः चयः यस्मात् स निश्चयः जिसका संचय नहीं है अर्थात् केवल एक पदार्थकी दृष्टि है। उसको निश्चय कहते हैं। व्यवहार दो प्रकारसे होता है—एक जोड़से और दूसरा तोड़से। केवल अपने-अपने स्वरूपमें अपने-अपने सत्त्वको लिए हुए पदार्थोंमें किसी पर तत्त्वका जोड़ करना सो व्यवहार है। और पदार्थका स्वरूप समझानेके लिए गुणभेद करके अखण्ड वस्तुको तोड़ना, भेद करना, खण्ड करना, सो भी व्यवहार है। जैसे आत्मा कर्मबद्ध है, यह जोड़ चल रहा है। कर्मसे बँधा है, रागादिक परभावोंसे मलीन है, यह सब जोड़ है। किन्तु आत्मा ज्ञानगुणवाला है आत्मा दर्शनगुणवाला है, चरित्रगुणवाला है, उसमें आनन्दकी शक्ति है। ऐसी उन शक्तियोंको बताना, अन्य शब्दोंमें उस अखंड पदार्थको पृथक्-पृथक् कर देना याने तोड़ देना सो व्यवहार है। इस प्रकार त्रुटित रूपमें वह सत् हुआ क्या ? भैया, ऐसा नहीं है। लेकिन समझनेके लिए जो जो उनमें बात देखी गई है उनको बताना यह तोड़ रूप व्यवहार हुआ। व्यवहार तोड़रूप और जोड़रूप दो प्रकारसे होता है। जिस आत्मामें राग नहीं है, कर्म नहीं है, शरीर नहीं है, यह बताना जोड़रूप व्यवहारका निषेध है और

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

आत्मामें दर्शन नहीं, ज्ञान नहीं, चरित्र नहीं, इस प्रकारका निषेध करना तोड़रूप व्यवहारका निषेध है। और स्वयं जैसा है वैसा ही देखना सो निश्चय है।

समयसारमें शुद्ध आत्माकी विवेचनागर्भित कथनशैली-सदृष्टान्त—जैसा कि समयसारमें एक गाथामें आया है कि शुद्ध आत्मा क्या है? तो वहां बतलाया है कि णवि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो जाणओ दु जो भावो। एवं भणंति सुद्धं णाओ जोसोउ सो चेव। आत्मा न प्रमत्त है न अप्रमत्त। अप्रमत्त बताना तो अच्छी बात थी। उसका भी क्यों निषेध किया? आत्मा न कषायसहित है और न कषायरहित है। कषायरहित बताना तो अच्छी बात थी, उसका निषेध क्यों किया? समाधान-वहां निश्चयसे आत्मा कैसा है? यह बताना है। आत्मा कषायसहित तो है नहीं। कषाय तो जीवका स्वरूप नहीं और कषायरहित यह भी जीवका स्वरूप नहीं। जीवका स्वरूप तो विध्यात्मक है, ज्ञाता, ज्ञानमय, ज्ञानमात्र, है। कषायरहित कहने में पहले कषायकी स्वीकारता होगी, पीछे उसका रहित बना विषय, सो कषायरहित यह बात आ गई पर निश्चयसे आत्माका स्वरूप कैसा है? अनादिसे अनन्त कालतक वह शुद्ध ज्ञानमात्र है। अपनी केवल ज्ञानवृत्तिको लिए आत्मतत्त्व है, वह न कषायसहित है, और न कषायरहित है। जैसे कि एक पुरुषको कहा जाय कि भैया, १० बजे रात्रिको तुम अमुक गांवको चले जावो। बोला अच्छी बात है। "देखो, जावो और यहांसे तीन मीलकी दूरीपर एक बटका पेड़ मिलता है तो लोग अफवाह ऐसी कहते हैं कि उस पेड़पर भूत रहता है, मगर भूत बूत नहीं है' निडर होकर चले जाना। अरे निडर होकर भेजना था तो यह चर्चा क्यों सुनादी? वह पेड़के पास पहुँचता है सो स्मरण करता है कि यहां भूत नहीं है। तो भैया, जबानपर व मनमें भूत तो ला ही लिया कहता जा रहा है कि यहां भूत तो नहीं है, उसको शंका हो गई, डर हो गया। कदाचित् इतना ही कह देते कि तुम चले जावो, और कुछ न कहते तो ठीक था, पर यह कह दिया कि तीन मीलपर वृक्ष है उसमें भूत नहीं है। सो भूतका स्मरण करके वह डर गया, नहीं तो वह निःशंक होकर चला जाता।

गर्भित कथनका द्वितीय दृष्टान्त—अभी किसीको कहा जाय कि तुम्हारे पिता तो जेलसे मुक्त हैं, तो तुम्हीं यह बतलाओ कि गाली हुई कि नहीं हुई? गाली हो गई। भाई! जेलसे छूटा ही तो कहा, वह गाली कैसे बन गयी? अरे उसका अर्थ तो यह हो गया कि वह जेलमें था और वहाँ से छूट गया। अरे वह जेल में था ही कहाँ? इसी प्रकार कषायरहित कहनेमें भी आत्माका सहजस्वरूप नहीं आया। किसी भी तरह जोड़ तोड़में रहना व्यवहार है। केवल पदार्थ तो असाधारण गुणमय है, मात्र असाधारण गुणकी निगाहसे देखें सो उसमें निश्चयदृष्टि है। इस निश्चय-दृष्टिके प्रतापसे आत्मामें मोह नहीं रहता।

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

यथार्थ ज्ञानकी महिमा—जब ज्ञान ठीक बनाएँ, प्रमाणात्मक निश्चय व्यवहारका यथावत् ज्ञान करें और ज्ञान करके फिर निश्चय दृष्टिका अवलोकन लें, अर्थात् केवल द्रव्यका अवलम्बन लें तो वहां उसकी सिद्धि होती है अर्थात् निर्मोहता प्रकट होती है। मोहके बिनाशके लिये यह शुद्ध तत्त्व दृष्टि प्रबल साधन है। अहो, कितने व्यवहारमें यह जीव आज तक फसा रहा? जिस फसावमें है यह, वह काल्पनिक है। कल्पनाजन्य तो है पर काल्पनिक नहीं है। अभी यह कहा जाय कि आपका निमंत्रण है और देखो हमारी सामर्थ्य अधिक नहीं है, सिर्फ आपका ही निमंत्रण है, १० बजे आजाना। वह १० बजे पहुँच जाता है। निमन्त्रणकर्ता बोलाकि हमने तो केवल आपका निमन्त्रण किया था आप अकेले क्यों नहीं आए। वह कहे कि वाह अकेले ही तो आए। तो वह कह सकता कि कहां आये? अकेले? यहां यह पिंडोला साथमें क्यों लाए? अर्थात् यह शरीर साथमें क्यों लाए? अब क्या करे, शरीर कहाँ छोड़ दे, कैसे छोड़ दे। बँधा है यह शरीरसे, फिरभी स्वरूप देखो तो यह जुदा ही है।

दृष्टिमें बन्धन मुक्ति—क्या यह आत्मा शरीरसे बँधा नहीं? क्या अलग है? बँधा हुआ है, छुवा हुआ है तिसपर भी आत्मद्रव्यका अस्तित्व तो देखो। क्या? कि आत्माका इस पुद्गलसे अस्तित्व मिल गया, एक हो गया? अगर एक है तो फिर अलग कभी हो ही नहीं सकता है। अलग वही हुआ करता है जो पहिलेसे भी अलग सत्त्व रखता हो, किन्हीं स्थितियोंसे मिला भी हो पर परमार्थसे अलग हो, वही अलग हो सकता है। तो जब निश्चयदृष्टिकी स्थिति हो तो वहां द्रव्य न बँधा है, न छुवा है, और न यह नानारूप है, न यहाँ घटबढ़ होता है, न इसमें कोई प्रकारका परभाव है, न विभाव है। उस बृत्तिमें तो केवल असाधारण गुणका विधान है। कभी आत्म-तत्त्वको लक्ष्यमें लेनेके लिए यह कहा जाता है कि जो सब पर्यायोंमें गत है, व्यापक है, अपने सब पर्यायोंमें व्यापक है वह आत्मा है; यह दृष्टि अब भी विस्तारवादी है, व्यवहारको लिए हुए है याने जिसे कहते हैं सामान्यस्वरूप आत्मा वह सामान्यस्वरूप कहनेमें सामान्य है मगर विस्तारवादको लिए हुए है। उसको यदि यों कहें कि आत्मा चैतन्यात्मक है, चित्स्वरूप है, असाधारणज्ञानात्मक है सो यद्यपि अन्य सब पदार्थोंसे भेद कर देनेके कारण विशेषात्मक है फिर भी विस्तारको लिए हुए नहीं है। यह केवल विध्यात्मक दृष्टि कराता है तो विध्यात्मक दृष्टि करानेवाला यह निश्चयनय है। जो है स्वयं है, स्वरूपरूप है निज प्राणस्वरूप है, जिसके अतिरिक्त वह द्रव्य कुछ नहीं है; ऐसे असाधारण गुणमय आत्मतत्त्वकी दृष्टि हो सो परमशुद्धनिश्चयकी दृष्टि है। इसके अतिरिक्त अन्य कुछ-कुछ कहना, जोड़की बात, तोड़की बात कहना, वह सब व्यवहार है। शुद्ध दृष्टिके निरूपणमें पर द्रव्यका सम्पर्क असम्भव है। यही शुद्ध-दृष्टिका चमत्कार है कि इसकी दृष्टिमें वह केवल एक है, द्वैत नहीं है। पदार्थके पास

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

क्या कुछ नहीं है, पर इस दृष्टिने केवल उसको ही ग्रहण किया। जैसे हड्डीकी फोटो लेनेवाला यन्त्र है। तख्तपर उस व्यक्तिको लिटा देते हैं, जिस व्यक्तिकी हड्डीकी फोटो ली जाती है वह व्यक्ति कपड़े भी पहिने है, उसके नीचे चमड़ा है, उसके नीचे मांस है, चर्बी है, पर वह यन्त्र उन सबको पार करके उनको न छूकर, उनको न ग्रहण कर केवल हड्डीकी फोटो ले लेता है। इसी तरह यह शुद्धनयकी दृष्टि शरीरको पार कर, कर्मोंको पार कर रागात्मक विभावोंको पार कर और इसकी जो परिणतियां होती है, उनको भी पारकर एक अनादि अनन्त अहेतुक असाधारणस्वभावको ग्रहण करती है। ऐसी एकत्वकी दृष्टिकी जिनके दृष्टि होती है ऐसे पुरुष धन्य हैं, वे मोक्षके मार्गको शीघ्र पा लेते हैं। इस गाथामें यह मर्म एकत्वकी दृष्टिसे देखा कि ज्ञान, कर्म और कर्मफल ये आत्मामें ही है। इसलिए इनका इसमें निश्चय किया गया है।

आत्माको शुद्ध दृष्टिसे देखकर यह कहा गया था कि आत्मा ही ज्ञान है, आत्मा ही कर्म है, और आत्मा ही कर्मफल है। इस प्रकार इस ज्ञेय तत्त्वमें आत्मामें स्वतंत्र दृष्टिसे उसे उसके ही स्वभावरूप स्वीकार किया है इस तरहकी शुद्धताके निश्चय होनेपर ज्ञानतत्त्वकी सिद्धि होती है। उसका स्तवन करते हुए अब द्रव्यके सामान्य वर्णनका उपसंहार करते हैं।

कत्ता करणं कम्मं फलं च अप्पत्ति णिच्छिदो समणो।
परिणमदि णेव अण्णं जदि अप्पाणं लहदि सुद्धं ॥१२६॥

आत्मतत्त्वकी प्राप्तिका अधिकारी—कर्ता, कर्म, करण और कर्मफल यह सब आत्मा ही है, ऐसा जो निश्चय करता है और अन्य द्रव्यरूप नहीं परिणमता है सो पर द्रव्यके सम्बन्धकी दृष्टि शान्त होजानेके कारण वह ऐसी शुद्ध आत्माको पा लेता है जिस आत्मामें पर्याय भी प्रलीन हो गई है अर्थात् पर्याय-तरंगकी जिसकी दृष्टि नहीं है, केवल एक ध्रुव स्वभाव आत्मा ही दिखती है ऐसे आत्मतत्त्वको वही प्राप्त कर सकता है जो शुद्धदृष्टिसे आत्माओंको देखता है।

चारित्र क्या है ?—यह सब ज्ञान चारित्रकी जड़ है। कषाय न करना यही चारित्र है क्रोध,मान,माया, लोभ इन कषायोंको त्यागो.क्रोध मत करो, घमंड न करो, मायाचार न करो और लोभ न करो। जिसे कहते हैं व्यवहार चारित्र, खानपानकी शुद्धता आदि सभी लोभ न करनेमें सामिल हो गयी। खानेका लोभ न करना, जैसा मिले जो मिले उसमें ही संतोष माने। चाहे पर जीवोंकी हिंसा हो पर अपनेको स्वाद आवे और आशक्तिसे खावे, जो चाहे वह वस्तु खावे, ऐसा न करो। ऐसा करना महान् लोभ है। चारित्रके लिये लोभको त्यागना पड़ता है। ये पद्धतियां अपनी हैं, रात्रिमें न खाना, मर्यादित भोजन करना, यह सब अलोभको सिद्ध करता है। सो

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

लोभक न करो, यह असली रूपमें कब बन पाता है ? जब कि लोभजन्य प्रवृत्तियोंमें उमंग न रहे। जब कषायके करनेकी उमंग न रहे तो कषायोंका छोड़ना बन जायगा।

सहज स्वरूपके ज्ञानकी प्रेरणा—कषायोंके करनेकी उत्सुकता न रहे, इसका उपाय है वस्तुत्वका सम्यग्ज्ञान। जब यह पता पड़ेगा कि क्या रखा है कषायमें ; क्रोध, मान आदिक करनेमें कोई हित नहीं है, इस तरहकी लोभकी प्रवृत्ति में अपना अहित मालूम पड़ेगा तो उनसे हटाव हो जायगा। विषय कषाय असार है, यह मालूम पड़े तब सारभूत चीज मालूम पड़े। यह जगत असार है, यहाँ असार-असार सभी कहते हैं पर कुछ सार भी है क्या ? सार जो है वह अपने आपमें अपना सहज स्वरूप ही है। जबतक इस सारका पता न पड़े तबतक इसकी असारता का ज्ञान पक्का न समझो, ऊपरी या रूढिवश ज्ञान समझो।

असारके साथ सारके तथा अनित्यके साथ नित्यके ज्ञानकी आवश्यकता—असार-असार तो कहते जायें पर टिकनेकी चीज जबतक न मिले तबतक इससे हटें कैसे ? जैसे पदार्थोंको अनित्य कहते हैं, सब अनित्य है, बिनाशीक है, नष्ट हो जाने वाले हैं, किन्तु, जबतक नित्यका पता न पड़े कि आखिर नित्य क्या है तबतक तक अनित्यताको कहना केवल कहना ही कहना हुआ। अनित्यका पूरा प्रमाण नहीं होता। ये सब दिखनेवाले अनित्य हैं पर नित्य क्या है ? वही आत्मद्रव्य, पुद्गल द्रव्य, परमाणु आदि। अब पता पड़ा कि यह तो परिणमन है, जो अवस्था है,जो नाना प्रकारके रूपोंमें आता है, यह सब अनित्य है, जब नित्यका पता पड़ता है तब अनित्यका सही पता होता है। ये सब अशरण हैं, धन, वैभव, पुत्र, मित्र सब अशरण हैं, कोई शरण नहीं हैं,ऐसा सब कहते हैं पर इस अशरणताका पक्का पता उन्हें है जिन्हें अपना शरण भी मालूम है। अपना शरण कौन है ? अपने आपमें अपने स्वरूपका प्रत्यय, उसकी दृष्टि, उसका आलम्बन, ये सारभूत हैं। इस शरणका पता होनेपर अब साफ-साफ समझमें आया कि पुत्र, मित्र, परिवार ये सब समागम अपने अशरण हैं। तो जब तक सारका पता न पड़े तब तक असारका त्याग होना कठिन है।

गुस्साका त्याग कब ?—जैसे मुझे कभी-कभी कोई यह कहने लगते हैं कि यह हमारा लड़का गुस्सैल बहुत है, आप इसकी गुस्साका त्यागका नियम दिलवादें कि यह कभी गुस्सा न करे तो हम क्या कहें कि भाई ! तू गुस्साके त्यागका नियम ले ले। तू गुस्सा न किया कर। ठीक है, दिला दिया नियम। निभ जायगा क्या ? अरे ! यह नियम नहीं बन सकता है। गुस्सा एक भावात्मक चीज है, वह भावात्मक रूपसे जब होना होता है तब होता है। गुस्सा ऐसी चीज है कि इसको कहें कि बाहर रख दो, तो क्या बाहर रख दिया जायगा। गुस्सेके त्यागका नियम कैसे निभ

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

सकता है? हाँ और बात थोड़ी बहुत निभ सकतीहैकि भैया तुम्हें गुस्सा आए तो मुँहमें पानी भरकर बैठ जावो आदि, पर आप नियम ले लें कि गुस्सा न किया करें तो यह नहीं निभ सकता है। गुस्सेके त्यागका नियम यह है कि जो क्षमाशील है, ऐसा जो अपने आपका परमात्मतत्त्व है इसका आलम्बन करे, सोई गुस्सा त्याग करनेका नियम है। तो जितना भी अचारित्र है उसका उपाय क्या है? चरित्रका मूल उपाय है सम्यग्ज्ञान। सम्यग्ज्ञानके प्रसंगमें यहाँ चरित्रका स्वरूप कह रहे हैं।

स्वमें कर्त्ता कर्मके दृष्टान्त—ज्ञानी पुरुष अपने आपको ही कर्त्ता, कर्म, करण और कर्मफल मानता है। जैसे यह एक अंगुली है, इसको मरोड़ दो, यों टेढ़ी करलो तो अंगुलीको किसने टेढ़ी किया? अंगुलीने। और इस अंगुलीने किसको टेढ़ी किया? अंगुलीको। और उस अंगुलीने किसके द्वारा अंगुलीको टेढ़ी किया? अंगुलीके द्वारा। और फल किसको मिला? अंगुलीको। जिससे यह यों प्रदेश बन गया।

सांप गुड़ेरी खा कर बैठ जाता है,ऐसी जो कुण्डली रूपमें जो होगया है वह कौन हो गया? सांप! सांपने कुण्डलीरूप किसको किया? अपनेको। किसके द्वारा किया? अपने द्वारा किया। फल किसको मिला! अपनेको, खुदको। उसकी कुछ भी चीज परिणमती है तो उसीमें परिणमेगी। जो भी पुस्तक चौकी वगैरह कुछ परिणमें, बदले, वह उससे ही बदलेगी। और किसके द्वारा बदलेगी? उसके ही द्वारा बदलेगी। दूसरेको परिणतिके साधनके द्वारा अन्य दूसरा नहीं बदलता। साधकतम दूसरा बना हो, सो नहीं। विभाव परिणतिमें पर पदार्थ निमित्त मात्र हैं पर साधकतम नहीं है। परमार्थदृष्टिसे वस्तुस्वरूपको देखनेकी बात कही जा रही है। जैसा बदल गया, जैसा रह गया जिस रूपमें सत है उस रूपमें उसे विचारें।

अशुद्धताके परिणमनका स्वरूप—यह आत्मा अशुद्धावस्थामें कैसा हो रहा है? आत्मवृत्ति रंजित हो रही है, रंगीली हो रही है। कषाय आदिक परिणामोंसे म्लान हो रही है। सो वह किस प्रकार हो रही है? वैज्ञानिकता क्या है कि अनादिकालसे चला आ रहा जो पौद्गलिक कर्मका बन्धन वह तो उपाधि है। उस उपाधिकी सन्निद्धिमें उस विषयको निमित्तमात्र पाकर रागादिक भाव आत्मामें दौड़ रहे हैं, प्रधावित हैं। प्रधावित शब्द यहाँ बहुत उपयुक्त दिया गया है। जैसे एक ऐना है, दर्पण है, उस दर्पणके सामने जो वस्तु आ गयी उस आकारमें दर्पणमें छाया प्रधावित हो गई, एकदम दौड़ गई। कहां से आ गई? और फिर कहाँ विलीन हो गई। कहां से निकल गई? सान्निध्यमें उपाधि हुई और तुरन्त आ गई छाया। वहाँ समय भेद नहीं है। इस प्रकार आत्मामें कषाय भाव, विभाव, उपराग प्रधावित हो जाते हैं, आ जाते हैं, उससे आत्मा मलिन हो रही है। जैसे स्फटिकके सामने जो भी चीज रख दी जाय, सन्निद्धिमें हो तो उस स्फटिकमें रंग, छाया वगैरह प्रभावित

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

हो जाते हैं। इसी प्रकार पर पदार्थोंका निमित्त पाकर उसमें विकार आया है, ऐसी विकृत अवस्थामें भी जब मैं संसारी था, मोही था उस समय भी मेरा कर्ता कोई दूसरा नहीं था। जो उस तरह का रंगीन बना, म्लान बना, इस वृत्तिमें आया उस समय भी मेरा कोई दूसरा नहीं था। मैं ही केवल अपनी खुदकी परिणतिसे अपने उपरक्त चित्स्वभावका मैं ही स्वयं कर्ता था।

जीव प्रत्येक दशामें स्वयं परिणतिका कर्ता—यद्यपि वैज्ञानिकतामें ये सब बातें युक्तिसिद्ध हैं कि उपाधिकी सन्निद्धि बिना विकार नहीं हो सकता है। विकार उपाधि का निमित्त पाकर ही होता है। तब भी विकारयुक्त आत्माको देखो कि वह केवल अपने अस्तित्वमें ही विकार कर पाया या अन्यमें या अन्य के आत्मा में? उस उपाधि के समय अपने ही चतुष्टयसे अपनेमें वह विकार कर पाया। परमें कुछ न कर सका। कैसा सहज निमित्तनैमित्तिकयोग है कि निमित्तनैमित्तिक भाव होकर भी परस्परमें कर्ता कर्म भाव रंच भी नहीं है। तो ऐसा परारोपित, विकारवान मैं था, उस समय भी मेरा कोई नहीं था। मैं एक अकेला ही उस समय उस परिणतिका कर्ता था और इस तरहकी परिणति क्रियाका परिणाम आ गया, ऐसी स्थितिमें यह परिणति क्रिया भी मेरी ही थी, दूसरेकी क्रिया नहीं थी। साधकतमा करण भी मैं ही था दूसरा अन्य कोई पदार्थ नहीं था।

विकल्प ही दुःख—एक बहुत ही मोटा दृष्टान्त ले लो। दो लड़के बहुत दूर-दूर खड़े हैं, बीस-बीस हाथके फासले पर। एक लड़का अपनी जीभ मटकाता है तो दूसरा लड़का झट, जिसे कहते हैं चिढ़ जाता, बीस हाथ दूर खड़ा हुआ चिढ़ जाता है, दुःखी होता है। तो यहाँ बतलाओ कि बीस हाथ दूर खड़े लड़केने जो अपनेमें दुःख पैदा किया उस दुःखको करने वाला कौन हैं वह स्वयं ही तो है दूसरा जो खड़ा है उसकी क्रियाको इसने विकल्पोंमें लिया और विकल्प बनाकर अपने ही आपके दुःखका कर्ता बन रहा। ऐसा दुःख किसके द्वारा किया गया? उस दूसरे लड़केके हाथके द्वारा किया क्या? अपने द्वारा ही वह दुःख स्वरूप पर्याय किया, दूसरे लड़के की जिह्वाके द्वारा किया क्या? उसने दुःख अपनेमें अपने लिए अपने ही द्वारा किया, अज्ञान द्वारा, विकल्प द्वारा किया। उस दूसरे लड़केने दुःख किया क्या? नहीं। उस दुःखी होनेवाले लड़केको मिला क्या, कोई दूसरी वस्तु मिली? उसे मिला अपना ही एक परिणमन, वही रंगीन स्थिति। उस स्वभावके द्वारा आत्माको जो प्राप्य हुआ, यही हुआ कर्म। जैसे कि उस चिढ़ने वाले लड़केने क्या किया? अपना ही क्लेश, अपना ही क्षोभ। और क्या हाथ आया? कुछ नहीं। इसी प्रकार जब यह संसारी था और इस प्रकार विभावोंके रूप परिणम रहा था उस समय उसे मिला क्या था? उसने पाया क्या था? किया किसको था? उस ही अपनी परिणतिको

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

और हो गया वह परिणमन, पर उस परिणमनके फलमें क्या हाथमें आया था? उस विभाव परिणमनका फल क्या था? कभी सुख, कभी दुःख। इसके सिवाय और हाथमें नहीं आया। उस चिढ़नेवाले लड़केको फल क्या मिल रहा है? क्षुब्ध हो रहा है। संक्लिष्ट हो रहा है, दुःखी हो रहा है। तो पर पदार्थ अपना ही कर्ता है, अपने ही काममें खुद ही करण हैं, अपने ही प्राप्य रूप खुद ही कर्म है और उस क्रियाका फल भी स्वयं आप हैं, दूसरा कोई नहीं।

स्वयंको कर्तादिकारक माननेका फल—इस प्रकार जो अपने आपको कर्ता, कर्म, करण, कर्मफल मानता है वह अन्य रूप नहीं परिणमता है और शुद्ध आत्माका लाभ लेता है। जैसे कभी कोई कष्ट आ जाय और उस कष्टके भीतर यह निश्चय रखे कि इसमें तो मेरा ही कसूर है तो उससे मुझे कष्ट नहीं होगा। जैसे जिस पुरुषके निमित्तसे कष्ट होते हैं उसपर विरोधी दृष्टि न रहे कि इसने बिगाड़ दिया, इसको कैसे मजा चखाऊँ? ऐसा कोई विकल्प न रहे तब शल्य नहीं रहती। सो यह समझे कि मेरे ही विरोधदृष्टिसे यह कष्ट है तो उससे कष्ट भी समाप्त हो जायगा। ऐसा जो अपने आपमें निर्णय करता है उसकी बाहरी कसरत, बाहरी बातें, बाहरी यत्न और विरोधात्मक आग उनके अन्दर नहीं भड़कती है और उसका दुःख नहीं बढ़ता है, दुःख शान्त हो जाता है, क्योंकि ऐसी स्थितिमें वह परको कुछ नहीं परिणमाना चाहता, परको कुछ नहीं बनाना चाहता, परका बिगाड़ नहीं करना चाहता। इसी तरह मित्रताकी बात है। सुख हो तो यह जानो कि यह भी मेरे परिणमनसे मेरे ही द्वारा मुझमें मेरी योग्यतासे है। ऐसा जानने में यह पररूप नहीं परिणमता कि भीतरमें बड़ी दीनताका भाव लावे। सत्य ज्ञाता द्रष्टा रहो, विचारो। इस बड़े संसारके भीतर रहता हुआ भी मैं ही कर्ता था, कर्म था, करण था और मैं ही कर्मफल था। ऐसा जो ज्ञानी जीव निश्चय करता है वह अन्य रूप नहीं परिणमता। और ऐसा यदि बन जाता है तो वह इस शुद्ध आत्मा को प्राप्त कर लेता है। इस तरह यहाँ यह कहा गया है कि यह आत्मा द्रव्य है और परिणमता है। सभी कुछ देखते जावो, पर सम्बन्धबुद्धि न देखो। ऐसी ही वस्तु स्वरूप की स्थिति उपयोगमें बन जाय तो उसमें मुक्तिका मार्ग मिलता है और फिर अपने इस ही बातके बोधनेके लिए विषय कषायसे हटनेके लिए, व्यवहारमें जो देवपूजा, स्वाध्याय, तप, दान, आदिक साधन है इनसे अपनेमें झुकनेकी पात्रता बनाना है। भीतरमें अपनेको झुकनेकी परिणति बनाना यही मनुष्यभवका सार है।

अशुद्ध व शुद्ध परिणतिमें षट्कारकता—जब मैं रंगीली वृत्तिमें था, विभावों से उपरक्त था उस समय भी मैं ही कर्ता था, मैं ही करण था, मैं ही कर्म था और मैं ही कर्मफल था। यद्यपि ऐसी विभाव परिणति होनेपर उपाधि साथ थी और

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

उपाधिका निमित्त पाकर ही यह बिभाव परिणति हुई, पर एक द्रव्यके अस्तित्वको देखकर अर्थात् शुद्धदृष्टिसे देखकर यह विचार करो कि सब स्वयं है और परिणमते रहते हैं, यह बात वहाँ भी बनी रहती है। सब अपने आपमें अपना पर्याय कर रहे हैं और अपनी परिणति क्रियाके द्वारा कर रहे हैं, अपने ही लिए कर रहे हैं। अपने परिणमनमें कर्त्ता, कर्म, करण और कर्मफल मैं ही था। अब इस समय जबकि विशुद्ध दर्शन हो रहे हैं, सहज आत्मवृत्ति जग रही है अर्थात् स्वयं रंगीलापन मिट रहा है, शुद्ध स्वभावके ऐसे विशुद्ध सहज आत्मवृत्ति जगनेके समय भी मैं ही कर्त्ता हूँ, मैं ही कर्म हूँ और मैं ही कर्मफल हूँ।

सन्निद्धिकी निमित्तता—विशुद्ध आत्मवृत्तिकी जागृतिका विधान देखनेके लिए यह जानना आवश्यक है कि अशुद्ध आत्मवृत्ति कैसे हुई? उपाधिकी सन्निद्धिसे जो विभावपरिणति दौड़ती थी उस सन्निधिमें हुई उपाधिकी सन्निधिका अभाव ही आत्म-वृत्ति जगनेका निमित्त है, अर्थात् अनादिकालसे प्रसिद्ध जो कर्मबन्धनरूप उपाधि, उसकी सन्निद्धिकी समाप्ति आत्मवृत्तिकी कारण हुई। कारण कि प्रत्येक पदार्थ स्वतःसिद्ध है, उसका ध्वंस नहीं होता, किन्तु होता हैं ध्वंस सन्निधिका। जैसे दर्पणके सामने पिछी आदि कुछ रखनेपर दर्पण छायारूप परिणमा, तथा पिछीके हटानेपर उसकी सन्निद्धि मिट गई, इस कारण छायारूप परिणमन भी मिट गया, ऐसी स्थितिमें सन्निधि ही मिटी, पिछी नहीं मिटी। तो कर्मकी सन्निद्धि क्या है? कर्मबन्धन रहना, स्थिति बनी रहना और उसके विपाककालमें खिरना, यह सब सन्निधि कहलाता है।

सन्निधिका दृष्टान्त—जैसे स्फटिकपर जब तक जपापुष्प आदिकी उपाधिकी सन्निद्धि थी तब तक तो स्फटिक परारोपित विकारवाला कहलाता था, पर जब उपाधिकी सन्निधि हटी, ध्वंस हुआ तब स्फटिकमें आरोपित विकार अब नहीं रहा, अर्थात् जब मुमुक्षु पुरुषमें मोक्षकी रुचि जागृत हुई याने ज्ञान, ज्ञान वृत्तिसे परिणमित हुआ तब उसमें अज्ञानजन्य परिणतिका अभाव हुआ। ऐसी ज्ञानकी वृत्तिकी उत्पत्ति, यही मोक्षमार्ग है, और यही श्रेष्ट ज्ञान है। ऐसी चाह करने वाले ज्ञानी मुमुक्ष है। मुमुक्षु होनेसे पूर्व उस समय भी मेरा कोई नहीं था-और इस समय भी यह मैं आत्मा अकेला ही हूँ। विशुद्ध चित् स्वभावको लिए हुए स्वयं कर्त्ता हूँ और यही मैं एक विशुद्ध चित्स्वभावसे करण हूँ, साधकतम हूँ। मेरी इस परिणतिको किसने बनाया? काहेके द्वारा बनाया? अपना मैं ही साधकतम हूँ दूसरा नहीं है।

आप्तका निर्णय—एक जगह समन्तभद्र स्वामीने पूछा और यह परीक्षा की कि मेरे नमस्कार करनेके योग्य कौनसा देव है? बहुत से देव मानो बैठे थे, और वहाँ समन्तभद्राचार्य कल्पना करो कि पहुँचे हों, वहाँ परीक्षण कर रहे हों कि मेरे नमस्कार

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

करने के योग्य कौन देव है ? तब कोई जिनेन्द्रदेवको संकेत करके बोले कि ये पूजने योग्य हैं, इनके पास देवता लोग आते हैं, आकाशपर चलते हैं, छत्रादिक विभूतियां हैं। तो समन्तभद्राचार्य कहते हैं कि ये सब विभूतियां मायावी जीवोंमें भी देखी जा सकती हैं। इस कारण प्रभो तुम मुझे महान् नहीं हो।
फिर मानों जिनेन्द्रदेवकी ओरसे कोई बोल उठा कि इनका सप्तधातुविकार रहित शरीर है। तब समन्तभद्र बोले कि धातुरहित शरीर देवोंके भी होता है इससे भी आप मेरे लिये महान् नहीं है। ...इन्होंने तीर्थ चलाया। समंतभद्र बोले कि अपने-अपने तीर्थ वहुतोंने चलाये आदि वहुत वर्णन करके फिर तुम महान् किस कारण से हो ? यह आगे बताया है कि तुम निर्दोष हो, इसीसे पूर्ण ज्ञानी हो इसी कारण तुम महान हो। उस प्रसंगमें यह बताया है कि जो चीज कम होती है वह कहीं बिल्कुल नहीं रहती, जो चीज अधिक होती है वह कहीं पूर्ण हो जाती हैं। इसका अर्थ यह है कि जो उपाधिके निमित्तसे अधिक और उपाधिके अभावसे होती है उसका ही कहीं पूर्ण अभाव हो जाता है तथा जो उपाधिके होनेसे कम होती है और और उपाधिके अभावसे बढ़ जाती है, वह कहीं पूर्ण बढ़ जाती है। सो उपाधिके अभावसे विशुद्ध चित्स्वभावका विकास हो जाता है। इससे ही प्रभो आप मेरे लिये महान् हो।

मुक्ति क्या ?—मुक्ति क्या चीज कहलाती है ? ज्ञानका ज्ञान रूप रहना इसीके माने मुक्ति है परमार्थसे। कर्मोंसे छूटना, मुक्त होना यह व्यवहारसे मुक्त होन कहा जाता है। यह बात असत्य नहीं है। देखो भैया, अभी भी कर्मसे बँधे हैं। कितनी बातें आफतकी लगी हैं ? इन कर्मोंसे छूटना है, इससे ही मुक्ति है। किन्तु उपाय इसका करना क्या है—केवल अपनेमें लीन होना है सो परमार्थसे कैवल्यदृष्टि तो मोक्षमार्ग है और कैवल्य रहना मोक्ष है।

बन्धनका कारण स्वयं—यह जीव स्वयं अपने आपमें किस तरहसे बँधा है ? और किस तरहसे छूटता है ? कभी जंमाई लेनेमें जरा मुँह ज्यादा बढ़ जाता है तो नीचेकी दाढ़ कुछ खिसकसी जाती है, तो कष्ट होता है और फिर कुछ रुककर ठिकाने पर आ जाती है। वहाँ दूसरेने कुछ नहीं किया, खुद ही ठीक कर लिया। केवल एक द्रव्यके देखनेकी बात कही जा रही है। देखो भैया, दूसरे द्रव्यका विरोध करके न देखना, क्योंकि दूसरे पदार्थोंका विरोध करके देखनेके माने हैं बंधपद्धति व मोक्षपद्धति दोनों का नाश करना है। दूसरे पासमें है, दूसरेका निमित्त पाकर विभाव परिणमन होते है, इन सब बातोंको प्रमाणबलसे अंगीकार करके फिर मात्र एक द्रव्यको लक्ष्य कर यह देखो कि इस द्रव्यमें क्या हो रहा है ? ऐसी दृष्टिको कहते हैं शुद्ध दृष्टि।

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

शुद्ध दृष्टि क्या—शुद्ध दृष्टिका अर्थ शुद्ध परिणति नहीं है किन्तु है केवल एक द्रव्यकी दृष्टि। हम एकको देख रहे हैं, बुरा चल रहा है तो एकको देख रहे हैं, भला चल रहा है तो एकको देख रहे हैं। एक देखनेकी दृष्टिका नाम शुद्ध दृष्टि है। जगतके जीवोंने स्वतन्त्र दृष्टिसे, हटकर संयोग दृष्टि सम्बन्ध दृष्टि, परस्पर स्वस्वामित्व दृष्टिसे ही सब कुछ जाना और इन्हीं विकल्पोंके परिणामस्वरूपमें आजतक इनपर अंधेर छाया रहा; जिसके फलस्वरूप यह जीव चारों गतियोंमें भटकता रहा। मात्र दृष्टिदोषसे परिस्थिति ऐसी कठिन हो रही है कि शरीरमें बँधकर क्षणमें कीड़े मकोड़े बन रहे हैं। गति और नामकर्म सम्बन्धी अनिष्टितम सामग्रियोंसे घोर संकट सह रहे हैं। देखो भैया, इन सबका मूल हमारा आपका अज्ञान है। संकटोंका मूल कारण केवल बात ही बात थी, भ्रम ही भ्रम था, अज्ञान था, दृष्टि-दोष था; परके प्रति यह मेरा है, यह मैं हूँ, इस प्रकारकी कल्पनाएँ थीं। बतलावो कोई चीज भी हैं ये कल्पनाएँ। अरे भैया, ये कल्पनाएँ भ्रम ही तो है। तेरा और परका क्या सम्बन्ध? किन्तु देख, इस भ्रमसे ही सचमुच तुझपर कितने बड़े संकट छा गये हैं। शरीर भी बँधा है, अनेक परिस्थितियोंने जकड़ा है। अरे ये सारी विपत्तियाँ कहाँसे आगयीं हैं? विपत्तियोंका कारण है केवल मूढता।

अज्ञानमें विडम्बना—एक कथानक है कि एक सेठके यहां धोबिन उनके धुले कपड़े ले गई। उसके पहले दिन धोबिनकी गधीका बच्चा मर गया था। सो वह रो रही थी। उसने उस बच्चेका नाम गंधर्वसेन रखा था। सेठने पूछा तू क्यों रोती है? धोबिनने कहा कि अभी तुम्हें पता नहीं, दुनियांपर कितने बड़े संकट आ गए गंधर्वसेनजी मर गए। सेठ ने कहा, क्या गंधर्वसेन मर गए? बोली-हां। पहले यह होता था, घरमें ही नहीं अगर कोई बाहरका भी बड़ा व्यक्ति मर जाता तो लोग मूछ मुड़ाते थे। सो सेठ जी ने मूछ मुड़ा ली। एक सिपाहीने सेठसे पूछा कि क्या हो गया? मूछ क्यों मुड़ाए? तो सेठने कहा कि आपको क्या नहीं मालूम? गंधर्वसेन जी मर गए। सिपाहीने भी मूछ मुड़वा लिए। इसी तरह थानेदारने सिपाहीसे पूछा, तो उसके बतानेपर थानेदारने भी मूछ मुड़वा लिया। कोतवालने थानेदारसे पूछा तो थानेदारके बतानेपर कोतवालने भी मूछ मुड़वा लिया। इसी प्रकारसे तहसीलदारने भी अपने मूछ मुड़वा लिए। अब सभामें राजाके समक्ष बात चली कि आज सभी लोग मूछ मुड़वाये बैठे हैं, बात क्या है? तब लोगोंने बताया महाराज! श्री गंधर्वसेन जी महाराज मर गए हैं। राजाने पूछा कि गंधर्वसेन जी महाराज कौन थे? किसी को पता हो तो बताये। तब राजाने कहा कि यह बात किसने बताई कि गंधर्वसेन जी महाराज मर गए। कोतवालने कहा कि थानेदारने बताया, थानेदारने कहा कि सिपाही ने बताया, सिपाहीने कहा कि सेठने बताया और सेठने कहा कि धोबिनने बताया।

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

धोबिनको सभामें बुलाया और पूछा कि गंधर्वसेन जी कौन थे ? धोबिनने हाथ जोड़ कर कहा कि महाराज आपको पता नहीं, वही हमारा एक सहारा, जिससे हमारा काम चलता था वह मेरी गधीका बच्चा उसीका नाम गंधर्वसेन था वह मर गया है।

देखो मूढ़तावश सारे गांवमें मूढ़ता छा गई और सबकी मूछ मुड़ गई इसी प्रकार चारों गतियोंमें हम जीवोंपर संकट छा रहे हैं, पर विपत्तियोंका कारण है मात्र भ्रम । तथ्य कुछ नहीं, मात्र भमके ही संकट हैं।

निमित्ताधीन दृष्टिका परिणाम—सब पदार्थ अपना अस्तित्व लिए हुए हैं। किसीका किसी परसे कोई सम्बन्ध नहीं हैं। रही विभावकी बात, निमित्त नैमित्तिक परिणतिकी बात। सो ये सब उपादनकी कलाएँ हैं। ये योग्य उपादन भी किस प्रकारके पदार्थोंको निमित्त बनाकर अपनी कैसी स्थिति बना लेते हैं? लेनदेन एकका दूसरेमें कुछ नहीं है। 'जैसे आप ही बच्चेको पुत्र मानकर मोह करते हैं, जिन्दगी भर आशक्ति रह सकती हैं पर पुत्रने कुछ कर दिया क्या ? उसने तो अपना उल्लू सीधा किया, उसने अपनी स्वार्थपूर्ति की। यदि पुत्र विनयशील है तो वह अपने लिए विनयशील है कि आपके लिए ? आपकी परिणति आपके लिए है, उसकी परिणति उसके लिए है, आपका फल आपको मिलता, उसका फल उसको मिलता। किसीको परिणतिका फल दूसरेको नहीं मिलता यह शुद्ध द्रव्यकी बात चल रही है।

लक्ष्यभ्रष्ट दृष्टि—एक लक्ष्य बन जाय कि हम किस निगाहसे सोच रहे हैं तो वह बात समाती जाती है। और जिस गलीसे हम चल रहे हैं उसमें चलते हुए दूसरी गलीके मुहल्लोंमें रहने वाले मकानोंको सोचा करें कि वे मकान तो मिलते ही नहीं, फिर सोच कर घबड़ाते हैं कि भूल गए क्या ? वह मकान यहां नहीं मिल रहा। आप पथभ्रष्ट हैं सो दुखी होते हैं। और भी देखो जैसे आप सोनेके बाद जब जागते हैं तो अन्य जगह पहुँचनेपर आप यह ख्याल करते हैं कि मैं कहां सो रहा हूँ ? आखिर जल्दी ही ख्याल आ जाता कि मैं फलाँ जगह सो रहा हूँ। कभी-कभी ऐसा हो जाता है कि सोचने में एक पाव मिनट लग जाता है कि मैं कहां पर हूँ ? किस जगह पर हुं ? ख्याल ठीक आ जानेपर विश्राम मिलता है। तो इस जगहका पता आप निश्चित करलें कि हम किस गलीमें चल रहे हैं ?

निज गलीका निरीक्षण—पदार्थोंको सर्वतोमुख देखनेकी गलीमें आप चल रहे हैं सो इनके संयोगोंको, सम्बन्धोंको देखा जाय तो ये झूठ नहीं हैं। हैं ये। क्या आत्मा के साथ बद्ध कर्म नहीं हैं ? हैं, नहीं तो, अपनेको अलग करके बतलायें। आपका शरीर वहां बैठा रहे, आप यहां सरक आवें तो ऐसा नहीं हो सकता है। फिर भी, इतना होते हुए भी आपमें आप हैं, पुद्गलमें पुद्गल हैं। आपका कर्तृत्व कर्म, करण,

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

कर्मफल आपमें ही चल रहा है। अब केवल एक द्रव्यके स्वरूपको प्रतिष्ठित करने वाली शुद्धनयकी गलीमें विहार करें तो भैया, केवल एक द्रव्यको देखनेकी कलासे शुद्ध गलीके विहारसे कर्मबन्धनमें फर्क होता है और संकटमें अन्तर होता है।

निजहितसाधनाकी प्रेरणा—उक्त उपायसे अपनी शांतिके पानेकी योग्यता बढ़ती है सो आज यह अपने आपको अपने द्वारा करना है, अपने भलेके लिए करना है, कुछ अपनी कल्पनायें या सिद्धान्त स्थापित करनेके लिए नहीं, दुनियांमें कुछ धर्म प्रवृत्ति चलानेके लिए नहीं करना है। यह सब कुछ तो भूसेकी तरह मिलता ही है। जैसे अनाज बोया जाता है तो गेहूँ पानेके लिए गेहूँ निकलते हैं तो भूसा भी निकलता है। इसी प्रकार ज्ञानकी वृत्ति अपनी शांतिके लिए है, अपने संकट दूर करनेके लिए है। हां, ज्ञान वृत्तिसे चलनेवालेके वातावरणमें अन्य जीवोंको भी धर्ममार्ग मिलता है, यह सब औपचारिक फल है। ज्ञानवृत्तिका असर तो अपने आप होता है। जिस समय मैं मुमुक्षु हूँ उस समय भी मेरा कोई नहीं है। मैं अपने विशुद्ध चैतन्य स्वभावसे स्वतन्त्र होते हुए कर्ता हूँ, और एक वह मैं ही साधकतम हूँ और इस आत्माने अपने आपको ही इस रूपमें पाया है सो इस आत्मक्रियाका फल मैं आत्मा ही हूँ और इस शुद्ध चित् परिणमनसे उत्पन्न किया हुआ अनुकूल रूप फल भी देखो भैया, मैं ही शुद्ध-आनन्दस्वरूप हूँ। सो मैं ही कर्मफल हूँ। इस तरह सर्वत्र एक अद्वैत दृष्टिसे अपने आपको देखना, ऐसी वृत्तिमें शुद्ध आत्माकी प्राप्ति होती है।

आत्माकी स्वतन्त्र परिणति पद्धति—इस प्रकार यह आत्मा चाहे बन्धकी पद्धतिमें हो, चाहे मोक्षकी पद्धतिमें हो, यह एक आत्मा ही अपना अस्तित्व लिए रहता है। इन सब पद्धतियोंमें जो अपने आपको एक ही देखता है, एक ही भावना करता है ऐसे उस ज्ञानी आत्माके परद्रव्यकी परिणति नहीं होतीं, मोह नहीं रहता। जैसे कि एक परमाणु है जो अपने एक एकत्वकी प्रभावनामें उन्मुख है अर्थात् जो परमाणु अपने जघन्यगुणकी वृत्तिकी ओर है इसीको कहते हैं परमाणु अपने बिल्कुल एकत्वकी ओर है, ऐसे परमाणुमें परद्रव्यकी परिणति नहीं होती, स्कन्धरूप परिणमन या अन्य-अन्य विकार यहां कुछ नहीं होता।

ज्ञानीकी परिणति—जो जीव अपने आपकी आत्माके एकत्वमें उपयोग रखता है अर्थात् शरीरसे हटकर, द्रव्यकर्मोंसे हटकर, विकल्पोंसे हटकर और क्षण-क्षणमें होनेवाली सर्व प्रकारकी आत्मपरिस्थितियोंसे भी उपयोगको हटाकर जो एकत्वकी प्रभावनामें उन्मुख हैं, अनादि अनन्त अहेतुक चित्स्वभावकी भावनामें उन्मुख है, ऐसे ज्ञानी जीवकी परपरिणति नहीं होती है। और, परमाणुकी तरह ही जब यह

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

आत्मतत्त्व एकताके रूपमें भाया जाता है तब परसे सम्पृक्त नहीं रहता। और जब पर द्रव्योंसे सम्पर्कता न रही तो यह विशुद्ध हो जाता है।

आत्माका फसाव और उसका कारण—आत्मा कितने संकटमें है, कितने फसावमें है? चौरासी लाख योनियोंमें यह जन्म मरण कर रहा है। विचित्र-विचित्र कायापलट होरही हैं। असंज्ञी निगोद इत्यादि अवस्थाओंमें यदि आ गया तो उसका भवितव्य खराब हो जाता हैं। जैसे कि आँखों देख तो रहे हो, इन बिल्ली, कुत्ते कीड़े मकोड़ोंको, इनका जन्म ही क्या है। इन कीड़े मकोड़ोंकी कौन पूछ करता है। वृक्ष खड़े हैं इनपर जी ललचा जावे तो झट कुल्हाड़ीसे काट कर फेंक दिया जाते हैं। देखो इन जीवोंकी क्या हालत हो रही हैं। इनका कौन सहायक है? ऐसा इस जीवका भटकना हो रहा है। ऐसे संकट इस जीवपर छाये हुए हैं। जिन जीवोंने अपने एकत्व स्वरूपका दर्शन नहीं किया उन्हें इस अपराधमें ये सारे दण्ड भुगतने पड़रहे हैं। कोई मनुष्य कुछ समयको लोकव्यवहारमें ऊँचा बन गया तो क्या बन गया? प्रतिष्ठित हो गया, धनी हो गया, प्रतिष्ठावान हो गया तो क्याहो गया? चार दिनकी चाँदनी फेर अँधेरी रात। इतना बड़ा हो जानेके बाद यदि पुनः कीड़े मकोड़ेके पर्यायमें चला गया तो फिर बड़प्पन क्या रहा?

हम स्वयं अपनी सृष्टिके निर्मापक—हम अपने हितके लिए बहुत बड़ी बड़ी ऊँची ऊँची बातें सोचते हैं। बड़े बड़े उद्यम करते हैं, पर वे सारे उद्यम व्यर्थ ही तो हैं। अपनी सृष्टि तो अपने परिणामोंके अनुकूल होती है। और परिणाम इस प्रकार के हैं कि कीड़े मकोड़े बननेकी पर्याय मिली तो इस दिखावट, बनावट, बड़प्पन से अपने आपके आत्माका क्या हित है कितना संकट छाया है और भी गजबकी बात क्या है कि उस संकटपर तो दृष्टि रखते नहीं और जो मौज मिलती है, पुण्य का उदय हुआ है, हाथ पैरों वाले मनुष्य बन गए है, कुछ मन समझदार हो गया है तो इनबातों पर हर्ष मनाते हैं, गर्व करते हैं, अपनी शान समझते हैं पर यह सब शान धूलमें मिल जायगी। यदि अपने ज्ञानका रक्षण न किया, यथार्थ जैसा सहज स्वरूप है, वैसी भावनाओं द्वारा अपनी अपने आत्माका पोषण नहीं किया तो यह सारी शान धूलमें मिल जायगी अर्थात् क्लेशमय भव मिलेंगे।

पुरुषार्थका प्रोत्साहन—भैया। इन सब संकटोंसे दूर होना है तो यह साहस करो इस ज्ञानमात्र आत्माके समीप रहो महत्त्वपूर्ण आत्महितके प्रोग्रामके सामने दुनियावी झंझट क्या झंझट है? कुछ भी तो आपत्ति नहीं है। ऐसी समझ बनाओ। देशसंकट, समाज-संकट,परिवारसंकट,देहसंकट ये भी कोई संकट नहीं हैं एक आत्महितके प्रोग्रामके सामने सारा जगत मुझसे जुदा है। जिसे हम कहते हैं मेरा देश, मेरी समाज, मेरा मित्र, मेरा

To report error, please contact vikasnd@gmail.comVersion 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

परिवार, मेरी गोष्ठी ये सब कुछ मेरे से न्यारे हैं। एक यह आत्मा जो यहाँ है, यहाँ से मरकर, अन्यत्र पहुँच गया फिर यहाँ का क्या ? जिस देशसे विरोध करते है मरकर यदि मैं उसी जगह पहुँच गया तो वहाँ क्या परिणाम बनेगा ? यहाँ की तो सब ओर से आँख मिच जाती है। आत्महित याने समाधिभावके प्रोग्राम हों और यह ही महत्वपूर्ण आत्मतत्त्व उपयोगमें रहे जिसपर कि हमारा अनन्त काल तकका सुभवितव्य निर्भर है। यदि आत्मदृष्टि रही तो यह मेरे कामकी बात रहेगी। हम यहाँ की समस्यायें हल करलें तो कितने दिन तक काल्पनिक मौज मान पावेंगे, ये प्रसंग विकल्पोंसे तो हटा नहीं देंगे और यह आत्मस्वरूपके भावकी दृष्टि हमें शान्तिका काम देगी, नियमसे काम देगी। तो यह चीज कैसे मिले ? इसका उपाय इस गाथामें कहा जा रहा है।

स्वपरिणामाधार बंधमोक्षपद्धति—चाहे बंधकी पद्धति हो, चाहे मोक्षकी पद्धति हो, सर्वत्र, बंधमें लगा रहता हैं तो, मोक्षमें लगा रहता हैं तो, मोह बना रहता है तो, समाधिस्थ बना रहता है तो, सर्वत्र, अपनी ही परिणतिसे वह एक आत्मा ही परिणम रहा है। और अपने उस परिणाममें सुख अथवा दुःख भी अकेला पारहा है। ऐसे एकत्वकी भावनाको जो रखता है फिर चाहे रागसे यह मलीन अवस्था हो, चाहे द्वेषसे मलिन हो, यह शुद्ध आत्मत्व को पा लेता है। जैसे मिले हुए दूध और पानीको भेददृष्टि डालकर अलग-अलग देख लिया जाता है और यंत्रोंके साधनोंसे भी स्पष्ट समझ लिया जाता है। कि इस आधसेर गिलासमें तीन छटाक दूध और १ छटाँक पानी है, यों न्यारा जान लेते हैं। दूध कहीं अलग धरा हो पानी कहीं अलग धरा हो सो बात नहीं हैं। ऐसा भी नहीं हैं कि गिलासमें दूध नीचे है और पानी ऊपर है। दूध और पानी बिल्कुल दृष्टिसे सन्निकट है मोटे रूपमें एक क्षेत्रावगाह है। किन्तु एक क्षेत्रावगाह वस्तुतः नहीं है। दूधके परमाणुके प्रदेशमें पानीका परमाणु नहीं पहुँचा और न पानी में दूधका अणु पहुँचा।

क्षेत्रावगाही सम्बन्ध—जीव और शरीरकी तरह दूध और पानी एक क्षेत्रावगाहमें नहीं हैं। फिर भी स्थूल दृष्टिमें एकत्र है और उनका स्थान भी अलग नहीं कर सकते कि लो इतनी जगहमें दूध है और इतनी जगहमें पानी है। फिर भी ज्ञानसे जब उसमें खोज की जाती है तो खोजने वाला कोई जान जाता है कि भाई इसमें आधे से भी कम दूध हैं। जैसे हड्डीकी फोटो लेने वाला यंत्र मनुष्य के कपड़ों की फोटो नहीं लेता; माँस, खून, चमड़े आदिका फोटो नहीं लेता, सबको पार करके हड्डीका फोटो ले लेता है, इसी प्रकार ज्ञानदृष्टि शरीरको पार करके, विभाव भावोंको पार करके, कल्पना, विकल्प विचारोंको पार करके अनादि अनन्त अहेतुक चैतन्यस्वरूप को ग्रहण कर लेता है। कहां अलग रखा है वह चित्स्वभाव, परन्तु ज्ञानदृष्टिसे

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

विविक्त चित्स्वभावको ग्रहण कर ही लेता हैं। ऐसे ही ज्ञानबलसे इस आत्मामें आत्माके एकत्वको जो निरखता है उसका मोह प्रलीन हो जाता हैं। भैया! उस एकत्वको निरखनेके समय इतना तो स्पष्ट विदित है कि आश्रयभूत पदार्थोंकी खबर नहीं रहती है, सो जो अपने आत्माके एकत्व स्वभावमें उपयुक्त हैं उसको पर निमित्तकी याद न होनेसे रागदिक भावोंमें वह व्यक्तता नहीं रहती। यद्यपि आत्मानुभूति तकके समयमें भी नीचेके कई स्थानोंमें राग द्वेष विषय कषाय परिणमन चलता रहता है सो वह अबुद्धिपूर्वक चलता है, बुद्धिपूर्वक नहीं हैं। व्यक्तरूपमें नहीं है। क्योंकि उस स्थितिमें आश्रयभूत पर पदार्थोंकी याद भी नहीं है। फिर यादका प्रस्फुटित रूप कैसे बने? इतना लाभ भी आत्मानभूतिमें दिखता ही है, फिर ज्ञानाभ्यासमें अबुद्धिपूर्वकभाव भी समाप्त होने लगते हैं। और इस महान् पुरुषार्थके प्रतापसे कभी, एकदम, यह आत्मा सर्वथा विशुद्ध हो जाता है।

ज्ञानपान ही अमृतपान—ज्ञानसे वस्तुस्वरूपका वास्तविक ज्ञान करना अमृतपान करना है। लोकमें ऐसा प्रसिद्ध है कि अमृतके पीनेसे जीव अमर हो जाता है, मनुष्य अमर हो जाता है। वह अमर चोज क्या है जिसको पीकर जीव अमर बन जाया करते हैं। वह अमृत चोज कैसी होती होगी? क्या पानी जैसा होगा? किसी रंगका होता होगा? कुछ कल्पनामें तो लावो। अभी केवल शब्द ही तो सुन रखा है कि अमृतपान करनेसे जीव अमर हो जाता है। कुछ कल्पनामें भी तो लावो कि यह अमृत वस्तु ऐसा होता होगा? क्या कोई गिलासमें भरनेकी, कटोरीमें भरनेकी चीज है? वह अमृत क्या होता होगा। कुछ समझमें आ तो नहीं रहा है, कल्पनामें तो नहीं आ रहा है कि वह अमृत क्या चोज होता होगा। कुछ जोर लगावो उस अमृतके तत्त्वोंकी समस्या सुलझानेके लिए। हाँ कुछ समझमें आया कि देवताओंके कंठमें अमृत रहता है, वह झर जाता है और देवता अमर रहते हैं। वह देवतावोंके कण्ठका भी अमृत क्या चोज होती होगी? क्या उस अमृतके पीनेसे देवता अमर हो जाते हैं? क्या उनकी मृत्यु नहीं होती है? मृत्यु होती है, पर उनकी आयु बड़ी होती है इसलिए वे अमर कहे जाते हैं, परन्तु मरण उनके भी होता हैं। सो वह भी वास्तवमें अमृत नहीं है। वह भी व्यावहारिक शब्द है, अपने अर्थमें निभा देनेवाला शब्द नहीं है। और फिर देवकण्ठका अमृत है क्या? होता होगा कुछ, पनीला पानी जैसा। जैसे हम आप लोगोंके भी कभी घूट उतर जाता है ऐसा ही कुछ और अच्छा घूंट देवताओंके भी उतर जाता होगा। वह अमृत क्या हैं? कुछ भी हो, वह भी अमृत नहीं है। फिर दुनियामें वह अमृत क्या चीज है जिसे पी लेनेसे जीव अमर हो जाता है। वह अमृत क्या है? आप विचारें कि दुनियावी कोई चीज अमृत हो तो अमृत तो उसे कहते है जो मरे नहीं, जो खुद मर जाय वह अमृत कैसा? जब उसे पी लिया, हजम

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

कर लिया तो वह अमृत बेचारा तो खुद ही पहिले मर गया उससे दूसरेके अमरत्वकी आशा क्या ? आशा रखते हैं लोग कि कोई ऐसा अमृत मिले कि जिसके पीनेसे मनुष्य अमर हो जाता है वह अमृत क्या है ? अमृत वह है जो स्वयं अमर है, न मृतं इति अमृतं, जो स्वयं न मरे, जो अमर हो, जिसको आश्रयसे अमरत्वका अनुभव हो वह अमृत कहा जाता है।

स्वचैतन्यस्वभाव ही अमृत—आप हम सबके लिए ऐसा अमृत क्या है ? वह अमृत है निज सहज स्वभाव। यह चैतन्यस्वभाव, यह चैतन्य ज्योति अमृत है, चैतन्य ज्योति न मरी है, न मर सकेगी, वह तो अंतः प्रकाशमान है। इस चैतन्य ज्योतिका पान कैसे हो जायगा ? यह तो मुखमें भी नहीं आता। इसका पान ज्ञानदृष्टि से टकटकी लगाकर अपने आपमें सरूट लेना है, ज्ञानमें समा लेना, यही अमृतका पान है। इस अमृतके पानसे जीव अमर हो जाता है। जीव अमर तो था ही, अमर रहेगा पर इसके अमरत्वका ज्ञान नहीं था।

निज अमरत्वस्वरूपकी श्रद्धा ही अमरता—अमरत्वके भानसे पहिले तो यह उपयोगमें डर था कि हाय मर जाऊँगा, नाना प्रकारसे इनकी परिस्थितियाँ बिगड़ जायेंगी। पहिले शंका करते थे लेकिन अब इस अमरत्वके उपयोगमें आनेसे यह भानकर लिया कि मैं अमर हूँ,तो लो अमर बन गए। परन्तु खेद हैकि अज्ञानकी दृष्टिके कारण इस जीवने ज्ञानामृतका पान नहीं किया, जिसका फल यह है कि अनादिसे अब तक इसने कैसी यातनायें पायी है। समय गुजर गया, सो उन यातनाओंका अब विशेष चिन्तन नहीं। पर्यायोंके समय सब पूरा पता पड़ता है। अच्छा, और बात जाने दो, जिस समय आपका सिर दर्द करता है तो कैसी बेदना करते हो ? कल परसों हुआ होगा, आज नहीं है तो शंका भी नहीं है हाय ! कैसी-कैसी यातनाएँ इस जीवने भोगीं। कैसे तिर्यञ्चगतिमें दुःख कैसे मनुष्यगतिमें दुःख और कैसे हैं देवगतिमें दुःख। अनेकों संकट सहें, कष्ट भोगे, अब तो कुछ आत्माकी करुणा का भाव लावो।

एकत्वस्वभावके दर्शनकी महिमा—सबसे मुक्त होनेका उपाय आपके एकत्व-स्वभावका दर्शन है, श्रद्धान है, आलम्बन है, और कोई दूसरा उपाय नहीं हैं। सदाके लिए संकटोंसे मुक्त हो जाय, ऐसा उपाय करना सोई बुद्धिमानी है वास्तविक ऐसा उपाय करते हुए में यदि ऐसी परिस्थिति आई है कि निर्धन हो जाँए, इज्जतमें कभी कमी आ जाय, अपमानित हो जायँ कोई पूछने वाला भी न रहे क्योंकि वह मात्र अपने काममें लग रहा है ना, जगत स्वार्थी है, किसीके विषयका प्रयोजन यदि अपनेसे न सधे तो भला फिर कोई पूछने क्यों लगेगा ? ऐसी कदाचित् परिस्थितियाँ आजायें तो भी मूल्य समझो आत्महितका, और उन संकटोंका कुछ भी मूल्य न समझो। वे संकट

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

कुछ भी नहीं हैं। यह इस पर्यायरूपमें उपस्थित सब कुछ धूलमें मिल जावो, कुछ परवाह नहीं है।अपने प्रभुका प्रसाद पाओ।

विपदाएं पुरूषार्थकी प्रेरणात्मक—विपदाएँ लौकिक विपदाएँ यदि बहुत आती हैं तो आवो। ये विपत्तियाँ तो मुझे सावधान करनेके लिए आती हैं। मौजमें रहनेवाले पुरुषकी आत्मा उच्च नहीं बन पाती और संकटमें रहनेवाले पुरुषकी आत्मा उच्च बन जाती है। ये विपदाएँ रागकी नींदमें सोये हुए पुरुषको जगाने के लिए आती हैं। बहुत नीचेकी ओर ढुलने वाले जीवको समझानेके लिए ये विपदाएँ आती हैं। कष्टोंकी स्थितियाँ। आवो, फिर भी इन सबका कुछ मूल्य नहीं है। जैसे लोकमें वड़े पुरुष अथवा कोई भी ऐसा जिसके विरोधमें कोई दूसरा कुछ कहता है और उसके कहनेपर ध्यान देता है तो ध्यान देनेके मायने यह हुआकि उसके विरोधकोमहत्व शाली समझ लिया है। ती नीति कहती है कि उसपर कोई भी शब्द न बोला जाय। इसके माने उसका विरोध असार है। इस प्रकार हे मुमक्षुवो! इन सारे संकटोंका मूल्य कुछ न समझो, वे सब अन्य हैं, उनसे तुम्हारा क्या बिगाड़ होता है? मैं तो अद्वैत पुरुष अपने आपमें सुरक्षित हूँ, इस प्रकार आपके एकत्वकी भावनामें जो लग रहे हैं वे सब संकटोंसे दूर हो सकते हैं।

संकीर्णतासे पृथक्त्व व निर्मलताका उद्गम - अपने पर्यायोंका आत्मा ही कर्त्ता है और उन्हें अपने ही द्वारा किया जाता है, अपने लिए किया जाता है, अपनेको ही किया जाता है। इस प्रकारका निश्चय करने वाले, भावना करने वाले ज्ञानीजन पर्यायोंमें संकीर्ण नहीं होते वे परिस्थितियों और परिणतियोंमें आत्मबुद्धि नहीं रखते, क्योंकि इन भावनाओंमें उनकी दृष्टिमात्र एक शुद्ध आत्मापर पहुची है इस कारण वे किसी परसे और किन्हीं पर पर्यायोंसे अनुरक्त न होकर एक मात्र स्वयं स्थिर होनेमें उनमें निर्मलताका उद्गम हो जाता है। इस ही बातको श्री अमृतचंद्रजी सूरि कलश काव्यमें कहते हैं कि द्रव्यान्तरव्यतिकरादपसारितात्मा सामान्यमज्जितसमस्त-विशेषजातः, इत्येष शुद्धनय उद्धतमोहलक्ष्मीलुण्टाक उत्कटविवेकविविक्ततत्त्वः, ।। अन्य द्रव्यसे भिन्न होनेके कारण अन्य द्रव्योंको अपनेसे जुदा कर देनेके कारण विविक्त हुआ यह आत्मा ही एक शुद्धनय है

शुद्धनयका स्वरूप व प्रताप—शुद्धनय कैसा है कि जिसकी दृष्टिमें सामान्यमें डूब गया है समस्त विशेष जिसमें ऐसे विविक्त तत्त्वको उत्कट विवेकसे दर्शानें वाला है और उद्धत मोहलक्ष्मीको लूटकर विनष्ट करनेवाला है। समान्यमें समस्त विशेष समूह डूब गया है अर्थात् शुद्धनयकी दृष्टिमें गुण भेद और पर्यायको विशेष दृष्टि नहीं रही है, यद्यपि गुण और पर्याय तो हैं ही किन्तु वे गुण पर्याय उस समान्यतत्त्वमें निमग्न

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

हो गये हैं, ऐसा यह शुद्धनयस्वरूप यह स्वयं आत्मा ही तो है। शुद्धनय एक ज्ञानका नाम है और ज्ञान आत्मा है। वह शुद्धनय उद्धत, उद्दंड, स्वच्छन्द, जिसे चाहे उसे दबोच देने वाली जो मोह लक्ष्मी है, उसको लूटने वाला है, विनष्ट करने वाला है, बरबाद करने वाला है ऐसा यह शुद्धनय है। वस्तुके एकत्वस्वरूपकी दृष्टि जब होती है तब वहाँ मोह नहीं ठहर पाता। उत्कट विवेकके कारण शुद्धनय अत्यन्त विविक्त तत्त्व वाला है यह, जिसने कि इस मोहको भी नष्ट कर दिया है।

मोहका स्वरूप—मोह कहते इसीको हैं कि दूसरे द्रव्योंसे सम्बन्ध मानना, अर्थात् निजसे भिन्न दूसरे द्रव्यके साथ सम्बन्ध माननेका नाम ही मोह है। सम्बन्ध मानने की ही दृष्टिमें आकुलताएँ हैं किसी परसे अपना सम्बन्ध माने, परको ही अपना अधिकारी माने, जिसे दूसरे नामसे अज्ञान कहा जाता है, यही तो मोह है, अज्ञान है। इस अज्ञानका नाश ज्ञानसे होता है। प्रत्येक पदार्थका परिणमन उसही की परिणतिसे होता है। उसका स्वामी वही पदार्थ है। परके बारेमें विपरीत सोचनेसे परमें कुछ नहीं गुजरता है किन्तु यहाँ हमें विपरीत कल्पनाओंसे आकुलताएँ आ दबोचती हैं।

शुद्धनयका दृष्टिबल—शुद्धनयकी दृष्टिसे वस्तुस्वरूपका ज्ञान होगा कि यह भी एक चीज है पर यह मुझसे पृथक है। इस ज्ञानसे दूसरे पदार्थकी किसी भी परिणतिको देखकर अंतरंगमें मुझे आकुलताएँ नहीं रहेंगी। यह जो हुआ ठीक हुआ, यह हुआ सो ठीक है। जो होता है सो ठीक है। इसका परिणमन है, हो जाता है। हम अपने आपको समझदार बनालें, सावधान बनालें तो हम शांति पा लेंगे। और किसी बाह्यकी दृष्टि करके हम एक दम ही उस ओर बह गए तो शान्ति नहीं पासकेंगे। बहुत बड़ी जिम्मेदारी है आत्मन्। तेरी तुझपर है। तू इस परपदार्थकी परिणतिके प्रसंगके अज्ञानसे अशान्ति और ज्ञानसे शान्ति प्राप्त कर सकता है। भैया, मनमाने न चलो, कुछ पुण्योदय होनेपर, कुछ समागम होनेपर भले ही उनसे अपनेको महत्त्वशाली समझें और जो मनमें आवे तैसा परके प्रति व्यवहार करें, लेकिन यह परिस्थिति कब तक चलेगी? यह सब मिट जायगा। आज अच्छा है तो कलका कुछ पता नहीं।

विचित्र परिवर्तन—मृत्युके बाद एकदम विचित्र निर्णय हो जाता है। कहाँ तो मनुष्यकी आकृति सामने है और कहाँ इस आकृतिके पश्चात् दूसरे जन्ममें एकदम ढाँचा ही बदल जाता है जिस गतिमें जायगा उस योग्य ही आकृति व भाव बनेंगे। जिस शरीरको यह धारण करेगा उसमें ही यह फैल जायगा। ये वृक्ष दिखते हैं, डाली टहनी पत्ते आदि दिखते हैं इनका कितना विस्तार है। उन सब अवयवोंमें यह आत्मप्रदेश कैसा फैल जाता है। आकारमें भी विचित्र ढंग हो जायगा, परिणामों में भी विचित्र ढंग हो जायगा। ऐसा यहाँ कुछ नहीं रहेगा जैसा कि आज है।

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

निजका दायित्व—बड़ी जिम्मेदारी अपने आपकी यह है कि हम क्या बनेंगे ? दूसरा जीव कोई सहायक नहीं, कोई मददगार नहीं। मददगार कोई हो ही नहीं सकता है, क्योंकि जिस विधानसे, जिस उपाधिसे जिसमें जो कुछ होता है उसमें दूसरा क्या करे ? अपने आपके हितका विचार करना, चिंतन करना, बहुत बड़ी भलेकी बात है। इस मोहने ही तो हम और आपको अत्यन्त व्याकुल कर रखा है। यह मोह भाव उद्धत है, उद्दण्ड है जो इस प्रभुपर सवार है,हे भगवान् आत्मन् ! कहाँ तो तेरा सहज ज्ञानस्वरूप, कितना तेरा निजी महत्त्व, कैसा तेरा ज्ञायकभाव, जो जानता ही रहे, सारे विश्वको जानता रहे ? कहाँ तेरा ऐसा ऊँचा वैभव और कैसी आज यह दशा कि कोई प्रभु पेड़ बना है तो कोई प्रभु कीड़ा मकोड़ा, कोई रीछ,कोई बन्दर, कोई देव, कोई मानव कोई दानव बन रहा है तो कोई रांधा जा रहा है तो कोई काटा जा रहा है, कोई खाया जा रहा है, कोई खा रहा है। देख,-देख हे चेतन प्रभो तेरी कैसी विचित्र स्थिति हो रही है। यहाँ शुद्ध पर्यायवाले पूज्य परमात्मा प्रभुकी बात नहीं कह रहे हैं किन्तु यहाँ तो चैतन्य स्वरूपी हम और आप जीवोंकी बात कही जा रही है कि कैसी स्थिति बनी है। इस स्थितिका कारण मूलमें वही मोह भाव ही तो है, अज्ञान भाव ही तो याने कोरा भ्रम ही तो है।

कषायानुसार विकल्प—कल्पना कीजिए कि सनीमा बोलता हुआ न हो जैसे कि बहुत पहिले होता था। तो उनमें जो पुरुष आते थे वे मुह फैलाते थे तो ऐसा लगता था कि यह पुरुष अपने आपमें अपनी चेष्टा कर रहा है। याने एकांकी क्रिया हो रही है, किसी से कोई कुछ नहीं कहता सुनता, सब अपने आपमें अपनी बात बना रहे हैं ऐसा दिखता था इसी तरह हमारा और आपका जो व्यवहार है, उसके बीच कोई किसीका कुछ नहीं कर रहा, कुछ नहीं बोलता, सब अपने आपमें अपनी कषायके अनुसार अपने-अपने विकल्प किए जा रहे हैं, परमें कुछ नही किया जा रहा है किसी अन्य परके द्वारा।

स्वयंके विकल्प ही स्वयंके फसाव—एक ऐसी घटना सुननेमें आई कि कोई एक देहाती भाई था उसका लड़का कालेजमें बी० ए० में पढ़ता था, होस्टलमें रहता था तो पिताके मनमें आया कि एक बार अपने लड़केसे मिल आएँ; कुछ कलेवा वगैरह दे आवें, कुछ सामग्रियाँ दे आवें। चला तो इसका वेष भूषा कैसा था कि फटे जूते थे। घुटने तक धोती थी। और मिर्जाई पहने हुए साफा बाँधे हुए हाथमें लट्ठ लिए हुए पहुंचा। जब कालेज पहुंचा तो कुछ लड़कोंसे कहा कि अमुक बालकको बुला दीजिए। तो वह लड़का आया, उसके साथ ५-७ मित्र और थे उनकी पोशाक सूट बूट की थी। जैसे कि आज के लोग पहिनते हैं। पिताने उस लड़केको जब सबचीजें

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

दे दी तो उनमें से कोई पूछता है कि मित्र यह तुम्हारा कौन हैं ? तो वह शान में आकर कहता है कि यह हमारा कारिन्दा है कारिन्दा कहते है नौकर या मुनीम को इतनी बात सुनते ही पिताका दिल बिल्कुल ही बदल गया, उसी समय से उसने उस पुत्रकी खबर नहीं ली, उसे नहीं देखा। हुआ क्या, कि सब अपने आपके विकल्पों में थे। कुछ पुत्रने नहीं कर दिया। वह पिता स्वयं मोह करके वैसे परिणाम कर रहा था। अब उस बातको सुनकर विकल्प बना लिया है कि यह मेरा कुछ नहीं हैं, वह मुझे नौकर बनाता है सो ऐसा विचार कर उसने फिर कभी उस पुत्रकी खबर नहीं ली। देखो कषाय के आवेशमें लड़केने भी यह खबर न की कि अगर पिताको नौकर कह देंगें तो क्या होगा। उस लड़केमें भी कषाय थी कि कहीं मेरी शान न नष्ट न हो जाय। वह समझता था कि मित्र जन यही कहेंगे कि यह तो ऐसा जेन्टिल-मेन है और इसका बाप ऐसा देहाती है !

इच्छावों के अभाव का नाम सुख—भैया ! प्राणी मात्र अपने अपने विकल्पोंकी स्थितिमें है। अपनी इच्छावोंकी पूर्तिमें हैं। इच्छाकी पूर्ति कहो या इच्छावोंका अभाव कहो बात एक है मगर लोगोंकी दृष्टि पूर्तिपर जाती है, अभावपर नहीं जाती हैं। जितना सुख होता है गृहस्थीमें या किसी प्रकार वह इच्छावोंके अभावसे होता है जितने अंशमें इच्छा कम हैं उतने अंशमें सुखका विकाश है। हर बातमें, दुकान में, भोजन बनाने आदि में, जब जबभी जो जो सुख होते हैं वे सुख इच्छावोंके अभावसे होते हैं। इच्छासे तो क्षोभ ही होता है।

विकल्प का अभाव सो ही सुख—सोचो कि तुमको ५०० रु० का फायदा हो जाय, ५०० रु० आ गए तो ५०० आ जानेसे सुख नहीं हुआ। सुख इसलिए हुआ कि अब यह विकल्प नहीं रहा कि मुझे ५०० रु० मिल जायें। अब इच्छारूप परिणति नहीं रही। सो उस इच्छारूप परिणतिके न रहनेका नाम वह सुख है। उन रुपयों के सामने होनेका नाम सुख नहीं हैं। आप सुबह उठते है और सोचते हैं कि अब अमुक काम करना है सो इस विचार या इच्छाके कारण विह्वलता है पर वह काम करलें तो कामसे विह्वलता मिट गयी क्या ? ऐसा करनेसे विह्वलता नहीं मिटती। किन्तु अन्दरमें तत्सम्बन्धी इच्छा नहीं रहती, आशा मिटी तो उससे विह्वलता मिटी। यहाँ यह प्रश्न किया जा सकता है कि इच्छा न रहे इसी में ही सुख सही मगर इच्छाका अभाव काम करनेसे ही तो हुआ, सो यह बात नहीं हैं किसी के विकल्पमें उस बात के हो जाने से इच्छाकी कमी होती है, किन्तु किसी पुरुषके उस 'काम से बाहर रहनेमें, दूर रहनेमें इच्छाका अभाव रहता है सो इच्छाके अभावका नाम सुख हैं। इच्छाके अभावका ही नाम इच्छाकी पूर्ति हैं, नहीं तो बताओ इच्छाकी पूर्तिका क्या अर्थ है ? किसे कहा गया हैं कि यह है इच्छा की पूर्ति।

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

इच्छाकी पूर्तिका नाम इच्छाका अभाव नहीं—इच्छाकी भर पूर पूर्ति हो जानेका नाम इच्छा की पूर्ति है क्या ? अगर भरपूर इच्छा है तो उसकी पूर्ति क्या ? जैसे गेहूँ बोरेमें खूब भर दिया तो उसके भरनेका नाम पूर्ति है, ऐसे ही इच्छा भर गयी, तो उल्टा काम हो गया। इच्छाकी पूर्ति कहलाती क्या है। देखो भैया ? अपनी दिनचर्या में जितने सुख होते हैं वे इच्छावोंके न रहने से हैं। पर बाह्यमें दृष्टि लगी हैं इस कारण भीतरमें यथार्थ बातकी खबर नहीं रहती और यह ख्याल होता है कि मुझको सुख इस साधनसे मिला, परिवारसे मिला यह ध्यान जम जाता है पर बाह्य से होता है कुछ नहीं। इच्छा घट गयी उसका आनन्द है। भोजन करते हो और पेट भर जानेके बाद एक सुख होता है, वह सुख भोजनकी इच्छाका अभावका सुख है, भोजनसे पेट भरनेका वह सुख नहीं हैं यदि आप यह कहें कि पेट भर गया तो उसके निमित्तसे ही इच्छा मिटी पर ऐसा नहीं है। देखो भैया, उच्च ज्ञानी योगी संत ऐसे आपने देखे होंगे कि कई २ दिन उनके अंतरायमें बीत जाते हैं। भोजन नहीं करते पर इच्छायें मिटा लेते हैं और भोजन करनेसे भी अधिक भोजनके अभावमें वे सुखी रहते हैं। यह समस्यारूप प्रश्न इच्छाके मिटानेका है। चाहे इच्छित वस्तु सामने आनेसे इच्छा मिटी हो चाहे उस वस्तु के अभाव होने से इच्छा मिटी हो, पर सब घटनाओंमें इच्छाओंके अभावसे ही सुख होता है। कल्पना कीजिए कि तुमको मंदिर जाना है, यह इच्छा उत्पन्न हुई, अतः जब तक तुम मंदिर नहीं चले जाते तब तक आकुलता है किन्तु मंदिरमें पहुँचनेपर एक शान्ति मिल गई। किस बातकी शान्ति मिल गई कि उस समय हमें मंदिर जाना है, यह पुरानी इच्छा नहीं रही बस इसकी शान्ति है इसी तरह जितने भी काम हैं उन सब कामोंके होनेका सुख नहीं है, उस इच्छाका जो अभाव है उसका ही सुख है।

इच्छावोंके विकल्पका दृष्टान्त—एक दृष्टान्त लो कि आपके पास एक पत्र आया कि डेढ़ बजेकी गाड़ीसे वाम्बेमेलसे आपका फलाँ मित्र गुजर रहा हैं, जा रहा है, आप मिलें। आपका वह मित्र है मिलते ही आप मित्रसे मिलनेकी इच्छाकी प्रेरणसे प्रेरित हो कर सब काम जल्दी कर रहे हैं, एक एक दो दो घण्टे की जल्दी मचा रहे हैं। यह काम करलें, वह काम करलें, कभी वहाँ जाना है, इस प्रकार आप पर आकुलताका भूत सवार हो गया हैं। वह स्टेशन पर पहुँचता है, बाबू से पूछता है कि गाड़ी लेट तो नहीं हैं ? बाबू बोले कि अभी १५ मिनट लेट है। लेटका नाम सुनकर वह दुःखी हो जाता है। जब गाड़ी स्टेशनपर आ गई तो उत्सुकतासे डिब्बे जाकर देखता है क्योंकि उसकी इच्छा प्रबल हो रही हैं। और जब डिब्बे के अन्दर उस मित्रसे मिले तो वह सुखका अनुभव करता। अब निर्णय कीजिए कि क्या उसे अपने मित्रसे मिलनेका सुख है ? वह सुख है मित्रसे मिलनेकी इच्छाके अभावका

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

उस इच्छाके अभावसे ही सुख हुआ। अभी मित्रके पास ५ मिनट भी मिले नहीं हुए कि खिड़कियोंसे झट झाँकने लगता है कि गार्डने अभी हरी झंडी तो नहीं दिखाई ? उसके गाड़ीसे हटनेकी आकुलता उत्पन्न होती है। भैया ! आप निर्णय कीजिए कि यदि उसे मित्रके मिलनेसे सुख होता तो गाड़ीपर बैठा ही क्यों न रहता, क्योंकि सुख ही तो मिलता है, सुख लेता रहे, वहीं बैठा रहे, पर भैया बैठता नहीं, मित्रसे मिलता नहीं इसीसे यह सिद्ध है कि मिलनेसे सुख नहीं है किन्तु मिलनेकी इच्छा नहीं रही उसका सुख वह अनुभव करता है।

विकल्प क्लेशों की जननी—क्लेश दूसरोंसे उत्पन्न किए हुए नहीं होते किन्तु उनकी जननी उनकी स्वयंकी इच्छाएँ हैं। कल्पनाएँ स्वयं बनाकर दुःखी हो रहे हैं। अभी घर जाना है, दुकान पहुँचना है, अमुक अमुक काम करना है, यह विकल्पोंका भार है, अतः निष्कर्ष यह है कि इच्छाके अभावका ही नाम सुख है अर्थात् कोई काम करना न रहनेसे जो इच्छाका अभाव है वही आनन्द है। अभी कुछ काम करने को पड़ा है, इस भावमें क्लेश है कर्तृत्वके आशयसे क्लेश होता है।

कृतकृत्यताका भावार्थ इच्छाका अभाव—कृतकृत्यता किसे कहते हैं ? सब काम कर लिया है जिसने वह कृतकृत्य है, उसका जो भाव है उसको कहते है कृत कृत्यता। पूर्णकृतकृत्य तो सिद्ध है इसका भावार्थ यह है कि जिसको अब काम करनेको नहीं पड़ा है, वही कृतकृत्य है एक मकान बनवाना था, वही आकुलता थी पर जब बन गया तो बड़ा सुख माना, विश्राम माना। वह सुख कहाँ से आ गया ? मकान बना लेनेका सुख है कि उस मकानके बनवानेकी इच्छाके अभावका सुख है ? मकान बनवा लेनेसे सुख नहीं हुआ, किन्तु उसके मकान बनवानेका भाव नहीं रहा, याने मकान बनवानेकी इच्छाका अभाव हुआ तो उसका सुख है। खूब अन्तरंगमें अनुभव करो और खूब विचारो तो यह अपने आप साफ मालूम होता है। कितने ही लोग ऐसे हैं जो मकान बनवाये बिना भी सुखी हैं। उनके मनमें यह भाव है कि मुझे कोई काम करनेको नहीं पड़ा है। सम्यग्ज्ञान होनेपर एक पदार्थ दूसरे पदार्थका कुछ नही करता है, यह प्रतीति होती है। ऐसा सम्यग्ज्ञान होनेपर अन्तरंगमें यह भाव बनता है कि पर वस्तुके करनेका उसे काम कुछ नहीं पड़ा है, इस भावसे ज्ञानमें सतत आनन्द रहता है भले ही चरित्रमोहकृत करनेका राग होता है और कर्ता धर्ता है पर स्वाद तो अंतरंगमें जो है उसको आ रहा है। इसीको कहते हैं कृतकृत्यता। सम्यग्दृष्टि तो आंशिक कृतकृत्य है और अरहंत सिद्ध भगवान पूर्णतया कृतकृत्य है। कुछ काम करने को नहीं है ऐसे भावका नाम कृतकृत्यता है।

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

कृतकृत्यताके अभ्युदयका उपाय—कृतकृत्यता शुद्धनयकी दृष्टिके प्रतापसे प्रकट होती है, और शुद्धनयकी दृष्टि यही है, एकको देखना, एककी बात तकना, इसमें भैया ! यह भी बात है कि परका विरोध न करके एकको देखना। क्या पर नहीं है ? है, मगर इस प्रकार आत्महितको देखनेके लिए लगे हैं तो व्यवहार दृष्टि न करना, निश्चयका आलम्बन करना। किन्तु सर्वथा क्या व्यवहार नहीं है ? क्या शरीरमें यह आत्मा रुका नहीं है ? व्यवहारसे देखो, रुका है पर ऐसी स्थितिमें भी हमारी पारदर्शिनी दृष्टि हो सकती है सबकोपार करके। अतः स्वरूपको देखो, वह तो वह ही है, वहाँ कोई दूसरा नहीं है, ऐसी इस दृष्टिमें यह आत्मा न बँधा है, न छुवा है, न नाना है न मिला हुआ हैं, किन्तु नित्य एकस्वरूप है, ऐसा देखना यह एक पारदर्शिनी दृष्टि है। इस शुद्ध दृष्टिसे मोहका विनाश होता है। सो ऐसा यह शुद्धनय स्वरूप आत्मा इस दृष्टिमें ही प्राप्त होता है।

शुद्धनयका दृष्टिबल—शुद्धनयकी दृष्टिमें परपरिणतिका पराश्रय न होनेसे उच्छेद होता है अर्थात जो परके प्रति झुकाव रखकर विकल्पजाल बन जाते हैं उनका उच्छेद होता है। सो परपरिणतिका उच्छेद होनेसे कर्ता, कर्म आदि भेदोंकी भाँतिका विध्वंस होता है सबसे पहिले तो परस्परमें एक दूसरे पदार्थके साथ जो कर्ताकर्मकी बुद्धि बनी है उसका ध्वंस करना है। उस लड़केको यों बनाता हूँ, इस दुकानको यों चलाता हूँ। मैं किसी परवस्तुकी यों परिणति करता हूँ पहिले तो इन भावोंका ध्वंस करना है तो अपने आपमें यह खोज होने लगेगी कि लो स्वयं ही तो मैं करता हूँ और मेरे ही द्वारा करता हूँ मेरी परिणति द्वारा मैं ही प्राप्य हूँ, सो मैं ही कर्ता हूँ, मैं ही कर्म हूँ और मैं ही करण हूँ व मैं ही कर्मफल हूँ।

कर्ता, कर्म खोजनेकी क्रिया कौन ?—वह क्रिया कौन सी है जिस क्रियाके लिए अपने आपमें कर्ता कर्म आदि खोजे जाते है। वह क्रिया हैं जानन क्रिया, अर्थात् मैं जानन हूं, मैं जानता हूँ, किसको जानता हूं ? ज्ञान एक गुण है और उसकी क्रिया जानन क्रिया है। जानन क्रियाका जो भी प्रयोग होता वह ज्ञान गुणमें होगा, अन्यत्र नहीं होगा। तो जानन क्रियाका प्रयोग ज्ञान गुणपर ही हुआ। ज्ञान हमारा आत्मप्रदेशमें हैं तब जानन क्रियाका असर आत्मप्रदेशमें हुआ, अर्थात् जाना तो अपने आपको जाना, मैं जानता हूँ। किसको जानता हूं ? इस जानते हुए को जानता हूं। जैसे सामने ऐना है और पीछे दो चार लड़के खड़े हैं, कोई बालक हाथ मटकाता है, कोई पैर मटकाता, कोई अन्य-अन्य क्रियाएँ करता मगर हम केवल ऐनाको ही देख रहे हैं। हम ऐनाको ही देख रहे हैं और बताते हैं कि इस लड़केने हाथ हिलाया, इस लड़केने पैर हिलाया, हम उनको नहीं देख रहे हैं, हम तो केवल ऐनाको ही

To report error, please contact vikasnd@gmail.comVersion 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

देख रहे हैं। उस ऐनेको देखते हुए हम उन लड़कोंका ज्ञान करते जाते हैं। इस तरह हम केवल जानते हुए इस आत्माको जानते हैं, हम पर पदार्थोंको नहीं जानते। मैं जानता हूं इस अर्थविकल्परूप परिणमते हुए अपने आत्माको ही। आत्माको जानते हुए ही इन पर पदार्थोंका भी ज्ञान हम कर लेते हैं।

स्वयं में षट्कारकता—मैं केवल अपने आपको ही जानता हूँ, जानते हुएको जानता हूँ, वहाँ कोई पर-पदार्थ किसी जानन क्रियामें कुछ सहयोग देता हो, परिणतियोंको लगाता हो ऐसी बात नहीं है। जानते हुएके द्वारा ही जानता हूँ किस प्रयोजनके लिए जानता हूं ? वहाँ कुछ अन्य प्रयोजन है ही नहीं, बस जानन प्रयोजनके लिए जानता हूँ जैसे पूछा जाय कि ये बाहरमें पुद्गल द्रव्य हैं कि नहीं ? तो ये पुद्गल द्रव्य अपनी सत्ता रखते हैं। इन्होंने किस प्रयोजनके लिए अपनी सत्ता रखी है। ये अनन्तानन्त पुद्गल हैं, इन पुद्गलोंने अपनी सत्ता रखी है तो किस प्रयोजनके लिए रखी है ? इसकी सत्ता किस प्रयोजनके लिए है ? इसका क्या उत्तर होगा ? "है" रहनेके लिए इनकी सत्ता है उनका क्या प्रयोजन और हो सकता है। क्या इन पुद्गल द्रव्योंका बाहरमें कुछ प्रयोजन लगा है ? इस मिट्टीने क्या अपना प्रयोजन कर रखा है कि मैं ईट पत्थर महल बन जाऊँगी। क्या ऐसा प्रयोजन उस मिट्टीने बना रखा है ? यह परिणमन है, परिणमते हैं, किस लिए परिणमते हैं ? "है" बने रहने के लिए परिणमते रहते हैं। इससे आगे पुद्गलका क्या प्रयोजन ? यहाँ लौकिक और व्यावहारिक बातोंकी बात अलग है यहाँ तो वस्तुस्वरूपकी यह बात देखी जा रही है। यह आत्मा है और जानता है। यह किस प्रयोजनके लिए जानता है ? वास्तविक प्रयोजन तो बतलावो। किस प्रयोजनके लिए जानता रहता है ? भगवान सारे विश्वको जानते हैं। परमात्मा समस्त विश्वका ज्ञाता है, वह सब संसारको जानता है। किस लिए जानता है वह भगवान ? उनके जाननेका प्रयोजन क्या है ? उन्हें कहीं कुछ व्यवस्था बनाना नहीं, कोई विकल्प करना नहीं, कृतकृत्य हैं फिर भगवान किसलिए जानते हैं ? वे जाननेके लिए ही जानते हैं। बस जानन ही उनका प्रयोजन है जाननके आगे उनका प्रयोजन नहीं है। यहाँ प्रयोजनका अर्थ मतलब नहीं लगाना किन्तु सामान्य अर्थ लेना। इस जाननका फल क्या है ? इस जाननका फल जानते हैं इससे आगे उसका फल नहीं फल कहो या प्रयोजन एक ही बात है। तो यह मैं जानता हूँ। जाननेवालेको जानता हूँ। जानते हुए में जानता हूँ, जानतेहुए के द्वारा जानता हूं। ऐसा अपने आपमें अभेद कर्तृकर्मभाव है। फिर और आगे मर्ममें चलो तो जानते हुए को जानता हूँ। इसका क्या मतलब है ? वह जानन होना अलग चीज है क्या जिसको मैं जानता हूँ! जानते हुए के द्वारा जानता हूँ, क्या कर दिया ? किस ढंगसे कर दिया ? क्या कोई अलग बात है ? यह तो समझमें नहीं आया।

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

यह तो कोरी शब्द रचना सी हो गयी। वहाँ तो केवल जानननमात्र भाव है, जानन परिणमन है, वहाँ कर्ता कर्म भाव, ये सब कुछ नहीं है और परिणमन है। परके साथ कर्ताकर्म भाव जाननेकी बात अज्ञान दशामें लगायी थी, सो उस ही पद्धतिसे भीतरकी बात बताई जानी पड़ी।

लौकिक पुरुषोंको समझानेकी लौकिक भाषा :—लौकिक पुरुषोंको समझानेके लिए लौकिक भाषामें उनकी पद्धतिमें बोलना पड़ता हैं। यथा-भगवान अनन्त-सुखी हैं, पूर्णसुखी हैं तो भगवान क्या सुखी हैं? सुखी किसे कहा गया? ख के माने इन्द्रिय और सु के माने सुहावना लगे। इन्द्रियोंको जो सुहावना लगे उसे सुख कहते हैं। क्या ऐसा सुख भगवानके पास है? नहीं, वह तो शुद्ध पदार्थ हैं, उसे इन्द्रियोंसे तो सुख नहीं प्राप्त होता है। भगवानमें सुख नहीं हैं, भगवानके तो अनन्त आनन्द कह सकते हैं।

आनन्द और सुखका विश्लेषण :—आनन्दका अर्थ है कि सब ओरसे समृद्धि हो। इस समृद्धिके होनेको ही आनन्द कहते हैं। आनन्द तो आत्मा का गुण है, प्रभुमें उसका शुद्ध व पूर्ण विकास है। भगवानमें आनन्द है, सुख नहीं है। यहाँ प्रश्न किया जा सकता है कि सुख शब्दका तो बहुत जगह प्रयोग है अनन्त चतुष्टयमें बताया है ज्ञान, दर्शन, सुख और शक्ति। ठीक है,उस सुख शब्दका भावार्थ सुखसे नहीं है आनन्दसे है, किन्तु सुख चाहनेवाली दुनिया है, जगत है सो सुख चाहने वालोंको समझानेके लिए सुख शब्दका प्रयोग किया गया है। इसी प्रकार अभिन्न षट्कारककी व्यवस्था बतानेका प्रयोजन यही है कि भिन्न षट्कारकमें लगे हुए प्राणियोंको समझाना है। अज्ञानी कहता है कि देखो ना, इस गाली देनेवालेने गुस्सा कर दिया। तो जो भिन्न वस्तुमें कर्तृकर्मभाव लाए उसको समझानेको कहा जाता है कि गुस्साके बचन तो भाई निमित्तमात्र हैं, इसने अपने आपही गुस्सा बना लिया है। उस गाली देनेवालेने इसका गुस्सा नहीं बनाया है। इस तरह अभिन्न षट्कारक बताना पड़ा। अन्तमें तो यह अभिन्न षट्कारक भी नहीं ठहरता है। हूँ और जानता हूँ। जानना भी क्या है? कुछ उद्यम करना है या पुरुषार्थ करना है? या परिश्रम करना है? वह तो होरहा है मैं जानता नहीं हूँ, जानना तो परिणाम है, सो हो रहा है। जानते हुएको जानता हूँ, जानते हुएके द्वारा जानता हूँ, जानते हुएके लिए जानता हूँ। यह भी क्या? यह एक जाननमात्र परिणमन है, यह जाननमात्र भाव है। इस तरह अन्तमें ऐसा भी उपयोग हो जाता है कि कर्तृकर्म-भावका ध्वंस हो जाता है और फिर बड़ी ही जल्दी शुद्ध आत्मतत्वकी प्राप्ति हो जाती है।

जीवकी विचित्र परिस्थितिका चित्रण :—देखो भैया, बड़ी विचित्र परिस्थिति

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

है इस जीवकी। कभी तो इस जीवकी स्थिति ठीक ढंगपर आती है और फिर कभी बिगड़ जाती है, और सम्हालते सम्हालते फिर ठीक हो जाती है। ऐसी विकट स्थितियाँ इस जीवकी हैं। तो इसका उपाय बहुत अधिक करना है। शुद्ध ज्ञान स्वरूपके अभ्यासकी बहुत अधिक जरूरत है जिससे कि ऊटपटांगके झंझट उद्धत हो जानेकी बात टूट न पड़े।

अज्ञानीका अभ्यास :—यह अज्ञानी समझते समझते भी चूक जाता है। एक सेठके घरानेमें तीन लड़के थे। सब एकसे थे। शादी योग्य थे। तो सगाईके प्रसंगमें उनको देखनेके लिए नाई आया तो खूब तीनों बच्चोंको सेठने सजा दिया, इत्र लगा दिया, साफ सुथरे बना दिया, शृंगार कर दिया, गहनोंसे सजा दिया। वे तोतले थे, सो समझा दिया कि देखो मुखसे शब्द न निकलें। सब बच्चोंने कहा अच्छी बाट। जब नाई देखनेके लिए आया तो बड़ी प्रशंसा उन लड़कोंकी करने लगा। वाह लड़के तो बड़े ही सुन्दर हैं, गुणवान हैं, ऐसे लड़के तो मैंने कभी नहीं देखे। तो उनमें से अपनी प्रशंसा सुनकर एक बोला, अवी डंडन अंडन तो लगा ही नहीं है, तो दूसरा बोला अबे डड्डाने का कई तीं, तो तीसरा भी बोला, टुप। सब बच्चोंने उस नाईके सामने अपनी करतूत रख ही दी। देखो भैया! उन्हें समझा बुझाकर तो बहुत रखा था, मगर समय आया सो करतूत खुल गयी।

हमारा तोतला अभ्यास :—इतनी ही अड़चन हम आप तोतलोंको है, खूब अभ्यास करते हैं, पूजा करते हैं, स्वाध्याय करते हैं, जाप करते हैं, अध्ययन करते हैं, व्रत आदिक भी करते हैं, इतना सब कुछ करते हैं और कभी-कभी दृष्टि बराबर ठीक लगती भी है, इतना सब कुछ होते हुए भी विभाव परिणतिमें उतर आना, राग, द्वेष, मोह, मान, माया, लोभ आदि इन सब विपत्तियोंको प्राप्त करना बड़े खेदकी बात हैं। तो इनसे बचनेका उपाय सिवाय ज्ञानभावनाके और कुछ नहीं है। मैं ज्ञान मात्र हूँ और जितना जानना होता है उतना ही मेरा करनेका काम है। इससे आगे मेरा करनेका काम नहीं है। यह जाननमात्र आत्मा जाननके प्रदेशोंमें आनन्दका अनुभव करता है। इतना ही मात्र मैं हूँ, यही वस्तु मेरी है, इससे बाहर कोई वस्तु मेरी नहीं है। इस प्रकार अपनेको ज्ञानमात्र आत्मतत्त्वकी भावनासे पोसा जाय तो वे सब आपत्तियाँ निकल सकती हैं, नहीं तो जैसी शरीरकी स्थिति हैं वैसी ही आत्माकी स्थिति हो रही है हित व सार कहीं न निकला।

शारीरिक स्थिति :—कैसी है, शरीरकी स्थिति? खूब नहा लो, साबुन लगा लो, सब कुछ पहिन लो, मगर थूक निकल आए, नाक निकल आए, वायु निकल आए तो जैसे पहिले थे वही चीज हो गयी। अब वह नहा नहाया, शृंगार किया हुआ सब

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

कैसा रहा ? वह मलिनता तो सामने आ गयी, बाहर आ गयी, व्यक्त हो गयी। इस तनको सम्हालते सम्हालते भी यह देह अपनी प्रवृत्तिको नहीं छोड़ता। इसी तरह मोह या ज्ञान भावना के अभ्यस्त जन और थोड़े थोड़े धर्मके अभ्यासकी बातें सीखे हुए जन जैसे बार-बार अपनी दिनचर्या करते हैं, बोलते हैं, चाहते हैं, भावना भाते हैं, तिस पर भी विषयकषाय राग द्वेष ये मल व्यक्त हो ही तो जाते हैं। तो उस ज्ञानजलसे नहलवा धुवा देनेपर भी यदि भीतरमें राग द्वेष इत्यादिके मल व्यक्त हो जाते हैं। सो देखो भैया, धोया धुलाया सब बेकार हो जाता है।

ज्ञानभावके व्यापारकी प्रेरणा—अपने आपके भलेके लिए ज्ञानभवना में हमें कितना उद्योग करना चाहिए, कितना समय देना चाहिए ? सो भैया, बाह्य लगावों का मुकावला विचारकर गृहस्थीमें, बाहरी बातोंमें जहाँ जहाँ मन लगा, उनके मुकाबले इसको ज्ञानभावके पुरुषार्थमें कितना लगना चाहिए ? तो पूरा उत्तर तो यह है कि केवल इसमें लगना चाहिए और अन्य अन्य बातोंमें नहीं लगना चाहिए, पर यह बात गृहस्थीमें सम्भव नहीं है। तो यहाँ यह अपने आपमें विचार कर यह निश्चय कर लो कि अपने हितके कामोंमें कितसा अधिक लगना चाहिए। हाँ, जीवोंकी जीविकामें जितना समय रखो वह जीविकामें लगावो और वाकी समय उद्धारमें लगावो, परोपकारमें लगावो। गप्पों सप्पोंमें, बखेड़ोंमें जो व्यर्थका समय बीत जाता है उसमें अपनी जीविकाको सम्हालो और नहीं तो अपने उद्धारका पुरुषार्थ करो, परोपकार करो इतना तो होना ही चाहिए भैया ! अपनेको विवेकमें लगावो। परोपकारसे भी मंद कषाय होती है। वह भी एक तप है, वह भी उद्धारमें सम्मिलित है। इसलिए जीवोंको उद्धार का, परोपकारका अपना प्रोग्राम रहे, समय बर्बाद करनेसे समयको गप्प सप्पमें बितानेसे अपनी दुर्गति ही है यदि परोकार करो, जीवोद्धार करो तो यह बहुत बड़ी बात होगी। हम अपनेमें दयाका भाव लावें, बिचार करें।

भावनाओंकी प्रेरणा—ऐसी भावना बने कि मैं ज्ञान मात्र हूँ, ऐसी अनुभूति बने, ऐंसी दृष्टि बने, ऐसा ध्यान बने इसमें ही जितना समय गुजरे उतना ही तुम्हारे भलेकी ही बात है, इसके अतिरिक्त जो परकी बातें हैं ये सब यों ही चली जायेंगी। इनसे हित नहीं होगा। मैं ज्ञानमात्र हूँ, जाननमात्र हूँ, जानताभर हूँ ? इतना ही मेरा काम है। इससे आगे मेरे लेन देनका काम नहीं है। ऐसे इस अद्वैत स्वरूपको देखकर हम अपना हित कर सकते हैं।

गाथाका सार—सो आचार्य महाराज यहाँ यह कह रहे हैं कि इस प्रकार परपरिणतिका उच्छेद होनेसे कर्त्ता कर्म आदि भावोंका विनाश हो जाता है। और उससे अपने शुद्ध आत्मत्वकी प्रगति होती है। फिर जो शुद्ध चैतन्यमात्र निज तेज है

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

सहज है, उसमें ही ठहरना है। उसी अपनी सहज महिमाको प्रकट करलो तो सब झंझटोंसे मुक्ति हो सकती है। जैसे वायुका निमित्त पाकर पताका अपनेमें ही उलझ जाती है और अपने आपही सुलझ जाती है, इसी प्रकार यह जीव विकाररूप ज्ञान होनेसे तो उलझ जाता है, बाहरमें ही फस जाता है वही फिर सम्यक् ज्ञान होनेसे सुलझ जाता है। ये आत्मा जब शुद्धनयकी सृष्टि करते हैं तो उसके प्रतापसे पर परिणतिसे मुक्त हो कर कर्ताकर्मभावभ्रमसे दूर होकर अपने शुद्ध आत्माकी प्राप्ति करते हैं और उसमें ही ठहरते हैं। इससे वे सर्व संकटोंसे मुक्त हो जाते हैं।

द्रव्यविशेष—यहाँ तक द्रव्य सामान्यका वर्णन किया है अब द्रव्यविशेषका वर्णन प्रारम्भ हो रहा है, इसमें जीवोंका पुद्गलोंका और उनके निमित्त नैमित्तिक भावोंका, आदि आदि विषयोंका वर्णन चलेगा। इस बीचकी संधिको आचार्य महाराज जिन शब्दोंमें कह रहे हैं वह बहुत ही मर्मप्रदर्शक पद्धति है। वे कहते हैं कि द्रव्यसामान्यविज्ञाननिम्नं कृत्वेति मानसम्। तद्विशेषपरिज्ञानप्राग्भार: क्रियतेधुना॥

द्रव्य सामान्यके विज्ञानको मनमें नीचे रखकर अर्थात् जो भी ज्ञान आगे करें उस समय भी यह द्रव्यसामान्यका ज्ञान जड़में बनाये रहें ऐसा अभिप्राय बनाकर इस समय द्रव्यविशेषके परिचयका प्राग्भार किया जाता है। भैया! आचार्यश्रीके ज्ञान भण्डारकी महिमाको किताबमें शब्दोंमें कैसे व्यक्त की जावे। एक एक शब्दमें अतुल ज्ञानका रहस्य है। याने ऐसा चित्त बनाओ कि चित्तके ऊपर विशेषस्वरूपकी बात लगायी जा रही हो किन्तु उस चित्तके नीचे द्रव्यसामान्यका ज्ञान बना रहना चाहिए। प्राग्भार करना, प्राक्‌माने पहले, भार माने बोझ। प्राग्भारका अर्थ सजावट लगालिया जाय या ऊपरका बोझ। विशेषज्ञानके समय, द्रव्यसामान्यका ज्ञान जिस विज्ञचित्तके भीतर पड़ा हुआ है उस चित्तके ऊपर द्रव्यविशेषके ज्ञानका प्राग्भार किया जा रहा है। अन्य शब्दोंमें बोलिये उस ज्ञानका शृंगार किया जारहा है। इसमें भाव यह है कि देखो भाई! द्रव्यविशेषके चमत्कारको। समझनेके समय द्रव्यसामान्यकी जो नीति है उसे भूलना नहीं चाहिए। द्रव्यसामान्यकी नीति उसके ६ सामान्य गुण हैं—अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशवत्त्व और प्रमेयत्व स्वरूपको अभिप्रायान्तर्गत करना चाहिए उसे भूलना नहीं चाहिए। जैसे कोई व्यापारी बाहर व्यापार करने जाता है और बड़ा व्यापार करता है पर गाँठ में मूलधन छिपाये रहता है, परस्पर व्यापारिक वार्ताको करते हुए भी मूलधन को लुकाये रहता है।

द्रव्यसामान्यज्ञान ही मूलधनके समान उपकारी—द्रव्य सामान्यके परिज्ञानका मूलधन इस इस तरह काम देगा जैसे व्यापारी वर्ग व्यापार करते हैं। चतुर व्यापारी चादरके भीतर कोट, कोटके भीतर वास्कट, उसके भीतर जेब और उसके भीतर गाँठ

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

की कीमती चीज रखता है। उस कीमती चीजको वह जेबके भीतर कर लेता है जिसे लोग कहते हैं कि धनकी गर्मी है, उससे फिर वह एक खुला हुआ भाव बनाकर लोगोंसे जैसी बात करता है। इसी तरह द्रव्यसामान्यके ज्ञानको अपनी गाँठमें लगाकर, छिपाकर बनाकर या नीचे करके विशेष ज्ञान करिये ताकि आपको उस ज्ञानसे वस्तुकी स्वतंत्रता और वस्तुकी स्वरूपसीमा आदि भानमें रहें ऐसी विधिसे आप विशेषका वर्णन करते जाइये। ऐसी भावना श्रोतावोंकी बनी रहे, यह इस श्लोकमें प्रेरणादी गयी है, ताकि वेसद्दर्शनपथसे विचलित न हो सके।

गाथाका भाव द्रव्योंकी स्वतंत्रता—भाव यह है कि किसी भी द्रव्यमें जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश कालमें, सब द्रव्योंमें विशेष विशेष गुणोंके साथ सामान्य गुण रहता ही है। साधारण ६ गुणों का सबमें रहना साधारण रहना है, सामान्यतया रहना है। अतः विशेष गुणोंके वर्णनके समय भी सामान्य गुणों को न भूलिये। गुप्त ज्ञान गुप्तकी गुप्तरूपसे रक्षा करता है।

जीव द्रव्यका सामान्य ज्ञान—जीव है तो सामान्य गुण भी हैं, वे अपने स्वरूपसे हैं परके स्वरूपसे नहीं हैं, इसी कारण सब द्रव्य निरंतर परिणमते रहते हैं। द्रव्य अपनेमें ही परिणमता है, दूसरेमें नहीं परिणमता और वह अपने प्रदेशरूप में है तथा किसी न किसीके ज्ञानके द्वारा ज्ञेय है। ये ६ बातें जीवमें भी हैं।

पुद्गल द्रव्यका सामान्य ज्ञान—यह स्कंध पुद्गल द्रव्य नहीं है, यह पुद्गल द्रव्यकी व्यञ्जनपर्याय है। पुद्गल द्रव्यसे आशय अणुसे है, स्कंध पुद्गल द्रव्य नहीं है। पुद्गल द्रव्य, पदार्थ स्वयं कुछ नहीं दिखते। द्रव्यका ज्ञान करनेके लिए शुद्ध पर्यायके रूपमें अपनी कल्पनाएँ बनायी जायें तो द्रव्यके स्वरूपका अनुमान होता है। इस कारण पुद्गल द्रव्यको समझानेके लिए अणुपर दृष्टि लगावो। अणु भी कारणरूप और कार्यरूप अथवा द्रव्यरूप और पर्यायरूप है। परमाणुको द्रव्यमुखेन देखनेपर (१) वह परमाणु है। (२) अपने वस्तुस्वरूपसे है, (३) निरन्तर अपनी परिणमन शक्तिसे परिणमता रहता है, (४) अपनेमें ही परिणमता है परमें नहीं परिणमता है, (५) वह अपने प्रदेशोंको ही लिए हुए है, (६) किसी न किसी ज्ञानका ज्ञेय है। इस प्रकार पुद्गल द्रव्योंमें भी उसके सामान्यगुण घटित हैं।

धर्म द्रव्यका सामान्य ज्ञान—धर्मद्रव्य लो, धर्मद्रव्य लोकाकाशमें सर्वत्र व्यापक है। यहाँ वहाँ इस कमरेमें भी सर्वत्र निरन्तर व्यापक है। वह धर्म द्रव्य एक है, रूप, रस, गंध, स्पर्शसे रहित है और जीव पुद्गल गमन करें तो उनका गमन करनेमें निमित्तभूत है। जैसे मछलीके चलनेमें जल सहायक है, याने मछली गमन करे तो जल

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

गमनमें निमित्तभूत है, इसी प्रकार धर्म द्रव्य है, यह पुद्गल जीवके क्षेत्रान्तर गतिरूप क्रियामें निमित्त है। (१) धर्मद्रव्य समस्त लोकाकाशमें व्यापक एक पदार्थ है, वह है। (२) अपने स्वरूपसे है, परके स्वरूपसे नहीं है, (३) निरन्तर स्वपरिणमन-शक्तिसे परिणमता रहता है। (४) अपने आपमें परिणमता है, परमें परिणमता नहीं है। (५) इनका भी निजी प्रदेश है, आकार है। आकारके माने वह स्वयं अपने आपको प्रदेशोंमें ओकोपाई किए हुए है, वह अपने निजी क्षेत्र प्रदेशमें है। (६) वह किसी न किसी ज्ञानका ज्ञेय है अर्थात् प्रमेय है।

अधर्म द्रव्यका सामान्य ज्ञान—इसी प्रकार अधर्मद्रव्य है वह भी समस्त लोकाकाशमें व्याप्त है। अमूर्त है उसमें रूप, रस, गन्ध स्पर्श आदि नहीं है और चलते हुए जीव पुद्गल ठहरते हैं तो उनके ठहरानेमें निमित्तभूत है। जैसे पथिक ग्रीष्ममें चल रहा है, गर्मी लग रही है, उसका किसी विश्रामवाली जगहमें ठहरनेका भाव है, रास्तेमें मार्गके निकट एक छायावान वृक्षको देखता है और उसे पाकर ठहर जाता है, जैसे ठहरनेवाले मुसाफिरको पेड़की छाया निमित्तभूत है इसी प्रकार ठहरनेवाले जीव और पुद्गलको ठहरनेमें अधर्म द्रव्य निमित्तभूत है व सर्वत्र व्यापक है। (१) वह अधर्म द्रव्य है। (२) अपने ही स्वरूपसे है परके स्वरूपसे नहीं है। (३) निरन्तर परिणमता रहता है। (४) अपनेमें परिणमता है, परमें नहीं। अपने गुणोंसे परिणमता है, परके गुणोंसे नहीं, (५) उसके भी प्रदेश हैं, जितना लोकाकाशका प्रमाण है उतना ही धर्म द्रव्यके विस्तारका प्रमाण है। (६) किसी न किसीके ज्ञानके द्वारा प्रमेय है।

आकाश द्रव्यका सामान्य रूप—इसी प्रकार आकाश द्रव्य एक ऐसा पदार्थ है जो समस्त द्रव्योंको अवगाहन किए हुए है, हम जहाँ बैठे हुए हैं, ठहरे हुए हैं, स्थान पाये हुए है, सर्वत्र आकाश है। आकाश भी दृश्य चीज नहीं है, अमूर्त है मगर कुछ-कुछ ऐसा स्पष्ट लगता है कि प्रायः पूछनेपर कि आकाश कहाँ है ? तो सभी बतला देते हैं झट कि आकाश यह है। धर्म द्रव्य और अधर्म द्रव्यके बारेमें पूछो तो उसके लिए कोई हाथ नहीं उठा सकता, जैसे आसमानके बारेमें हाथ उठा देते। धर्म द्रव्य, और अधर्म द्रव्य भी वैसा ही है, जैसा आसमान है ! आकाश भी दिखनेकी चीज नहीं है जिसे देख कर कह देतेकि यह आकाश है वह आकाश नहीं, वह तो पुद्गलका वर्ण है। आकाश तो दिखता नहीं है मगर ऐसा लगता है कि यह आकाश है। अभी कह भी देते हैं कि देखो इस हालतमें आकाश है, यह कल्पनाओंसे बताई बात है, यह आकाश नहीं है, वह तो धर्म अधर्म द्रव्यकी तरह अमूर्त है। वह आकाश भी द्रव्य है। अपने स्वरूपसे है परके स्वरूपसे नहीं है। यह भी निरन्तर परिणमता रहता है। ये धर्म,

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

अधर्म, आकाश, काल निरन्तर परिणमते रहते हैं, यह बात भी विशद समझने में नहीं आ सकती है, अमूर्त चीज है मगर युक्ति उनका सद्भाव बतलाती है

आकाश द्रव्यमें ६ साधारण गुण—सर्व द्रव्योंमें ६ साधारण गुण होते हैं। सो आकाशमें भी परखो (१) आकाश है (२) वह आकाश अपने स्वरूपसे है, परके स्वरूपसे नहीं है। (३) वह निरन्तर परिणमनेवाला द्रव्य है। अगर नहीं परिणमता है तो है क्या ? "है" नहीं रह सकता है, सत्त्व नहीं रह सकता है अतः निरन्तर परिणमता रहता है। (४) अपनेमें ही परिणमता है दूसरेके नहीं परिणमता व अपने ही गुणोंसे बदलता है, परिणति करता है, दूसरे पदार्थोंके गुणोंसे परिणति नहीं करता है। (५) इसका भी प्रदेश है। किस द्रव्यकी चर्चा चल रही है ? आकाश द्रव्यकी। इस आकाश द्रव्यका विस्तार कितना है, कितनेमें फैलता है ? असीम है, अनन्त प्रदेश हैं। आकाशमें कल्पनाओंसे कोई किसी भी दिशामें दौड़ लगाए, कितना भी पहुँच जाये पर वहाँसे भी आगे कहीं कितना आकाश बड़ा है ? अनन्त बड़ा है। कल्पनाएँ करो कि अब यहाँ तक तो आकाश है और बाकीमें क्या आकाश नहीं हैं। यदि आकाश नहीं है तो फिर क्या है? मकान बना है, कि पहाड़ बना है कि क्या बना है? कुछ नहीं बना है। कुछ नहीं बना है ? वह तो फिर वही आकाश है और बना है कुछतो आकाशमें ही बना है, आकाश असीम है, धर्म, अधर्म आकाश द्रव्य ये तीनों एक-एक द्रव्य हैं, अखण्ड हैं, इनका भेद नहीं है, इनकी संख्या नहीं है, आकाशके लोकाकाश अलोकाकाशपनकी जो भिन्नता है लह औपाचरिक भेद है। आकाश द्रव्य एक है, जितने आकाशमें ६ द्रव्य रहते हैं याने पाँचो द्रव्यभी रहते हैं उतने आकाशका नाम लोकाकाश है, और उससे परे आकाशका नाम अलोकाकाश है, पर आकाशके भेद नहीं होंगे। जिस किसी जगह कोई स्थान बना दिया, बाउण्डरी खींच दी तो यह हो गया कि यह जगह इनकी है और यह इनकी है इस प्रकार दो भेद हो गए मगर ये आकाशके भेद नहीं हुए न आकाशके भेद होंगे। यह भेद औपचारिक है। आकाश अनन्तप्रदेशी है और (६) वह प्रमेय है।

काल द्रव्यके समान्य स्वरूपकी सिद्धि—इसी प्रकार काल द्रव्य है, काल द्रव्य एकप्रदेशी है, लोकाकाशमें एक-एक प्रदेश हैं, एक-एक प्रदेशपर एक-एक कालाणु है वे अपने प्रदेशमें रहनेवाले द्रव्यके परिणमनके निमित्तभूत हैं इसलिए असंख्यात कालाणु हैं। (१) वे काल द्रव्य भी हैं (२) अपने स्वरूपसे है परके स्वरूपसे नहीं हैं। (३) निरन्तर परिणमते रहते हैं। (४) अपने ही गुणप्रदेशसे परिणमते हैं परके गुण प्रदेशसे नहीं परिणमते हैं। (५) इसका भी प्रदेश है, एक प्रदेश ही सही इसका आकार है, वही इसका क्षेत्र है। (५) किसी न किसीके ज्ञानके द्वारा प्रमेय है।

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

अलोकाकाशके परिणमनका निमित्त :—यहाँ कोई अगर ऐसा प्रश्न करे कि आकाश द्रव्य तो असीम है, काल द्रव्य तो लोकाकाशमें ही है तो लोकाकाशके बाहरमें जो आकाश है क्या वह अपरिणामी है ? वहाँ काल द्रव्य तो हैं नहीं, फिर अलोकाकाश कैसे परिणमता रहता है ? उत्तर उसका यह है कि आकाश द्रव्य एक अखण्ड है। उस आकाश द्रव्यके परिणमनमें निमित्तभूत काल द्रव्य हैं, काल द्रव्य यहीं हैं पर काल द्रव्यका निमित्त करके परिणमनेवाला जो आकाश द्रव्य है वह अपने सर्व प्रदेशोंमें परिणमता है, क्योंकि आकाश भिन्न भिन्न नहीं हैं, अखण्ड द्रव्य है, निमित्तभूत काल, उसके सान्निध्यमें चाहिए, पूरे विस्तारके समान चाहिए सो नहीं। जिस प्रकारका निमित्त बनता है वही उसका सान्निध्य कहलाता है। जैसे बहुत बड़ा बर्तन है और अग्नि एक किनारे जल रही है तो सारे बर्तनका पानी गर्म हो जानेमें निमित्तभूत है वही सान्निध्य कहलाता है। कितना ही निमित्त ऐसा कहलाता है जो सामने नहीं है और निमित्तभूत कहलाता है, तो उनके उस ढंगका होना ही सान्निध्य कहलाता है। सान्निध्यका मतलब पास आनेसे नहीं है या चारों तरफ होनेसे नहीं है। काल द्रव्यका निमित्त पाकर अखण्ड आकाश परिणमता है।

गर्भित सामान्य विशेषका अवधारण—इस प्रकार छहों द्रव्योंमें छह साधारण गुण होते ही हैं। उन साधारण गुणोंके होते हुए द्रव्योंमें लक्ष्यरूप असाधारण गुण रह सकते हैं और साधारण गुणके रहते हुए द्रव्योंमें साधारण गुण रह सकते हैं। ऐसा इनका अविनाभाव है। इसलिए द्रव्य सामान्यके ज्ञानको अपने मनके नीचे बनाए रखकर विशेष द्रव्योंका वर्णन सुनना, जैसे किसी घटनाका वर्णन करते हैं कि देखो इतनी मूल बात चित्तमें जमाये रहना, फिर बात सुनना। क्योंकि, वह जितनी भी बातें करेगा उन सब बातोंमें मूल बात उसके काममें आवेगी, करेन्ट देगी, इसलिए मूल बातपर पहिले बल दिया जाता है कि इसको हृदयंगम करके फिर हमारी बात सुनो। इस प्रकार द्रव्यसामान्यकी बातको मनमें हृदयंगम करके अब विशेष द्रव्यके परिज्ञानका प्राग्भार करना अर्थात् विवरण करना। इस प्रकार १२६ वीं गाथा तक द्रव्यसामान्यका परिज्ञापन हुआ, ज्ञापन हुआ, जताना हुआ कि द्रव्य सामान्य यह है। अब आगे की गाथामें द्रव्य विशेषका वर्णन किया जायगा।

दव्वं जीवमजीवं जीवो पुण चेदणोवओगमओ।
पोग्गलदव्वप्पमुहं अचेदणं हवदि य अज्जीवं ॥ १२७ ॥

द्रव्यविशेषका विवेचन :—अब तक द्रव्य सामान्यका वर्णन हुआ, अब द्रव्य विशेषका प्रज्ञापन करना है। ज्ञापन माने जताना और प्रज्ञापन माने प्रकृष्ट रूपसे अथवा द्रव्यको विस्तारसे जताना। यहाँ जब द्रव्यको विशेषरूपसे माननेको उपयोग

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

हुआ तो सबसे पहिले जो भेद निकला वह जीव और अजीवका भेद निकला, अर्थात् द्रव्य दो प्रकारके हैं। (१) जीव और (२) अजीव। जीव और अजीव इस तरहसे दो भेद निकालनेके प्रयोजन हैं अजीवसे हटना और जीवमें लगना। अजीव क्या चीज है? तो जितने दिखनेमें आनेवाले समस्त स्कंध हैं वे अजीव हैं और जिसमें दिखने की योग्यता ही नहीं ऐसे सूक्ष्म स्कन्ध अजीव है, परमाणु अजीव हैं, और अमूर्त जो धर्म अधर्म, आकाश व काल द्रव्य हैं वे भी अजीव हैं, यह शरीर भी अजीव है, द्रव्य कर्म भी अजीव हैं और द्रव्य कर्मोंको निमित्तमात्र पाकर अपने आपकी आत्मामें जो राग द्वेषादिक तरंगे होती हैं वे भी अजीव हैं। न जीवः इति अजीवः। यहाँ ६ साधारण गुणों सहित द्रव्यके भेदमें अजीवका प्रकरण है सो यह अवधारण करना कि पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये पाँच द्रव्य अजीव हैं।

रागद्वेषादिककी अपेक्षित विवक्षा :—जीवका अर्थ है एक ज्ञायक स्वभाव। रागद्वेषादिक भाव यद्यपि जीवके परिणमन हैं, फिर भी वे स्वभावज नहीं हैं, स्वरसतः अपने आप अपने ही स्वभावके कारण उठे हुए भाव नहीं हैं। इसलिए उन्हें परभाव कहते हैं। कर्मके उदयसे उत्पन्न जो भाव हैं वे पर हैं, मेरे नहीं हैं। ये मेरे नहीं हैं, यह हुआ निश्चयनय और विवक्षित एकदेश शुद्ध निश्चयनयसे क्या हैं? निश्चयनयदृष्टिसे जिस पदार्थमें जो स्वभाव है वह उस पदार्थमें निरखा जावे और विवक्षित एकदेश शुद्धनिश्चयदृष्टिमें, जिसको शुद्ध देखनेकी दृष्टि है उसे तो भले प्रकारसे शुद्ध रहने ही दिया जाय फिर इस स्थितिमें जब यह पूछा जाता है कि रागादिक भाव किसके हैं? तो कहा जाता है कि ये परके है, पौद्गलिक हैं। पूज्य श्री जयसेन महाराजकी टीकाका अवलोकन कीजिए जिसमें निश्चयनयसे रागादिक भाव पौद्गलिक हैं ऐसा विवेचन है, अब देखो कितना अन्तर पड़ गया है? उसीमें यह बताया है कि रागादिक भाव जीवोंकी चीज है किन्तु यह भी जानते हैं कि अशुद्ध-निश्चयनयमें और विवक्षित एकदेश शुद्धनिश्चयनयमें यह बात आती है कि रागादिक पौद्गलिक हैं। ज्ञानीकी कला बड़ी स्पष्ट कला है। सब कलावोंका उपयोग करते हैं ज्ञानी, निश्चयकलाकी सिद्धिके लिये।

परमशुद्ध निश्चयनयकी विवक्षा—परम शुद्ध निश्चयनयसे पूछा जाय कि रागादिक आत्मीय हैं कि पौद्गलिक हैं? उत्तर अजीव हैं, ये जीव नहीं हैं। जीव तो एक ज्ञायक स्वभाव है, वितर्क विचार छुटपुट ज्ञान जो उठता है, यह भी जीव नहीं है, यह भी अजीव है। दृष्टि यहाँ यह है कि ज्ञायक स्वभाव है सो जीव है। जो ध्रुव है वह पदार्थ है। जीव पदार्थ क्या हैं? जो ज्ञायक स्वभाव है सो जीव पदार्थ हैं। इस

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

दृष्टिको अन्ततक नहीं छोड़ना है, जिसे जीव बताया जारहा है। ये छुटपुट ज्ञान वितर्क विचार आदि भी अजीव हैं। जीव तो ध्रुव ज्ञायक स्वभाव है।

ज्ञायक और ज्ञेय—अब इस प्रसंगमें चले ज्ञायक और ज्ञेय। यहाँ ज्ञेयका मतलब पर सत्से नहीं लेना है, यह पर सत्, पर पदार्थ वास्तवमें ज्ञेय नहीं है, वास्तव में ज्ञेय तो ज्ञेयाकारपरिणति है। जैसे सामने ऐना हैं और पीछे बहुतसे पक्षी है तो उस ऐनाको देखते हुए ही हम सब पक्षियोंका वर्णन कर सकते हैं। अब वह पक्षी उठा, अब वह भाग गया, इस तरहसे हम वहाँ साक्षात् पक्षियोंको जान रहे हैं कि ऐनाके परिणमनको जान रहे है? साक्षात तो दर्पणके परिणमनको जान रहे हैं, हम उस ऐनाके परिणमनको जान रहे हैं और पीछेकी बातको हम वर्णनमें ले सकते है। इसी तरह हम सव जीव सदैव निजके ज्ञेयाकारपरिणमनको जानते हैं और उस ज्ञेयाकारपरिणमनको जानते हुए हम उन सब द्रव्योंकी व्याख्या करते हैं जिसके अनुरूप यह ज्ञेयाकारपरिणमन हुआ। तब ज्ञेय क्या चीज है? ज्ञेयाकार आत्म-परिणमन। वह है ज्ञेय और ज्ञायक है आत्मा। इन दो बातोंमें जीव कौन है और अजीव कौन है? जो ज्ञायक स्वभाव है वह जीव है और जो ज्ञेयाकार परिणमन है वह अजीव है। इस दृष्टिको लेकर चलनेसे सब बातें ठीक जचती चली जावेंगी।

ज्ञायक ज्ञेयमें आश्रवादि—ज्ञायकमें ज्ञेय आना सो तो आश्रव है और ज्ञायकमें ज्ञेयका बंधना बंध है और ज्ञायकमें ज्ञेयका न आना सो सम्वर है और ज्ञायकमें से ज्ञेयका खिरना सो निर्जरा है और ज्ञायकमें ज्ञायक रूप ही रहना सो मोक्ष है। यह बात साधारण व्याख्याकी नहीं कह रहे हैं, देखो मोटे रूपमें अपनी हालतपर नजर करलो, हम जो परतन्त्र बने हैं बह इसलिए बने हैं कि हमने ज्ञानमें, स्नेह परिवारको ले लिया। हमारा उन परिवारके जनोंकी ओर लक्ष्य है, स्नेह है। हमारे उपयोगमें परिवारके लोग आये यह तो हुआ आश्रव और हमारे ज्ञानमें परिवार ही समाया हुआ है, निकल नहीं पाता है, उसको पकड़ कर रह गये हैं यह हुआ बन्ध, और हमारे ज्ञानमें परिवारके लोग न आयें तो यह लो हो गया संवर। इन शब्दोंका सर्वतोमुखी अर्थ नहीं लगाना। जिस प्रकरणका सार तत्त्वों कह रहे हैं उस प्रकरणका सार तत्व लगाना। ४-५ प्रकारके सप्त तत्तोंका वर्णन चल सकता हैं। ज्ञान यदि परिवारसे हटने लगा तो यह हो गया निर्जरा और यदि परिवारका ज्ञान न आये, केवल ज्ञायक रहे तो मोक्ष है। इस तरहका जो प्रकरण हैं कि परिवारका ज्ञान ही न आवे वही इस प्रकरणका सर्वतोमुखी मोक्ष है। भिन्न-भिन्न प्रकरणमें भिन्न-भिन्न प्रकारसे इस सप्त तत्त्वों को देखना चाहिये।

ज्ञान ज्ञेय सम्बन्धी आस्रवादिक :—ज्ञानमें ज्ञेय आया सो आश्रव है और ज्ञान

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

से ज्ञेय रुक गया सो सम्वर है, ज्ञानसे ज्ञेय खिरा सो निर्जरा है और ज्ञानमें ज्ञान ही रहे सो मोक्ष है। जिसे कहते हैं दर्शन और ज्ञानके उपयोगोंका एक साथ रहना। दर्शनमें ज्ञेयाकारका ग्रहण नहीं है, ज्ञानके ज्ञेयाकारका ग्रहण है। ज्ञेयाकार होता तो रहता है निरन्तर, पर जिस समय ज्ञेयाकारको ग्रहण किया जाता है उस समय कहा जाता है ज्ञानोपयोग और ज्ञ ेयाकारको ग्रहण नहीं करता तो यह चैतन्य उस समय दर्शनोपयोग कहलाता है। यह चीज हम संसारी जीवोमें क्रमसे होती हैं,। भगवानमें ज्ञ ेयाकारका ग्रहण करना ज्ञ ेयाकारका न ग्रहण करना एक साथ चलता है। ऐसी शुद्ध एक दशाही है दर्शनोपयोगमें एक ज्ञायक स्वरूप निज आत्माका निर्विकल्प प्रतिभास हैं। जब भेदव्याख्या करते हैं तो तल्लीनता चरित्र गुणका काम है और दर्शन गुणका काम ज्ञायक स्वरूप निज आत्मतत्त्वका प्रतिभास हैं। दर्शनमें कितनी बातें आयीं कि ज्ञानसे जितना जो कुछ जाना और ज्ञानसे जितना यहाँ परिणमन हो चुका उस परिणमन सहित आत्मप्रदेशका प्रतिमास हो तो वह दर्शनका काम है सब समझलो यह दर्शन ज्ञानसे कम नहीं रहा।

दर्शनोपयोग व ज्ञानोपयोगका दृष्टान्त - जैसे एक कथानक है कि राजासाहब कहीं बाहर चढ़ाईपर गए, वहाँ दूसरे राजाको जीत लिया। वहाँकी राज्य व्यवस्थामें लग गए, कई दिन हो गए। अब घरकी सब रानियोंको पत्र लिखा कि जिसको जो चीज चाहिए वह लिखे, उस चीजको लानेकी कोशिश जरूर की जायगी। रानियाँ सैंकड़ो थीं, किसीने लिखा कि हमें अमुक वस्तु चाहिए, हमें साड़ी चाहिए, किसी रानीने लिखा कि आभूषण चाहिए, किसीने कुछ लिखा, किसीने कुछ, पर छोटी रानीने अपनी पत्रमें केवल १ का शब्द लिख दिया और नोचे दस्तखत कर दिया। राजाने पत्र खोला, देखा कि ठीक, जो भी पत्र देखें ठीक, पर छोटी रानीका पत्र मिला तो मन्त्रीसे पूछा कि इस १ का क्या मतलव है? मन्त्रीने कहा कि इस रानीका कहना है कि हमें तो केवल एक आप चाहिए, धन बैभव, गहने हमें कुछ नहीं चाहिए हमें तो केवल आप चाहिए। कहा ठीक है। जब राजा राजधानीमें गए सब रानियोंके यहाँ सभी चीजें भेजवा दी और छोटी रानीके महलमें स्वयं पहुँच गए। तो अब यह बतलावो कि सबसे अधिक वैभव उस छोटी रानीको मिला कि नहीं? राजाके पास सब वैभव है तो वह भी उसे मिला, और राजा भी उसे मिला। इस तरह ज्ञानने तो सारे लोकको जाना, सारे लोकको जाननेवाले ज्ञानसे तन्मय आत्माका प्रतिभास होना सो दर्शन है। तो देखो भैया ज्ञानने जो चमत्कार पाया उससे भी विशेष बात दर्शनने प्राप्त की। यह स्वरूप समझानेके लिए कहनेकी बात है दर्शन और ज्ञान हैं तो समान। हाँ, अब प्रकरण पर आयें। अभी ज्ञायक ज्ञ ेयकी बात चल रही थी कि ज्ञायक जब ज्ञ ेयकी ओर है तो आश्रब हुआ और ज्ञ ेयको पकड़ कर रह गया, तो बंध हुआ और

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

ज्ञायक ज्ञेयकी ओर न झुका तो सम्वर हुआ और ज्ञायक ज्ञेयकी बातोंसे निकल कर रहा तो निर्जरा हुआ और जब ज्ञायक मात्र ज्ञायक रहा तो मोक्ष हुआ।

अनुयोग द्वारोंसे बंध विवेचना :—यहाँ कह रहे हैं उपयोग की बात जैसे समझानेमें बधके प्रस्तावमें यह बताया गया कि बंध किसे कहा ? तो कहा कि जब रागादिकको उपयोग भूमिमें न लिया जाय तो वहाँ बंध नहीं बनता। करणानुयोगकी व्याख्या द्रव्यानुयोगसे सूक्ष्म मानी जाती है। यह द्रव्यानुयोगकी अपेक्षा कथन समझो। करणानुयोग में तो यह कहा कि आत्मानुभवके समयमें भी चौथे पाँचवें छठे आदिक गुणस्थानमें अपने-अपने भूमि के अनुसार रागादिक निरन्तर चलते रहते हैं।

आत्मानुभूतिकी प्रक्रियाओंके समय भी रागादिक :—जब यह सम्यग्दृष्टि आत्मानुभवके क्षणमें आत्मानुभूति केवल ज्ञानानुभूतिकी प्रक्रियामें है उस समय भी किन्हीं गुणस्थानोंतक रागादिक चल रहे हैं किन्तु रागादिक भाव उपयोग भूमिमें नहीं रहते हैं इस कारण उस समय उन्हें बंध नहीं है अर्थात् उपयोग भूमिमें लानेसे बंध होता है वैसे बंध नहीं हैं। इसका तात्पर्य यह है कि अनन्तानुबंधीकाषायकृत बन्ध नहीं है,और कषायकी तीव्रतामें होनेवाला बन्ध नहीं है, और जहाँ अप्रत्प्रत्याख्यानावरण का भी उदय नहीं वहाँ उसका भी बन्ध नहीं है। तथा उस समय जो राग चलता है, जो बन्ध चलता है वह संसारका प्रयोजक नहीं है, संसारका बढ़ानेवाला नहीं है इसलिए द्रव्यानुयोगमें बताया जाता है कि सम्यग्दृष्टिके (निम्न-गुणस्थानोंमें भी) बंध नहीं उसका तात्पर्य यह है कि बुद्धिकृत बन्ध नहीं। जो बन्ध है वह संसारका प्रयोजक नहीं है, अतः वह अबन्धवत् है, ऐसा माना है। करणानुयोग तो सूक्ष्म बातोंको भी प्रकट करता है इसलिए वहाँ कहते हैं कि आत्मानुभूतिके क्षण में भी रागादिक चल रहे हैं। ज्ञायक और ज्ञेयकी जो चर्चा की है वह उपयोगकी बात है और कहा है कि जब उपयोग क्षेत्रमें रागादिक नही आते तब निर्जरा हैं, यह भी उपयोगकी बात है, उसका प्रयोजन द्रव्यानुयोगमें, मोक्षमार्गकी बात बतानेके प्रकरणमें सब मर्म प्रविष्ट है। अब गाथाके व्यक्त भावमें आइए। जब द्रव्यके भेद करने चले तो सबसे पहिले यह बात आयी कि द्रव्य दो प्रकारके हैं, (१) जीव और (२) अजीव। जीव तो वह है जो चेतना-उपयोगमय है और अजीव वह है जिसमें चेतना उपयोग नहीं है। यह बात पहिले आ चुकी है कि विशेषके वर्णनोंके समय द्रव्यके सामान्य गुणोंकी वातको नहीं भूलना है। साधारण गुणोंकी बजहसे असाधारण गुण कायम हैं और असाधारण गुणकी बजहसे साधारणगुण कायम हैं। यही इस कथनका मतलब है कि साधारणस्वरूपके कारण विशेषका स्वरूप है और विशेषस्वरूपके कारण सामान्य का स्वरूप है। वस्तुतः सभी स्वरूप अपने आपमें हैं।

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

विज्ञानसिद्ध जीवके तर्क :—विज्ञान सिद्ध बात यह है कि यदि ऐसी कल्पना करें कि जीव एक वह पदार्थ है, जिसमें चैतन्यनामक असाधारण गुण नहीं हैं और खूब खुशीसे द्रव्योंमें ६ साधारण गुण मानो तो क्या इस कल्पनासे वे गुण स्वयं अपने अस्तित्वको सिद्ध कर सकेंगे ? और किसीमें असाधारण गुण न हो तो साधारण गुण कैसे टिकें, बतलाओ ? जैसे इन जीवोंमें ऐसी कल्पना करें कि भैया ! हम साधारण गुणोंको नहीं मानते, याने अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशवत्त्व व प्रमेयत्व नहीं है, और खूब चेतना है तो बताओ यह असाधारण भाव कैसे टिके ? चेतना है, ऐसा हुआ तो अस्तित्व तो आ गया। वह चेतना अपने रूपसे है और पर के रूपसे नहीं है। ऐसा कहें तो वस्तुत्व तो आ ही गया और चेतनाको चैतन्यात्मक वृत्तियाँ बनती रहती हैं तो द्रव्यत्व आ गया। चेतन अपने आपमें ही परिणति करता है। परमें परिणति नहीं करता है, लो अगुरुलघुत्व आ गया। उसका आकार प्रकार ध्यान में आया सो प्रदेशवत्त्व आगया, किसीन किसी ज्ञानका प्रमेय है, सो प्रमेयत्व आगया। यों देख लो भैया ! साधारण गुण न हों तो असाधारण गुण नहीं टिक सकता और असाधारण गुण न हो तो साधारण गुण नहीं टिक सकते। इसी कारण पदार्थ सामान्यविशेषात्मक हैं। केवल सामान्य हो हो, विशेष न हो ऐसा कुछ नहीं हैं, केवल विशेष हो सामान्य नहीं हो ऐसा भी पदार्थ नहीं है। निरक्षेप सामान्य भी हो और निरक्षेप विशेष रहे ऐसा दोनोंको रख दें तो भी ऐसा कोई पदार्थ नहीं है। इस प्रकार पदार्थ सामान्यविशेषात्मक हैं और इस कारण सामान्यके वर्णनको न भूलकर विशेष के वर्णनमें चलना चाहिए। यहाँ यह वार-बार याद दिलाया जारहा है।

द्रव्यका विभाजन :—द्रव्य जीव और अजीव दो भागोंमें बटा है। जब चतुष्टयकी दृष्टि है तो पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल अजीव हैं और जीव जीव है और जब भावात्मक दृष्टि है तो उसमें यह ध्रुव ज्ञायकस्वभाव तो जीव है और इसके अतिरिक्त जितने भी तत्त्व हैं वे जीवकी परिणति हों, जीवके विकार हों, जीवका छुटपुट ज्ञान हो वे सब अजीव हैं। द्रव्यानुयोगकी मर्मभूत दृष्टिसे इस तरह जीव और अजीवकी व्याख्या है।

समयसारमें जीवकी विवेचना—समयसारमें जहाँ यह बताया है कि अध्यवसाय जीव नहीं है, सुख दुःख भाव जीव नहीं है, राग द्वेषकी संतति भी जीव नहीं है। जिसको लक्ष्य करके इनमें जीवका निषेध किया है वह परमार्थ जीव क्या है ? जीव वह है जो शाश्वत सहज हो। इस दृष्टिमें ज्ञायकस्वभाव ही जीव है उसके विशुद्ध परिणाम भी जीव नहीं, गुणस्थान भी जीव नहीं, संयमस्थान जीव नहीं, जीवसमास जीव नहीं। परमार्थपद्धतिमें लक्ष्य पर पहुँचना है। वहाँ गुणस्थान क्या है ? पुद्गल

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

क्या है इसकी चर्चा नहीं किन्तु वह जीव नहीं है, इसकी चर्चा है। वहाँ यह नहींहै, इसकी चर्चा है। वहाँ यह नहीं बताया है कि राग, द्वेष, विषय, कषाय, विशुद्धि, संयम यह क्या चीज है। पुद्गल है कि आत्मा है, क्या है ? यह नहीं बताना है, वहाँ तो इतना लक्ष्य कराया गया कि शुद्ध जीव तत्त्व क्या है ? भैया जीवमें टिकें, जिसमें टिकनेपर अनन्तानन्द होता है। इस पावन रास्तेसे चलने लगो तो बीचमें बहुतसे तत्त्व रोकने लगते हैं, अरे रुको,रुको, दो मिनटके लिए रुको। नहीं-नहीं, हमें दो मिनट भी रुकनेकी फुरसत नहीं है। जैसे प्रगतिशील समर्थ पथिक विरोधी लोगोंको फटकार कर अपने प्रिय थानको पहुँचते हैं इसी तरह इस सम्यग्ज्ञानी जीवको संयम-अध्यवसाय आदि भाव अटकाने लगे, तब उनको झकोरकर कि यह मैं नहीं, आगे आगे बढ़ता चला जाता है यह ज्ञानी।

दृष्टिपर ध्यानकी प्रेरणा—किस दृष्टिमें यह गुप्त चमत्कार हो रहा है यह ध्यानमें रखना, नहीं तो कई सुननेवाले भाई सोचेंगे कि क्या बात बोली जा रही है और अन्य सब दृष्टियोंकी अपेक्षा यह बात गलत है। शुद्ध ज्ञान स्वभावकी दृष्टिको जमावो, इस पद्धतिमे हम आगे बढ़ सकते हैं और इस बढ़ावाके आगे– अन्दर बीचके जो स्थान मिलते हैं उन सबको न मानें, एक तरहसे कहें तो नेति की पद्धतिसे सब अतत्त्वोंको हटाकर बढ़े,, यह मैं नहीं हूँ। भावात्मकता की दृष्टिमें एक स्वरूप हूँ। स्वरूप चतुष्टयकी दृष्टिमें वे सब जीव ५ तरहके हैं, नारकी, तिर्यञ्च मनुष्य, देव और सिद्ध। पर भावात्मक दृष्टिके प्रयोजनवश सम्यग्दृष्टी ज्ञानी पुरूषके द्वारा जीव जो खोजा जाता है वह ज्ञायक स्वभाव ही जीव है, अन्य कुछ नहीं।

सामान्य और असामान्य गुण दृष्टि—जगतके जितने भी पदार्थ हैं उन पदार्थोंमें एकता रहे, इस एकताका कारणभूत तत्त्व क्या है ? द्रव्यसामान्य। जैसे कि कोई लोग कहते हैं कि ब्रह्म एक है, सर्व व्यापक है, ठीक है, एक है, सर्वव्यापक है, जितनी भी जातियाँ होती हैं वे सीमा तो रखा नहीं करती हैं, जाति तो ज्ञानगम्य है, तत्त्व है। तो यह सत्त्व द्रव्यत्व सर्वत्र एक है और व्यापक है। सो ऐसा यदि उनका यह ब्रह्म है तो कुछ अन्तर नहीं है। कोई ब्रह्मके स्वरूपको कहते हैं कि ज्ञानरूप है, कोई कहते हैं कि आनन्दस्वरूप है। यदि वह ज्ञानरूप है तो अज्ञान रूप ये जो दिखने वाले स्कंध है उनको ब्रह्मतत्त्व कहेंगे क्या ? और यदि आनन्द स्वरूप है तो जो आनन्दसे शून्य है उनको ब्रह्म कहा जायगा क्या ? भैया, सत्त्वकी दृष्टिसे, द्रव्यत्वकी दृष्टिसे सब कुछ एक है, सर्वव्यापक है पर इसमें जब असाधारण गुण लगा दिया कि ब्रह्मका स्वरूप ज्ञान है, यदि ऐसी विशेषता लगावें तब तो वह ब्रह्म एक व्यापक नहीं घटित होगा। एकत्वका कारणभूत तत्त्व है द्रव्यत्व सामान्य।

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

उस द्रव्यत्वसामान्यको न छोड़कर स्वयं उनमें समाया हुआ जो विशेष लक्षण है उसका सद्भाव भी नियमसे है। सो जब द्रव्यसामान्य कहा तब तो अन्योन्यव्यवच्छेद नहीं हुआ। एकसे दूसरा अलग नहीं हुआ। किन्तु, जब विशेषगुण बताए तो एक दूसरेसे अलग हो गए। ज्ञानगुण बतानेसे ज्ञानगुणसम्पन्न चेतन आत्मा अलग और शेष द्रव्य सब अलग हो गए।

विशेष गुण ही द्रव्यभेदके कारण—भैया! जब द्रव्यसामान्यको न छोड़कर उनमें विशेषगुण देखा जाय तो द्रव्यके दो भेद हैं, (१) जीव और (२) अजीव कोई यह प्रश्न कहे कि पदार्थ कितनी तरह के होते हैं तो उसको क्या उत्तर दोगे? उत्तर दोगे कि पदार्थ दो तरहके होते हैं एक जीव और दूसरा अजीव। दो तरहके होते हैं सो तो ठीक है, और कोई पूछे कि पदार्थ कितने होते है? तब क्या कहोगे कि दो होते हैं जीव और अजीव? नहीं, भैया! यह उत्तर तो गलत है। पदार्थ दो नहीं है, पर पदार्थ दो तरहके हैं। पदार्थ कितने हैं, याने द्रव्य कितने हैं? क्या उत्तर आयगा? द्रव्य ६ हैं, यह उत्तर गलत है। और प्रकार पूछने पर यह उत्तर सही आयगा कि द्रव्य ६ तरहके हैं। द्रव्य ६ नहीं है, द्रव्य अनन्तानन्त हैं—अनन्तानन्त जीवद्रव्य, उनसे अनन्तानन्तगुणे पुद्गल द्रव्य, एक धर्म द्रव्य, एक अधर्म द्रव्य, एक आकाश द्रव्य और असंख्यात कालद्रव्य। इन अनन्त द्रव्योंको संक्षिप्त जातियोंमें बाँटा जाय तो ६ जातियाँ होती हैं—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। फिर, दो जातियाँ नहीं होंगी जीव और अजीव। क्योंकि, जीव कहनेमें तो असाधारण गुण बता दिया, मगर अजीव कहने में कोई गुण नहीं आया। यह तो निषेधात्मक वचन है। पर जैसे जीवमें आया कि उसमें चैतन्य गुण है इसी तरह इस अजीवको बतलाओ कि इसमें क्या गुण है? अजीव कहनेमें असाधारण गुण नहीं आया इसलिए जातियाँ दो नहीं है जीव और अजीव। अभी तो निषेधात्मक रूपका यह वर्णन किया गया है कि द्रव्यके विशेष दो हैं जीव और अजीव। ऐसा बतानेमें हितकी बात यह कही गयी है कि अजीव से हटना है, और जीवमें आना है। जातियाँ दो नहीं है जातियाँतो छः हैं। जातियाँ बनी हैं असाधारण गुणोंको लेकर। जैसे कहा जाय कि जातियाँ दो हैं एक जैन और दूसरा अजैन, तो इसमें निषेधात्मक दूसरा नाम हो गया जो जैन नहीं सो अजैन। इसी तरह यह भी है कि चैतन्यमय है सो जीव और जो चेतनामय नहीं सो अजीव। यों जीव और अजीवके विशेषोंको बताया।

द्रव्य व्यक्तियाँ—अब व्यक्तियोंको बतलाते हैं कि जीवकी तो एक जीव द्रव्य ही व्यक्ति है किन्तु अजीवके हैं पुद्गल द्रव्य, धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य, आकाश और काल द्रव्य ये ५ प्रकार व्यक्तियाँ। इस प्रकार सब पदार्थ ६ हुए-जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। देखिये सब वर्णनोंमें द्रव्यत्वसामान्यका स्मरण न छोड़ना। वाह!

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

आचार्यदेवकी कैसी अनूठी पद्धति है जरा इस बातको ऐसे संकल्प और कल्पनासे सोचो कि इस सारे विश्व में केवल एक सत् ब्रह्म है, सत् है वही सर्वत्र है। अब आगे बढ़ो और देखो जैन सिद्धांतमें किसी चीजका वर्णन ६ प्रकारसे किया जाता है। नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव। किसी भी चीजका वर्णन हो, ६ प्रकारसे होता है।

जैसे जिनेन्द्रभगवान, तो "जिनेन्द्र" यह हुआ नाम जिनेन्द्र और यह कहलाता है जिनेन्द्र, ऐसी बुद्धि करनेका नाम है स्थापनाजिनेन्द्र और मूर्तिमें जिनेन्द्रकी स्थापना होती है तथा जो साक्षात् समवशरणमें स्थित है उसमें यह स्थापनाकी बुद्धि की कि यह है जिनेन्द्र, इसको भी स्थापनाजिनेन्द्र कहते हैं। द्रव्य जिनेन्द्र — जो जिनेन्द्र होने वाला है, समाधि में उत्तीर्ण हो रहा है वह है द्रव्य जिनेन्द्र जो प्रदेशात्मक रूपमें क्षेत्रात्मक रूपमें जाना हुआ हो, अथवा जिस स्थानसे ज्ञानकल्याण व निर्वाण- कल्याण हुआ हो वह क्षेत्र जिनेन्द्र हुआ। काल जिनेन्द्र जिन पर्यायरूप है। भाव रूप जिनेन्द्र वर्तमान जिनपरिणामरूप है। यों किसी भी चीजका वर्णन ६ प्रकारसे होता है।

सत् की व्यापकता—सामान्य जो सत् सर्वव्यापक है, समस्त विश्वमें एकरूप है सत्से कौन छूटा है ? चाहे भगवान हों, चाहे संसारी हों, वे सब सत् में आ गये, भैया है ना ठीक, उस सत्के बावत देखो नाम सत्, स्थापना सत्, क्षेत्रसत्, कालसत और भावसत् यों हम उस एकको ६ विशेषोंमें अगर देखते हैं तो व्यक्तियाँ उनमें प्रकट होती हैं।

नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल व भावकी दृष्टिसे सत्का वैभव—नामका अर्थ है चलना ? नामका काम है चलना। जैसे अपन लोगोंमें जो नाम रख लेते हैं वह किसलिए ? अपना नाम चलानेके लिए। नाम रखे बिना कुछ नहीं चल सकता है तो नाम रूप सत् है चलनेका साधनभूत। लोग तो स्पष्ट कह देते हैं कि इनका नाम चल गया। किसीने मंदिर बनवा दिया उसका नाम चल गया, किसीने बेदी बनवा दी उसका नाम चल गया। नामका काम है चलना। और, समस्त सत् में से चलनेका कारणभूत कौनसा द्रव्य है ? याने जो चल सकने वाले द्रव्य है उन द्रव्योंके चलनेकी क्रियाका कारणभूत (निमित्तरूप) कौन सा द्रव्य है ? वह है धर्म द्रव्य। उस व्यापक सत् को नाम सत् की दृष्टिसे देखो तो निकला क्या ? द्रव्य पदार्थ। उसमें नाम सत् की व्यक्ति है धर्म द्रव्य। उस एक सत्को स्थापनासत्की दृष्टिसे देखा जाय तो स्थापना सत् कौन हुआ, जिसने कुछ थाप दिया, रख दिया, ठहरा दिया हो ? तो ठहरानेका आधारभूत व्यक्ति निकला अधर्म द्रव्य। इस कल्पनाके मुताबिक सीधी ठीक बात तो नहीं है पर हैं यह अद्वैतसे द्वैतकी ओर आने की पद्धति है। इसमें

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

प्रयोजनकी बात निकलेगी जिसे अंतमें कहेंगे। अब उस महाव्यापी सद् ब्रह्मको द्रव्य सतकी दृष्टिसे देखो तो निकला पुद्गल द्रव्य जिसे कि एक वस्तुके रूपमें पिण्डके रूपमें बता सकते है कि यह है।

क्षेत्रादि सत् में विस्तारकी प्रधानता—जब व्यापी सत् को क्षेत्रसत् की दृष्टिसे देखा तो निकला आकाश द्रव्य। काल सत्से देखा तो निकला काल द्रव्य और भावसत् से देखा तो भाव सत् जीवद्रव्य निकला।

जीव द्रव्यके परिचयकी साधिका भाव दृष्टि—प्रयोजन यह है कि हम जीव सत् को भावात्मक दृष्टिसे देखें तो जीवद्रव्यका ज्ञान होता है, विशद पहचान होती है और यदि अन्य अन्य नाम स्थापनादि दृष्टिसे इस जीवको देखें तो उसका बोध नहीं होता है। जीव कितना लम्बा चौड़ा है? पैरोंसे लेकर सिरतक कितना लम्बा चौड़ा है? जैसे हाथी खड़ा है तो उसका क्षेत्र कितना फैला हुआ है? बहुत फैला हुआ है कितने लम्बे चौड़े विस्तृत रूपका यह जीव है। सोच डालो भैया! अब बताओ कुछ परिचय हुआ कि जीव क्या चीज कहलाती है? कुछ परिचय नहीं हुआ। जीवके आकारको, ढाचेको देखकर जीवका परिचय नहीं होता केवल ज्ञानमात्र ज्ञायकस्वरूप, प्रतिभास ही जिसका लक्षण है ऐसे भाव रूपसे जब जीवको देखो तो जीवका अनुभव होता, किन्तु वह अनुभव बाह्य क्षेत्रमें जीव है इस प्रकार से न होगा किन्तु वह स्वयंमें मिलकर एक होकर बाहरके सत्को ध्यानमें न रखकर केवल भावोंसे ही जीवका परिचय होगा अगर बाहरसे जीवका परिचय करना चाहें तो नहीं हो सकता है क्योंकि इसकी क्षेत्रात्मक दृष्टिकी प्रधानता रखकर जाननेमें ज्ञानकी अनुभूति नहीं होती। जीव को भावात्मक दृष्टिकी प्रधानता रखकर विशद जान सकते हैं अन्य दृष्टिसे नहीं जान सकते हैं। जो प्रयोजन है परिचयका साधन है सोई कहना चाहिए, नहीं तो क्या अवस्था होती है कि कहीं के चले कहीं पहुँचते है।

प्रयोजनकी भूलमें विडम्बना—भैया! एक छोटासा दृष्टान्त है कि जन्मजात अंधा पुरुष था। उसको एक लड़केने कहा कि सूरदास जी हम तुमको खीर खिलायेंगे। सूरदास बोले कि खीर कैसी होती है। लड़का बोला कि सूरदास बाबा! खीर तो सफेद होती है। वह जन्मका अन्धा सफेद क्या समझे। उस अंधेने कहा कि भाई सफेद कैसी चीज होती है। उसने कहा कि बगला जैसा। अब बगलेको उस अन्धेने कहाँ देखा था। उसने पुनः पूछा कि बगला कैसा होता है। लड़का उस अंधेके सामने बगले जैसा टेढ़ा हाथ करके बोला कि बगला ऐसा होता है। वह अंधा हाथको टटोलता है कि बगला ऐसा होता है? टेढ़ा मिड़ा, बोला हम इसे नहीं खायेंगे। वह तो हमारे पेटमें

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

गड़ेगी। हमें ऐसी खीर नहीं खाना है। कहते हैं वाकई यह टेढ़ी खीर है, यह नहीं खाई जा सकती। बतलावो उस बच्चेने क्या कसूर किया। अरे क्या खीर सफेद नहीं होती? बतलावो बगला जैसी नहीं होती? बगलेका रूप क्या टेढ़ामेढ़ा नहीं होता? ऐसा होता है, लेकिन वह प्रयोजनसे चूक गया। प्रयोजन तो था खीरका स्वाद बतलाने का और कोई प्रयोजन न था, लेकिन खीरका वर्णन वह स्वादसे करता, इसके बजाय उसने वर्णन किया खीरके रूपका। खैर फिरभी थोड़ी गनीमत थी, पर रूपका वर्णन करने चला तो आकारसे, तो बात कैसे समझमें आसकती है। वह रूपका वर्णन भी आकारकी मुख्यता देकर करने लगा। इसी कारण अंधेको खीरका ऐसा ढंग बतानेका प्रयोजन ठीक न होसका।

प्रयोजनके व्यक्त करनेकी विधि—इसी प्रकार अज्ञानी जनोंको आकार प्रकार आदि ढंग बतानेसे जीवका परिचय नहीं हो सकता। उस अंधेको खीर का परिचय इस प्रकार कराया जा सकता है कि देखो भाई! खीर बहुत मीठी होती है तुमने शक्कर तो खाया ही होगा, उस खीरमें शक्कर जैसा स्वाद होता है दूधतो पिया ही होगा, दूध जैसा स्वाद होता है, चावल खाया होगा, चावलके स्वाद जैसा उसमें स्वाद होता है। इस प्रकारसे वह कुछ-कुछ समझ जायगा कि खीर कोई बढ़िया चीज होती होगी। देखो यह है खीर इसे खाकर जरासा देखो। वह चीखकर देखेगा तो स्वादका परिचय आ ही गया। उसके बादमें फिर लड़का कहे कि सफेद होती है खीर। इससे उस अंधेको सफेदका कुछ अनुमान भी हो जायगा। आँखो नहीं देखता है फिर भी सफेदका कुछ न कुछ अनुमान होने लगा। इसी प्रकारसे जीवोंका परिचय किस ढंगसे होता है। नाक, कान, आँख इत्यादि देखनेकी जरुरत नहीं है केवल भीतरकी बात कह रहे हैं, नाक, कान आदिको कुछ काममें नहीं लाइयेगा जो ज्ञान-करता है जिसके जानन बना रहता है, समझ बनी रहती है। ऐसा जाननहार जो पदार्थ है उसे जीव कहते हैं।

आत्माल्हाद सीमित और ज्ञानस्वरूप असीमित—जीवके यथार्थ परिचयके बाद जाननस्वरूप, जाननमात्र मैं हूँ ऐसा जिसने ज्ञानके स्वरूपको जाननेका यत्न किया, अनुभव किया ऐसे जाननमात्रकी अनुभूतिके साथ ही उसके एक परम आल्हाद उत्पन्न होता है, निरपेक्ष आनन्द उत्पन्न होता है। उस आनन्दका इस सीमित प्रदेशमें ही विकाश होता है। जैसे कोई कहता है कि फिरोरूसी उठ गयी। जो उठ गयी, वह आनन्दका ही संकेत है। ज्ञानने तो सीमा नहीं बनाई पर जानकी भावनामें आनन्दकी सीमा बन गई। ज्ञानने तो जाननका ही परिचय किया पर जानन स्वरूपके ही परिचयके समय जो आल्हाद, आनन्दका विकाश हुआ वह आनन्दका विकाश

To report error, please contact vikasnd@gmail.comVersion 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

आत्मप्रदेशमें ही उत्पन्न हुआ। देखो भैया, आनन्दने जीवकी सीमाको जता दिया कि तू इतना बड़ा है, इतने क्षेत्रमें फैला हुआ है। किन्तु जीवका जो मुख्य लक्षण ज्ञान है उस ज्ञान स्वरूपको जाननेकी स्थितिमें और जब जीव ज्ञानके रूपसे जानता है तब उस रूप में उसकी सीमा नहीं रहती और जब सीमा नहीं रहती तो ज्ञानकी सीमा उपयोगमें नहीं आई। इस जीवका मुख्य लक्षण ज्ञान है। वह ज्ञान एक है। यों ज्ञान ब्रह्म एक हुआ।

ब्रह्म तत्त्वकी लोकोक्ति—विश्वमें ब्रह्म एक तत्त्व है, ऐसी कुछ व्यक्तियोंकी लोकोक्ति है। इस लोककी लोकक्तिके प्रयोगमें जैन सिद्धान्तसे तो इससे भी बढ़कर बात निकली अर्थात् तुम जिसे एक कहते हो उसे तुम एक भी नहीं कह सकते हो क्योंकि ज्ञानस्वरूपके अनुभवकालमें क्या यह विकल्प निकलता है कि वह एक है? वहाँ तो एक का भी विकल्प नहीं है। वहां तो निर्विकल्प स्वाद मात्र है। उसे तो ज्ञानरसास्वादनका अनुभव हो रहा है। अतः यह कहना भी गलत है कि ब्रह्म एक है किन्तु है, इतना ही अनुभव है। अनुभव भी क्या, निर्विशेष परिणमन मात्र है।

द्रव्योंकी पहिचान—यहां द्रव्यविशेषका वर्णन चल रहा है कि द्रव्य दो भेदोंमें विभक्त है। एक जीव और दूसरा अजीव। जीवमें तो एक व्यक्ति है मात्र आत्मतत्त्वहै जब कि अजीवमें ५ व्यक्तियां हैं, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। अब जीव और अजीवके विशेष लक्षण क्या हैं? उत्तर-जीवका तो चेतनोपयोगमयता होना अर्थात् चेतन स्वरूप होना जीवका लक्षण है और अजीवका लक्षण है जीवके लक्षणके विपरीत चेतना न होना। न होना देखकर द्रव्यकी पहिचान नहीं होती, किन्तु प्रयोजनकी पुष्टि होती है। होना देखकर द्रव्यकी पहिचान होती है। जीव और अजीवके लक्षणोंके बताने में यह प्रयोजन आ गया कि अजीवसे तो हटना है और जीवमें आना है। वर्णन तो ठीक किया गया मगर अजीवका विध्यात्मक लक्षण नहीं आया। ऐसा लक्षण तो इन ५ व्यक्तियोंके गुणोंके बतानेमें आयगा।

पुद्गलादिक द्रव्यों का अस्तित्व व पहिचान—देखो जिसमें स्पर्श, रस, गन्ध रूप आदि हैं वह पुद्गल है और जो जीव पुद्गलके गमनका निमित्त भूत है वह धर्म द्रव्य है। यद्यपि यह धर्म द्रव्य आँखों नहीं देखा गया है फिर भी पकड़ में आता है कि ऐसी कोई चीज अवश्य है जो जीव व पुद्गल के चलने में निमित्तभूत है। हो सकता है कि वैज्ञानिकोंके कथनानुसार इस आकाशमें भी लहर है, तरंग है, कोई ईथर तत्त्व है जिसके सहारे चीजें चलती, शब्द चलते हैं, सूक्ष्म अणु चलते है। जो जीव पुद्गलके ठहरनेमें सहायक है वह अधर्म द्रव्य है और जो सर्व द्रव्योंको अवगाहन देनेमें कारणभूत है वह आकाश तथा जो परिणमनमें निमित्तभूत है वह काल द्रव्य है। द्रव्यके लक्षणोंकी पहिचान हुई।

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

चेतना भगवती जीवकी पहिचान—अब जीव द्रव्य क्या चीज है इस बात को बतलाते हैं कि अपने धर्ममें व्यापक होनेसे अपने स्वरूपसे जो अन्तः द्योतमान है, अविनाशी है, ऐसी यह भगवती चेतना है। माँगनेवाले लोग जब आते है तो बोलते है कि तुम्हारी भगवती फतह करे। वह भगवती क्या है, क्या भगवानकी धर्मपत्नी है नहीं भैया! वह भगवती है चेतना। भगवानकी जो लक्ष्मी है सो भगवती है। लक्ष्मी के माने क्या है? लक्ष्मी शब्द बना लक्ष्मसे, लक्ष्म नपुंसक लिंगमें होता है और लक्ष्मी स्त्रीलिंगमें होती है पर लक्ष्म कहा जाय, चाहे लक्ष्मी, बात एक है लक्ष्म के मायने है लक्षण याने स्वरूप। सो लक्ष्मी के माने है स्वरूप। जो भगवान का स्वरूप है वही लक्ष्मी है लो लक्ष्मी हुयी चेतना। सो भगवती तुम्हारी फतेह करे, ऐसा जो आशीर्वाद देते हैं। उसका अर्थ न तो माँगनेवाला समझता है और न सुननेवाला समझता है. उसका अर्थ है कि चेतनाकी दृष्टि आपकी विजय करे।

भगवती चेतनाकी ओर दृष्टि लानेकी प्रेरणा—देखो भैया! तुम्हारी फतेह हो सकती है तो शुद्ध स्वरूपकी दृष्टिसे [ही हो सकती है। क्या धरा है उस व्यवहारमें, जिसमें नाम चलता है, इज्जत बढ़ती है। लोकमें बहुत अच्छा कहलाने चले हैं, उसमें क्या तत्त्व रक्खा है। आत्मन्! किसके द्वारा भले कहलानेके लिए, किसको प्रसन्न करने के लिए अपनेको जोखममें डालते हो। अरे उन मोहियोंके द्वारा भले कहलाने के लिये, उन पापियोंके मौज बनानेके लिए जो ८४ लाख योनियोंमें भ्रमण करनेकी तय्यारी में हैं उनको अपना आत्मसमर्पण करते हो, उत्तर दो सोच आत्मन! सोच तो उन मानवोंमें जो विषय कषायमें आसक्त हैं भला कहलानेके लिए अपनी कमर कस रहा है? चौरासी लाख योनियोंमें भटकते भटकते तो यह दुर्लभ नर जन्म पाया है उसको क्यों निरर्थक समझकर बरबाद किये जा रहा है।

गति विचाराधीन नहीं किन्तु परिणामाधीन:—मनुष्य जन्म पाकर तो अपने हाथकी बात है चाहे उत्थान करलो या पतन करलो यदि कहो कि हम मरकर मनुष्य बनेंगे तो क्या यह अपने हाथकी बात है? भैया! वह तो परिणामसाध्य बात है। ऐसे परिणाम होते रहें कि जिसका निमित्त पाकर मनुष्यगतिनामक प्रकृतिका बंध हो जाय तो मृत्यु बाद नरदेहकी रचना भी हो जायगी, नहीं तो परिणाम हो रहे हैं मोह के, आशक्तिके, विषय कषायोंके सो इससे तो कहीं तिर्यंच होंगे, कहीं अन्य-अन्य कर्मोंके बंध हो गये तो उस समयमें कितनी विडम्बना हो जायगी? कहाँ तो मनुष्य गतिके भाववाले और कहाँ मनुष्यके अंगोंके आकारसे बदलकर, मरकर दो तीन समय बाद ही अन्य ढाँचा बदल जायगा, दूसरा ढाँचा बन जायगा, अधिकसे अधिक तीन समयमें बदल जायगा। कितने गजबका संकट इस जीवपर छा जायगा,

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

सोचा है कभी तुमने ? अभी तो मनुष्य हैं और मरकर कीड़ा मकोड़ा हो गए तो अपनेपर कितने संकट छा जावेंगे ? मनुष्यजन्म पाकर क्या फल पाया ? कितने संकट इस जीवपर आये ? थोड़ा धन होना क्या कोई संकट है ? अथवा परिवारके लोग बात नहीं मानते हैं, यह क्या कोई संकट है ? किसीने कुछ कह सुन दिया, क्या यह कोई संकट है। संकट तो यह है कि मरकर कोई कीड़ा मकोड़ा कोई पशुपक्षी बने पेड़ बन गए, नारकी बन गये, संसारमें यत्र तत्र रुलते फिरे। यही जीवपर संकट है, और कोई संकट इस जीवपर नहीं होते हैं। संकटसे बचना है तो अपने आपकी अथवा अपने स्वरूपकी भावना करो, यही आत्माकी परम दया है। उस ओर हमें कितना लगना चाहिए इसका ख्याल तो करो ? धन कमानेकी अपेक्षा खूब विचार करलो कि हमें आत्मकल्याणमें कितना लगना चाहिए।

जीव द्रव्यकी पहिचान—पूर्व प्रकरणमें द्रव्यके भाग किए गये थे कि द्रव्य दो प्रकार के होते हैं, (१) जीव और (२) अजीव। उनमें से जीव द्रव्यकी पहिचान क्या है ? सीधी बात यह है कि जिसमें देखना जानना पाया जाय वह जीव है और जिसमें देखना जानना नहीं पाया जाय वह अजीव है। किन्तु श्री अमृतचंद्रसूरिके शब्दों में यह बात रख रहे हैं कि जीव वह है जो उन सब द्रव्योंमें से जिसमें चेतनाके द्वारा और उपयोगके द्वारा निवृ त्तपना अवतीर्ण प्रतिभात हो। चेतना क्या चीज है और उपयोग क्या चीज है ? चेतना तो स्वरूपरूपसे द्योतमान है, अविनाशी है, भगवती है, सम्पत्ति है और उपयोग द्रव्यकी वृत्तिरूप है।

चेतनाका अर्थ व जीवके चेतन अचेतन गुण:—चेतनाका अर्थ यहाँ मात्र जानना देखना न करना, किन्तु यह जीवका एक असाधारण भाव है, जो अपने सब धर्मोंमें व्यापक है, जीवमें जितने गुण हैं उन सब गुणोंमें व्यापक है। यह चेतना वह है जिसके कारण सब गुण चेतनात्मक होते हैं। वैसे तो जीवमें कुछ गुण चेतन हैं और कुछ गुण अचेतन हैं। जैसे पूछा जाय कि जीवमें सूक्ष्म तत्त्व चेतन है कि अचेतन है ? सूक्ष्म तत्त्वमें जानने देखनेकी कला है क्या ? नहीं है। तब सूक्ष्म तत्त्व अचेतन हुआ। यहाँ चेतनसे मतलब चेतकका है और अचेतनसे मतलब अचेतकका है। इसी तरह अनेक गुण हैं। ज्ञान और दर्शनको छोड़कर बाकी गुण सब अचेतन हैं। आनन्द गुण भी चेतन है कि अचेतन है ? आत्मामें जो आनन्द नामका गुण है वह चेतनेवाला नहीं है, वह चेत्य है, चेतनेमें आने वाला है, जैसेकि और गुण होते हैं। तो आनन्द भी चेतन गुण नहीं है। सूक्ष्मत्व, अगुरुलघुत्व, आनन्द आदि अनेकों गुण चेतक नहीं हैं। चेतक तो केवल ज्ञान और दर्शन है।

चेतन अचेतन गुणोंका समर्थन व पिष्टपोषण:—श्री अकलंकदेवजी ने स्वरूप सम्बोधनमें लिखा है कि प्रमेयत्वादिभिर्धर्मैरचिदात्मा चिदात्मकः। ज्ञानदर्शनतस्त-

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

स्माच्चेतनाचेतनात्मकः। प्रमेयत्व आदिक धर्मके कारण यह जीव अचिदात्मक है और ज्ञान गुण, दर्शन गुणके कारण यह चिदात्मक है। इसलिए जीव पदार्थको कोई पूछे कि यह चेतन है या अचेतन है? तो उत्तर आयगा चेतनाचेतनात्मक है। चिदात्मक है व अचिदात्मक भी है। यह गुण भेदकी अपेक्षासे है। यह अभिप्राय नहीं कि आत्माका कुछ हिस्सा चेतन है,व कुछ अचेतन है चेतन तो पूरे भागमें व्यापक है अर्थात् आत्माके सब धर्मोंमें चेतन व्यापक है जिसके कारण सब गुण चेतनात्मक हैं। वह चेतन अपने स्वरूपसे द्योतमान है और अविनाशी है। चेतना एक शक्ति है, सहज भाव है व वह अविनाशी है। सहजकी व्याख्या है, सह जायते इति सहजम्। जबसे यह पदार्थ है तबसे यह चेतन है। अतः यह सहज चैतन्यभाव ही है। चेतना ऐसा गुण है जो चेतनके साथ है सहज और वह भगवती है, भगवान आत्मदेवके साथ सदा रहनेवाली शक्तिविशेष है अर्थात् आत्माकी जो सहज शक्ति है वह है भगवती।

उपयोग—चेतना शक्तिकी जो परिणति है उसको उपयोग व पर्याय कहते हैं किन्तु यहाँ उपयोग शब्दका अर्थ जानने देखनेकी क्रियाका वर्णन नहीं, किन्तु इंग्लिशमें यूज शब्दको जिस प्रकार प्रयुक्त किया है, बोलते हैं कि इसका क्या यूज किया है वैसा ही उपयोगका अर्थ है यूज। आत्मा है उसका उपयोग, काम काज क्या है? जैसे लोक व्यवहारमें भी कहते हैं कि द्रव्यकी बृत्ति हो, द्रव्यका उपयोग हो, सो यह चेतना गुण है व उपयोग पर्याय है। इस चेतना व उपयोगसे निवृ त्तिपना जहाँ पर अवतीर्ण होता है, प्रतिभात होता है वह जीव है।

अवतीर्ण शब्दका स्पष्ट विशिष्ट भाव— उतरा हुआ, अवितीर्ण हुआ, प्रतिभात हुआ का भाव यह है कि द्रव्यका जानन जो होता है वह इस ढंगपर होता है कि हमने उसमें से कुछ खींच लिया। उसका फोटो खींच लिया। अर्थात् कैमरे के समान फोटो खींच लिया अर्थात् उतार लिया। अवतीर्ण का अर्थ है उतार लिया।

जीवकी उपयोगदृष्टिसे व्याख्या—जिसमें चेतन और उपयोगको उतारा गया है वह जीव कहलाता है और जहाँ से यह सब नहीं उतारा जा सकता है वह अचेतन कहलाता है। जिन पदार्थोंसे हम चेतनात्मकताको नहीं खींच सकते हैं वह है अचेतन। इन शब्दोंमें अमृतचंदजी सूरि कह रहे हैं। यह चेतन कैसा है इसको समयसारमें अपने स्वरूपसे ही द्योतमान बताया है यथा णावि होदि अप्पमत्तो, ण पमत्तो जाणओ दु जो भावो। एवं भणंति सुद्धं णाओ जो सोउ सो चेव॥

जब यह पूछा गया कि वह शुद्ध आत्मा क्या है? जो एकत्वविभक्तरूप है, जिसके जाननेमें सब संकट दूर हो जाते हैं। सबसे पहिला उद्योग और पुरूषार्थ इस जीवका यही है कि ज्ञानस्वरूप यह आत्मतत्त्व अपने निजके ज्ञानमें विषयभूत हो जाय।

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

हितप्राप्तिका स्थल—बस, यही सबसे बड़ा उद्योग है कि यह शुद्ध आत्मतत्त्व ज्ञानका विषयभूत हो जाय। संतोष यहीं मिलेगा, हितकी प्राप्ति इसी जगह होगी। अन्यत्र तो केवल भटकना ही मात्र है। सिद्ध शुद्ध आत्मतत्त्वके जाननेसे सारे संकट टलते हैं। शब्दार्थसे वस्तुका ग्रहण नहीं, किन्तु आत्मतत्त्व क्या है ? इसे समझो, वह न कषायसहित है और न कषायरहित है किन्तु एक ज्ञायक भावमात्र है। और इस ज्ञायक भावको भी शब्दार्थसे न लेना किन्तु जो जाननेवाला है उसे लेना। जो जाननेका भी विकल्प करता है, वह शुद्ध आत्मतत्त्व को नहीं जान पाता है, क्योंकि वह भी एक विशेषण बन गया है। और जितने विशेषण होते हैं वे भेदक होते हैं। शुद्ध आत्मतत्त्व अनुभव द्वारा ही विशद गम्य है।

विशेषणाधीन नामकरण—किसी पदार्थका वास्तवमें कोई निजी नाम नहीं है, किन्तु उस पदार्थका विशेषण बनाकर नामकरण किया गया है। यदि शब्दार्थ ही लें तो उस शब्दमें पूरी चीज नहीं पकड़ी जा सकती है। किसी पदार्थका सही नाम कोई रखा हो तो बतलावो ? यदि कहो कि इसका नाम चौकी है तो इसको चौकी कहना वस्तुका नाम नहीं है यह तो उस पदार्थकी विशेषताका द्योतक है। जिसमें चार कोनेकी विशेषता है, वह चार कोनेवाली चौकी है। आइये और भी शाब्दिक अर्थोंपर विचार करें। जैसे घड़ी है याने जो घड़ी जाय सो घड़ी कहलाती है, यह शब्द भी विशेषता ही बतलाता है। चटाई, चट आई, चट धरी अर्थात् चटाईका कोना उठाया और उसे चट धरी। यह शब्द भी विशेषता बतलाता है। जैसे किवार जो किसी को वार दे, रोक दे, जैसे कुत्ता, बिल्ली, आदि किसी को रोक दे सो किवार है। यह भी उस पदार्थकी विशेषताको बताने वाला शब्द है।

क्या निजतत्त्वका कोई नाम है ?—निज तत्त्वका कोई नाम नहीं है। कौन सा नाम है बतलावो ? तो कोई भी नाम नहीं मिलता। कहोगे जीव, यह भी जीव नहीं हैं क्योंकि इस जीव शब्दने भी विशेषण ही बतलाया, कहोगे ज्ञायक ! तो ज्ञायक शब्दसे वह ज्ञायक गुण वाला, ज्ञानका काम करने वाला इतना ही भाव न लो, किन्तु एक विशेषणके द्वारा उस तत्त्वको समझलो। और, फिर उस विशेषणका लगाव छोड़ दो। ऐसा वह शुद्ध ज्ञायकतत्त्व है। वह क्या है इसको जान लिया कि नहीं ? हाँ जान लिया। हमें बतलादो। अरे वह तो जो नाथ है सो ही है ? उसे कैसे और क्या बतलावें। ज्ञायकस्वरूप जो जीव है उसकी कुछ करतूतोंको बतलाने लगे तो उसका अपमान है, क्योंकि करतूतोंसे अंश ही बतलावोगे, पर वह अंशात्मक नहीं है।

आत्माकी जानकारीका मार्ग—जानकारियोंके द्वारा आत्माको जानना यह कठिन मार्ग है। और, अनुभूतिके द्वारा आत्माको जानना यह सरल मार्ग है। आत्माके बारेमें

To report error, please contact vikasnd@gmail.comVersion 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

व्याख्यान हुए, वर्णन हुए, पुस्तकें देखी, एक तो यह मार्ग है और एक यह मार्ग है कि कमसे कम इतना तो समझमें आये कि लो, जितने भी पदार्थ हैं उन पदार्थोंके मोह में, रागमें कुछ सार नहीं हैं, उनसे हित नहीं है। उनमें लगनेसे तो धोखा ही धोखा मिलता है। हम चाहते कुछ हैं और ये पदार्थ परिणमते अन्यरूप हैं इस कारण किसी भी पर पदार्थका हमें चिन्तन न करना चाहिए इनका ध्यान भी न करना चाहिए। इतनी भीतरमें बात समाई हो और इस ही सत्यका आग्रह करके बैठ जाय कि लो मैं बैठा हूँ, मुझे मेरा नाथ दर्शन देगा तो उसके दर्शनकी उत्सुकतासे यह मैं तैयारीके साथ बैठा हूँ कि किसी भी पर पदार्थको उपयोगमें न लाऊँगा। ऐसा ध्यानमें यदि आ गया तो पर पदार्थोंसे अपने उपयोगको तुरन्त हटा लेगा। वह समझ रहा है कि पर पदार्थोंसे मेरा कोई मतलब नहीं है। उनके सम्बन्धसे विकल्प ही मुझको मिलते हैं। विकल्पोंसे परेशानियाँ हैं, हैरानियाँ ही मिलती हैं। इसलिए मैं किसीका भी ध्यान न रखूँगा। ऐसी ही तैयारीसे कुछ क्षण बीतें, किसी भी पर पदार्थोंका विकल्प न करें, ऐसी स्थितिमें स्वयं चूँकि जाननेवाले समस्त पर पदार्थोंके विकल्पोंका निषेध कर दिया सो केवल ज्ञान ही अनुभवमें आता है और उस ज्ञानानुभूतिके साथ अनन्त आकुलताएँ हटनेसे परम आनन्द होता है, परम आल्हाद होता है। जब वह जान जाता है कि यह मैं यों हूँ। उसे स्मरण रहता है कि मैं तो यह हूँ। मैं वह कैसा हुं ? किसी बाहरी जगह नेत्र गड़ाकर देखा जाय तो क्या मैं वह हूँ ? नहीं। मैं क्या हूँ ? मैं एक भावात्मक तत्त्व हूँ। जो एक ज्ञान और आनन्दके रूपमें अनुभूत होता है। ऐसे स्वरूप में ही द्योतमान यह मैं चेतना हूँ और अविनाशी हूँ। इसमें तरंगें उठती हैं, तरगें मिटती हैं। तरंगें उत्पाद व्ययके लिए रहती हैं। मगर यह चेतना आत्मस्वरूप है, आत्माके स्वभावसे अस्तित्वमें है। इसका कभी विनाश नहीं होता इसका उपाय नहीं हैं अनपायी है और यही एक भगवती है। जिसकी दृष्टि से सारी समृद्धियोंमें वृद्धि होती है। भगवतीके प्रसादसे सारे संकट दूर हो जाते हैं। इस आत्मानभूतिके नाम पर ही देवताओंके नाम देखिए।

विद्वानों की कल्पनायें—एक जमाना था कि विद्वानोंका समूह था। वे तत्त्वका विवेचन अपनी-अपनी अलंकारिक भाषामें करते थे किन्तु यथार्थता न जाननेके कारण वे अनजानों के देव वन गये, सो देवताओंका रूप रख लिया।

लोकमान्य सरस्वतीका रूप—सरस्वतीका रूप देखो, कविने अलंकारमें बताया तालाबमें कमल है, कमलपर सरस्वती बैठी हुई होगी। उसके चार हाथ हैं, एक हाथमें शंख है, एकमें पुस्तक, एकमें माला, एकमें वीणा आदि-आदि तरहसे देवीका रूप बना दिया। अरे किस मानसरोवरमें कमलपर बैठी हुई सरस्वती मिलेगी ! ऐसा कुछ नहीं है। वह सब एक विद्या तत्त्वका वर्णन करनेका अलंकार था।

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

यथार्थ सरस्वतीका रूप :—सरस्वती तालाबमें क्यों बैठी हुई है कि विद्या का प्रसार तालाबकी तरह है। सर:प्रसारणं यस्य सा सरस्वती। जिसका प्रसार है वह सरस्वती है। देखो, इस कैवल्य विद्याका भक्त तीनकालके तीन लोकके द्रव्य, गुण, पर्यायोंको एक समयमें जान लेता है। कितना जान लेता है ? एक सिद्धने सर्व विश्व जाना ऐसे अनन्ते सिद्धोंने जाना और जानते हुए अनन्ते सिद्धोंको प्रत्येक सिद्धने जाना। इतना एक भगवानने जाना, इतना दूसरे भगवानने जाना, इतना ही तीसरे भगवानने जाना, भगवानने अनन्त भगवानोंको जाना, इस विद्याके प्रसारकी क्या सीमा है ? ऐसी ही विद्याका नाम, कैवल्यका नाम सरस्वती है। ज्ञानकी साधना करना यही सरस्वतीकी उपासना करना है। हंसकी तरह शुद्ध निर्मल चित्तवाला भक्त सरस्वती भक्त होता है, जो सरस्वतीकी उपासनामें बैठा रहे ऐसा हंस आत्मा सरस्वतीका सेवक है। हंसमें यह गुण है कि दूधको पानीसे अपनी चोंचके द्वारा अलग कर लेता है वैसे ही जिस ज्ञानीमें यह गुण है कि जो ये सारे पदार्थ एक क्षेत्रावगाहमें संकर हो रहे हैं उनमेंसे जिसने निजी गुणको तत्त्वको, अलग कर लिया ऐसा हंस आत्मा ही ज्ञानका उपासक है। और व्यवहारके लिए वे जो चार हाथ हैं वे हैं चार अनुयोग, और जो हाथोंमें चीज हैं वे हैं साधनके संकेत। संगीतसे लय तथा भक्ति भजनमें ज्ञानाराधनाके लिए उत्साह जगता है, ऐसे ज्ञानकी आराधना होती है। ज्ञानाध्ययनके के लिए पुस्तक लिए है, स्वाध्यायसे ज्ञानकी उपासना होती है। जाप ध्यानके प्रसादसे ज्ञान साधना होती है, जिसका प्रतीक है माला। प्रणवध्वनिसे कठिन मैल दूर होते हैं, जिसका प्रतीक शंख है। इस अलंकारको लोगोंने बाहरी रूपसे मान लिया कि यह है सरस्वती।

देवतादिके नाम:—देवी देवताके नाम भी अनेक हैं। जैसे दुर्गा, चंडी, मुण्डी, चंद्रघण्टा आदि। ये सब क्या है? ये सब ज्ञानानुभूतिके नाम हैं। दुर्गा दु:खेन गम्यते या सा दुर्गा। जो बड़ी कठिनाईसे पायी जावे उसको दुर्गा कहते हैं। । जो चीज कठिनाई से पायी जावे और जिसके पानेसे संकट दूर हो जावे ऐसी चीज क्या है दुनियामें ? वह है आत्मानुभूति। वह आत्मानुभूति ही देवी दुर्गा है। चंडी-चंडयति भक्षयति रागादीन् इति चंडी। जो रागादिको समाप्त करे सो चंडी कहलाती है। चंद्रघण्टा-अमृतस्रावणे चंद्र घंटयति प्रेरयति इति चंद्रघण्टा, जो अमृतके बरसानेमें चंद्रमासे भी ईर्ष्या कर सकती है ऐसी देवीका नाम चंद्रघण्टा है। परम अमृत क्या है ? परम अमृत है ज्ञान। उस ज्ञानकी अनुभूति ही एक सबसे उच्च अमृत बहाने वाली चीज है। इस आत्मानुभूतिका ही नाम चंद्रघण्टा है। कालीका रूप देखिये, काली-कलयति, भक्षयति विकारान् इति काली, जो रागादि शत्रुओंका विनाश करदे, उनका अस्तित्व ही न रहे, जो प्रचण्ड होवे उसे काली कहते हैं। जो रागादिकोंका विनाश करदे ऐसी

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

कौन सी चीज है ? वह है आत्मानुभूति । जब यह आत्मानुभूति न हो तब पर पदार्थोंका लक्ष्य करके अनेक प्रकारकी दीनताएँ आत्मामें उत्पन्न हो जाती हैं। सो उस देवताकी दृष्टिसे ही अपनी विजय होती है। वह चेतना भगवती है। और उपयोग क्या है कि उसका परिणमन। इस चेतना गुण व उपयोग पर्यायसे रचा हुआ जो मालूम पड़े वह जीव है। गुण हुआ चेतन, पर्याय हुआ उपयोग।

अचेतन क्या ?—अचेतन है कौन ? जिसमें कि चेतनात्मकता नहीं है। चेतना उपयोगसे सहचरित होती है। कोई शक्ति पर्यायशून्य नहीं होती। कुछ भी परिणति मालूम पड़े, कुछ भी भेद मालूम पड़े, परिणमन जचे, तुरन्त उसका आधारभूत शक्ति मान लो। आत्मामें चेतना शक्ति है उसका जहाँ अभाव है, बाहर भीतर जहाँ अचेतनता मालूम पड़े उसे कहते है अजीव। अर्थात् बाहरमें चेतनात्मक परिणति नहीं है, अन्तरमें चेतना शक्ति नहीं है।

परिणतिको कहते है बाहरी चीज और शक्तिको कहते हैं आन्तरिक चीज। क्योंकि परिणति तो उठती है निकलती है, जाती है, विलीन होती। परिणतिका नाम बहिस्तत्त्व भी है और गुणका नाम है अंतस्तत्त्व। जो बाहर से अचेतन है, भीतर भी अचेतन है, ऐसा जो पदार्थ है वह अजीव कहलाता है। अपने को काम क्या है ? अजीवसे हटना और जीवमें लगना।

ज्ञायकस्वरूपके यात्रीकी मार्गमें कठिनाइयाँ—जीव शुद्ध ज्ञायक स्वरूप है, नित्य अविनाशी है उस ज्ञायकस्वरूपकी कैसे पहिचान हो तो ज्ञायकस्वरूपका यात्री जब चलता है तो उसे रास्तेमें बहुत घाटियाँ मिलती है जिन घाटियोंको पार करना एक प्रबल ज्ञानसे हो पाता है। पहली घाटी तो यह है कि जो दिखनेवाले पदार्थ हैं, याने वैभव, सोना चाँदी आदि ये तो पहिली घाटियाँ हैं। इस घाटीको पार किया अर्थात् इस घाटीमें उपयोग न अटका तो उसके बाद परिवारकी घाटियाँ आती है। उसमें भी उपयोग अटक जाता है। इस शरीरकी घाटीको पार करके आगे बढ़ने पर कीर्ति, प्रतिष्ठा आदिकी और भी घाटियाँ आती है। भीतरमें एक नहीं अनेक घाटियाँ होती हैं जो दिखती नहीं हैं पर अन्तरमें चोट देती रहती हैं इन सबसे आगे बढ़नेपर आगे क्या है वह ? भावकर्म मिलता है, भावकर्म मैं नहीं हूँ, इससे भी जुदा हूँ ऐसे भावकर्मसे आगे बढ़ कर चलें तब एक घाटी मिलती है अल्पविकास की।

आत्मीय विकास—अल्प विकास आत्माके गुणकी कला है, वह निमित्तके सद्भावसे नहीं होता है। निमित्तके अभावसे होता है। हमारे छुटपुट ज्ञान ज्ञानावरण कर्मके उदयसे नहीं होते है किन्तु ज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशमसे होते हैं। ये सब छुटपुट विकास भी घाटियां है, इनमें भी यह जीव अटक जाय तो आगेकी यात्रा

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

खतम है। उनसे गुजरे तो आगे घाटियाँ मिलती है पूर्ण विकाशकी दृष्टि, जैसे कि वह केवलज्ञानरूपमें हुआ, अनन्त ज्ञान दर्शनादि रूपमें हुआ, जैसे भगवानको जानते हो कि वह अनन्त ज्ञानी है, अनन्त द्रष्टा है, इस रूपमें अपने ज्ञायक स्वरूपकी पहिचान में लगे तो यह भी घाटीमें अटकना है क्योंकि इस दृष्टिके रहते भी विकल्पोंसे छुटकारा नहीं। इससे भी आगे गुजरो तो कहीं मिलता है शुद्ध आत्मतत्त्व। अलग यह बतानेकी चीज नहीं, न किसी अशक्तिकी चीज है किन्तु वह अनन्य ज्ञायक स्वरूप आत्मतत्त्व जो है सोई है। आत्मानुभूतिके समय शरीरका भान नहीं, विकल्प है नहीं, चर्चा है नहीं, बुद्धिगति वहाँ कुछ है नहीं, वहां तो एक बिलक्षण आनन्द का अनुभव है और वह आनन्द उस अनुभवके चेतनेको साथ लिए हुए है। ऐसी स्थिति उस आत्मानुभूतिमें होती है। उस अनुभवके द्वारा आत्माको पहिचान लेना सुगम होता है और सत्य होता है। आत्मानुभवसे जो आत्मामें ज्ञान होता है वह पूर्ण स्पष्ट होता है। ऐसा जो आत्मतत्त्वका ज्ञान होता है वह पक्का होता है, जैसे बाहुबलि स्वामीकी कोई चर्चा करे तो सामान्यतया ज्ञान तो हो गया किन्तु जो साक्षात् दर्शन करे उसके ही स्पष्ट ज्ञान है। वह साक्षात् ज्ञान इस चर्चामें नहीं है। इसलिए आत्माके जाननेके उपायमें मात्र ज्ञानका संचय न करो किन्तु ध्यानमें भी बृत्ति लावो तो आत्मा अपने इस उपयोगमें उपयोगका विषय हो सकता है।

इस प्रकार जीव और अजीव ऐसे दो भेदोंका वर्णन करके जब दूसरे प्रकार से द्रव्यके भेद कहते हैं।

पुग्गलजीवणिवद्धो धम्माधम्मत्थिकायकालड्ढो।
वट्टदि आयासे जो लोगो सो सव्वकाले दु ॥ १२८ ॥

लोक अलोक विशेषका निश्चय—अब लोक और अलोक इस प्रकार के विशेष का निश्चय करना है। द्रव्यके लोकपना और अलोकपना ऐसी विशिष्टता है, क्योंकि अपने अपने लक्षणका स्वभाव पाया जाता है। चाहे आकाशका भेद लोकाकाश व अलोकाकाश कहलो, चाहे द्रव्यका भेद लोकपना, अलोकपना कहलो, प्रायः बात एक है, किन्तु नई पद्धतिका वर्णन है। जिसे साधारणतया ऐसा कह देते हैं कि आकाश के दो भेद है, लोकाकाश व अलोकाकाश उसे अब इस तरहसे देखिए कि द्रव्य तो सामान्य है, वह तो सामान्य वर्णन है पर द्रव्यके लोकता भी है और अलोकता भी है। जैसे कि समस्त द्रव्य हैं और समस्त द्रव्योंमेंसे भेद छांटो तो यह निकला कि जीव है और अजीव है। उन समस्त द्रव्योंमेंसे इस तरहका भेद छाँटते हैं कि लोकत्वविशिष्ट और अलोकत्व विशिष्ट ऐसे दो भेद हैं। इसमें क्षेत्रदृष्टि आये कि यह तो लोकत्वविशिष्ट द्रव्य है जहाँ कि छह द्रव्योंका समूह है, वह साराका सारा लोकत्वविशिष्ट है। जहाँ

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

अलोकता है वह अलोकत्वविशिष्ट द्रव्य है। यह इस तरह से देखना है कि यहाँ द्रव्य की व्यक्तियाँ नहीं बता रहे है, द्रव्यके व्यक्तिगत भेद नहीं बता रहे हैं। द्रव्य तो मान लो एक चीज है। जैसे ब्रह्मको मान लो एक, जिसे सामान्य तत्त्व मानो, इस तरह की मान्यता लेकर चलो कि यह सारा जगत एकरूप है। वह किस रूप है ? द्रव्य स्वरूप है, सत् स्वरूप है। कौन ऐसा है जो द्रव्य नहीं है ? कौन ऐसा है जो सत् नहीं है ? एकरूप है सत् स्वरूप है, जो द्रव्य स्वरूप है अब उस एक द्रव्यका इस तरहसे भेद कर रहे हैं कि द्रव्यके दो भेद है। लोकत्वविशिष्ट द्रव्य और अलोकत्वविशिष्ट द्रव्य।

लोकत्वअलोकत्वबिशिष्ट द्रव्य—आकाश द्रव्यपर प्रधान दृष्टि देकर कहें तो आकाशके भेद २ है—(१) लोकाकाश और (२) अलोकाकाश। यहाँ अद्वैत पद्धतिकी दृष्टि करके चल रहे है कि जगतके समस्त पदार्थ एक है जिसे द्रव्य नामसे कहा है। केवल एक अद्वैतकी शैलीसे इसको समझना चाहिए सर्वम् एकम्, सब कुछ एक है। वह क्या है जो सर्वव्यापक है ? ऐसा वह सब कुछ एक है, फिर उसका यह भेदीकरण है कि कोई जीव है, कोई पुद्गल है, कोई धर्म है, कोई अधर्म है आदि। फर्क इतना आता है उस अद्वैत कथनमें और यहाँ कि वहाँ तो यह मानकर चलें कि सब एक है और उसकी ये तरंगें है, और यहाँ भी यह मान कर चलेंगे कि ये सब एक है मगर यह प्रदेशवान एक नहीं है। सर्वसाधारणवृत्तिशील द्रव्यत्व स्वरूपत: एक है और फिर वही जो कि द्रव्यरूपसे माना गया तत्त्व है उसके बारेमें फिर भेद कल्पनाएँ हो, यह उस एक द्रव्यकी तरंग है। यह तरंग द्रव्यत्वमें नहीं, यहाँ उपयोग ही तरंग है। ऐसी दृष्टि लगाकर द्रव्यके भेद कर रहे हैं कि द्रव्य दो प्रकारके होते हैं, एक लोकत्वविशिष्ट और दूसरा अलोकत्वविशिष्ट। आकाशकी बात नहीं कह रहे हैं कि एकदम कहीं आकाश टूट कर दो हो गया हो। द्रव्यके भेद किये जारहे हैं कि लोकत्वविशिष्ट और अलोकत्वविशिष्ट। यहाँ द्रव्योंकी समवायात्मकताको लेकर जो पिण्ड आदि हों उसे लोकत्वविशिष्ट द्रव्य कहते हैं और केवल आकाशात्मकताको कहते हैं अलोकत्व-विशिष्ट सूरिजी का यह नहीं कहना-है कि जहाँ आकाशमें ६ द्रव्य रहें उसे लोक और जहाँ न रहे उसे अलोक कहते हैं। क्योंकि, ऐसी दृष्टि बननेमें ही यह बुद्धि न आयगी कि एक मानें और एक मानकर उसकी तरंग निकालें, उसका अवयव बनावें, ऐसी बुद्धि नहीं आती है, इस कारण भी यों कहा कि लोक क्या है ?

लोक क्या ?—६ द्रव्योंमें जो समवायात्मकता है वह लोक है। यहाँ लोकत्व-विशिष्ट द्रव्यत्वके अवगममें ६ द्रव्योंको अलग नहीं करना चाहिए, इसलिए सीधा उस मर्मका संकेत कर सकें इस तरहका वर्णन भी किया गया है कि जितने आकाशमें ६ द्रव्य पाये जायें उसे लोकाकाश कहते हैं। हम जिस द्रव्यके भेद करें उसके ही भेदोंकी सन्मुखता रहनी चाहिए। ६ द्रव्योंको जो समवायात्मकता है वह है लोक अर्थात् उस

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

पूरे समुदायको कहा है लोक। जैसे कहते हैं नगर। और अगर यह कहें कि ऐसी जगह, जिसमें ऐसे मकान बने होते हैं, ऐसे लोग रहते हैं, और और भी वर्णन करते चलें तो वह नगरका सीधा प्रदर्शन नहीं है। नगरको सीधा कहें कि यह नगर है, यह जंगल है बस हो गया, ऐसी दृष्टिमें कहना चाहिए इस प्रकार ये हुए लोक और अलोक। ६ द्रव्योंकी समवायात्मकता जिसके है वह लोक है। जिसमें है ऐसा नहीं, जैसे कि आकाश में ६ द्रव्य हैं। किन्तु भैया! जहाँ ६ द्रव्योंकी समवायात्मकता है, वह है लोक और जहाँ समवायात्मकता नहीं है वह है अलोक। अब इसका ही वर्णन करते हैं कि समस्त द्रव्योंमें व्यापनेवाला जो परम समस्त आकाश है उस आकाशमें जितनी परिणतिमें जीव पुद्गल जो कि गमन करनेकी और ठहरनेकी प्रकृति रखते हैं वे जीव और पुद्गल जितने आकाशमें गति और स्थितिको किया करते हैं, और वे जहाँ हैं, वहाँ धर्म द्रव्य और अधर्म द्रव्य भी आ जाते हैं। धर्म द्रव्य कैसा है जो जीवके पुद्गलोंके गमनमें निमित्तभूत है, ऐसा धर्म द्रव्य और अधर्म द्रव्य जो जीव पुद्गलकी स्थितिमें निमित होता है और सब द्रव्योंके परिणमनका निमित्तभूत काल जिसमें नित्य दुर्ललित है इतने आकाशको तथा इन सब द्रव्योंको जिन्होंने आत्मरूपसे कर लिया है, यह जिसका स्वलक्षण है, उसको लोक कहते हैं। लोक कहनेमें सब द्रव्योंका समूह नजर आना चाहिए। ऐसा न नजर आना चाहिए कि यह तो इतना आकाश है, जिसमें जीव रहता है, जिसमें पुद्गल रहता है आदि। क्या जीव आकाशमें है? पुद्गल, धर्म, अधर्म, काल, क्या आकाशमें हैं? ये पुद्गलादि आकाशको छोड़कर अन्यत्र रहते हों और फिर उन्हें उठाकर आकाश में धर दिया हो तो कहें कि पुद्गलादि आकाशमें हैं। यह जिस दृष्टिसे वर्णन चल रहा है वह विलक्षण दृष्टि है। एकको महान् बता दें, आधार बतादें तथा ५ द्रव्योंको आधेय बतादें तो ऐसी अनुदारता यहाँ नहीं है। इसमें मर्मकी बात है स्वतन्त्रता। क्या? कि ६ द्रव्योंका जितना मात्र समुदाय है वह लोक है। हम अरेन्जमेन्ट नहीं कराते हैं कि ये जितनेमें रहें, उतनेको लोक कहते हैं, ऐसा प्रबन्ध नहीं करवाना है। वह समस्त द्रव्य है, और वह द्रव्य दो प्रकारका है। (१) लोकत्वविशिष्टद्रव्य और (२) अलोकत्वविशिष्ट द्रव्य। देखो द्रव्य तो एक रहा और वह द्रव्यत्व व्यक्तिरूपसे नहीं किन्तु जातिरूपसे। जो ब्रह्म मानते हैं, ज्ञानाद्वैत मानते है वे भी तो जाति रूपसे अथवा व्यक्तिरूप उपयोग प्रतिभासके आधारसे उपयोग बनाकर कहें तो उनकी कोईसी मान्यता गलत नहीं है। एकान्त बनानेसे अद्वैतकी मान्यता गलत हो जाती है। जैसे ब्रह्म एक है। क्या गलत है? पर वह ब्रह्म कोई अलगसे चीज है और फिर यह उसकी पर्याय है, इस तरहसे दृष्टि बनाना तो गलत है।

ब्रह्म—ब्रह्म प्रदेशात्मक नहीं। अच्छा, मनुष्य प्रदेशात्मक है क्या? मनुष्यत्व

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

कोई चीज है क्या ? अगर कोई चीज है तो हमें आँखों दिखादो। हमें पकड़ा दो। आप यदि एक मनुष्यको पकड़ा दें कि लो यह मनुष्य तो एक चीज है तो वह मनुष्य तो आ गया हमारे कब्जेमें। अब तो ये सब दृश्यमान जन मनुष्य नहीं रहे, गैर मनुष्य हैं। क्या ऐसी बात है ? मनुष्यत्वको व्यक्तिरूपसे नहीं देखना, किन्तु जातिरूपसे देखना है ! वह जाति एक सत्तावाली हो और सबमें फैली हो ऐसा नहीं है, वह एक व्यापक है, बाहर नहीं है। किन्तु जिसका जो निर्णय किया जारहा है, कि मनुष्य सर्व-व्यापक है, अगर जातिकी दृष्टि रखकर करें तो सही बन जाता है और अगर व्यक्तिकी दृष्टि करके करें तो गलत हो जाता है। इसी तरह ब्रह्मका वर्णन यदि जातिकी दृष्टि करके करें तो जैन सिद्धान्तके बिल्कुल अनुकूल है। पर यदि व्यक्तिकी दृष्टि रखकर वर्णन किया जावे जैसे कि तुम्हारा पिता है, तुम्हारा पुत्र है इसी तरह दुनियामें एक कोई ब्रह्म है ऐसा व्यक्ति बने और उसकी फिर यह तरंग है यों माया बतावें तो यह वस्तुस्वरूप नहीं बनता। जातिमें कुछ विरोधकी बात न थी। इस तरह सब कुछ जगतमें एक है, वह क्या ? द्रव्य। अब उस द्रव्यके जातिकी अपेक्षा ही लगाकर देखो, फिर जातिकी दृष्टि से देखो। भेद जब करते हो तो जिसके प्रभेद किए, उन्मुखता में उस भेदके साथ रहना चाहिए।

मूल भेद— द्रव्य दो प्रकारका है। (१) लोकत्वविशिष्ट और (२) अलोकत्व-विशिष्ट। तो लोक किसे कहते हैं कि जिसमें जीव और पुद्गल जो कि चलने ठहरने वाले हैं, वे जहाँ रहें, वे जितनेमें गमन कर सकें, जितनेमें ठहर सकें उसे कहते लोक। लोक किसे कहते हैं ? जितने में धर्मद्रव्य और अधर्म द्रव्य एक पूर्ण व्यापकर ठहरे हैं वह है लोकाकाश। धर्मद्रव्य अनादिसे है, आकाश भी अनादि से ही है, द्रव्य भी ये सब अपने क्षेत्रमें हैं, आकाश भी अपने क्षेत्रमें हैं, इस कारण उनमें आधार आधेय नहीं बताया। परमार्थदृष्टिसे स्वरूप ही आधार है और स्वरूप ही आधेय है। इस तरह बाँकी समस्त द्रव्य जितने हैं उनका समवाय ही जिसका लक्षण है वह लोक है और जितनेमें जीव और पुद्गलकी गति नहीं है, धर्म द्रव्य और अधर्म द्रव्य अवस्थित नहीं है, केवल आकाश ही जिसका स्वलक्षण हो उसे अलोक कहते हैं। इन सब विशेषणोंमें जीव पुद्गलको तो गति और स्थिति करनेवाला बताया सो ठीक भी है। और अब धर्म और अधर्मका व्यापक रहना (अवस्थित) बताया सो ठीक है, और कालको बताया कि जिसमें काल दुर्ललित है, इसमें कालका स्वरूप कैसा है सो कल्पना करो कि कोई भयानक सर्प या कुछ भी हो, दुनियामें, या आसपासके लोगोंमें खलबली मचा देता हो उसे कहते हैं दुर्ललित। इसी तरह काल द्रव्य ऐसा द्रव्य है कि जिसका निमित्त पाकर ६ द्रव्य निरन्तर प्रतिक्षण परिणमते रहते हैं, तरेड़ बरेड़ हो जाते हैं, एक क्षण भी कोई वस्तु विश्राम चाहे तो नहीं ले सकता है। कोई वस्तु प्रार्थना करे

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

कि मैं अनन्तकालसे प्रतिक्षण परिणमता चला आया हुआ थक गया, एक समय तो मुझे विश्रामसे रहने दो. ऐ काल ! तू क्यों परेशान करता है ? क्यों दुर्ललित बनता है, सो जैसे जीभोंमें सांपकी जीभ अति चंचल है, लपलपाती हुई है इसी तरह कालका भी चंचल दृष्टिका वर्णन है कि एक क्षण भी जीव या अन्य कुछ बिना परिणमे नहीं रह सकता। मोटी दृष्टिसे भले ही ऐसा हो कि यह चौकी है जैसी कल देखी थी वैसी ही आज है, कुछ भी तो फर्क नहीं हैं, पर ऐसा नहीं है। फर्क प्रतिसमय होता जाता है।

क्षण क्षण वृद्धि :—एक बालक ८ वर्षमें मानो कि ४ फिट ऊँचा है और एक वर्षमें वह २ इन्च बढ़ जाता है तो क्या सालके ११ महीने, २९ दिन, २३ घंटा, ५९ मिनट तक कुछ नहीं बढ़ा, और एकदम ६० वें मिनटमें वह दो इंच बढ़ गया ? क्या ऐसा होता नहीं है ? क्या ऐसा होता है कि एक महीने तक कुछ न बढ़े और उसके बादमें करीब पाव इंच बढ़ जाय ? ऐसा भी नहीं है। क्या ऐसा भी होता है कि वह एक घंटेमें बढ़ जाता है ? ऐसा भी नहीं है। क्या वह एक घंटाके ५९ वें मिनट तक नहीं बढ़ता है और ६० वें मिनटमें बढ़ जाता है ? ऐसी बात भी नहीं हैं। प्रत्येक समय उसमें वृद्धि हो रही है। अगर प्रत्येक समयमें वृद्धि न होती तो साल भरमें भी वह बढ़ न पाता। दृश्यमान परिवर्तन सूक्ष्मपरिवर्तनके द्योतक हैं।

दृष्टान्त :—जैसे एक चौकी है, यह ४-५ वर्ष पहिले बनी होगी, आज यह पुरानी नजर आरही हैं। ऐसी जीर्ण और भद्दे रंग वाली यह चौकी पुरानी नजर आरही है। तो क्या कल ही यह चौकी ऐसी होगई ? अरे जिस दिन बन चुकी थी उस दिनसे पुरानी बनती चली आरही है। और वहाँ धीरे-धीरे इतना परिवर्तन हो गया कि जो अब पुरानी दीखती है। जब यह पुरानी दीखती है तब हम समझ लेते हैं कि यह पुरानी हो गयी। पदार्थ तो समय समय अपनी नबीन नवीन परिणति करते चले जाते हैं। हम जिस ज्ञानोपयोगके द्वारा कुछ जानते हैं वह ज्ञानोपयोग हमारे अन्तर्मुहूर्तमें बनता है तब हम ऐसा समझ पाते हैं। एक समयके उपयोगसे हम पदार्थोंको नहीं जान सकते, क्योंकि मलिनतामें निरपेक्षवृत्ति नहीं होती।

छद्मस्थ अवस्थाकी बात कह रहे हैं। अरहंत सिद्ध एक समयकी परिणतिसे समस्त विश्वको जानता है पर हम एक समयकी उपयोग बृत्तिसे पर पदार्थोंको नहीं सकते। यही छद्मस्थता कहलाती है। अन्तमुंहूर्तवृत्ति परम्परा हो तब इस बृत्तिको जान सकते हैं। ऐसा जानते हुए भी क्या अन्तमुंहूर्तके अन्दर समय समयपर नई नई बृत्तियाँ नहीं होती। होती हैं, हों, प्रत्येक समय हों, भिन्न भिन्न हों किन्तु अन्तर्मुहूर्तकी परिणतिसंततिके बिना छद्मस्थ आत्मा पदार्थको जान नहीं सकता। देखो, दीपकमें तेल जलता है, तेलकी एक एक बूँद जली, वह बूँद क्या अनेकों नन्हीं नन्हीं

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

बूँदोंका समूह नहीं है ? वह चिराग जिससे प्रकाश कर सकता है, वह प्रकाश जिससे होता है उस तेलके एक बूँदमें क्या असंख्यात तेलकी बूँदें नहीं हैं ? वह असंख्यात बूँदोंका समूह है जिनको हम हाथोंसे अलग नहीं कर सकते। पर उस दीपकके जलने का जो काम होता है वह उन नन्हीं नन्हीं बूँदोंमें से एकका काम नहीं है, किन्तु उन नन्हीं नन्हीं बूँदोंसे उत्पन्न परम्पराका काम है कि वह प्रकाश होता, ऐसा होने परभी नन्हीं नन्हीं बूंदें क्रमशः परिणमनमें, प्रकाशमें हैं मगर प्रकाशवृत्ति जिससे कि उजेलेकी बात बनी है वह अनेक बूंदोंका यूज है। इसी तरह छद्मस्थ अवस्थामें इतनी जो वृत्ति चलती है वह चलती है वह चलती तो प्रति समय है पर उसका जानना, समझना रूप जो अर्थक्रिया है वह अनेक समयके उपयोगकी परम्परामें फैला है।

हाँ, तो एक काल द्रव्य कितना काम करता है इस बातको तो देखो कि एक प्रदेशमें रहने वाला जो अनन्त परमाणुसमूह बैठा है उस सबके सबको, इतने समूचे धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य, और इतना समस्त आकाश और जीव जो जहाँ है उन सबको निरन्तर परिणमाते रहनेमें निमित्त है।

भैया, अब आगे देखो कि धर्म द्रव्य तो ३४३ घन राजू प्रमाण है। धर्म द्रव्य एक अंगुल मात्र स्थानमें निमित्त भूत काल द्रव्योंका निमित्त पाकर याने एक प्रदेशपर स्थित काल द्रव्यका निमित्त पाकर परिणम जाता कि नहीं ? परिणम जाता। मगर सभी जगह काल द्रव्य है, और सभी जगह धर्म द्रव्य है। तो वे सब निमित्त बने रहते हैं। यह तो ज्ञान दृष्टिसे भी कहरहे हैं कि काल नहीं होता तो कुछ नहीं परिणमता पर जैसी जो अवस्थित बात है, युक्तिमें आती है, समझमें आती है। अमुक चीज अमुकका निमित्त पाकर परिणम गयी। झरोखेसे चौकीपर प्रकाश आता है तो सूर्यका निमित्त पाकर यह चौकी प्रकाशरूप परिणम गई। झरोखा बंद कर देनेसे सूर्यका निमित्त नहीं पाया सो प्रकाशमयताकी निवृत्ति हो गयी। यह तो साधारण बात कहरहे है, युक्तिमें आती है, किन्तु ऐसी परिणति होनेमें निमित्तकी कलासे, निमित्तके असरसे, निमित्तकी शक्तिसे उपादान नहीं परिणमता, पर यह उपादान स्वयं इस काबिल है कि अमुकके परिणामको निमित्त पाकर यह स्वयं अपने कामको अपनी योग्यतासे अपना असर प्रकट कर लेता है। ऐसा निमित्त नैमित्तिक संबंध सब पदार्थोंमें होता है, पर पदार्थ अपनी परिणतिसे परिणमते हैं उसमें द्रव्यका नाम उपादान है। काल-द्रव्यकी पर्याय है समय। काल द्रव्यकी पर्याय निमित्त है। द्रव्य कभी भी निमित्त नहीं होता है। पर्याय ही पर्यायका निमित्त होता है। अब आगे कुछ गाथावोंके बाद काल द्रव्यका वर्णन आने वाला है।

काल द्रव्य क्यों असंख्यात प्रदेशवाला नहीं और क्यों एक प्रदेश वाला है ? यह

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

क्यों निमित्तभूत है? स्वयं आगे कहेंगे । कालके सम्बन्धमें जिज्ञासा होती है कि वह क्या एक प्रदेशवाला काल द्रव्य है ? काल तो समयका नाम हैं । इसी कारणसे श्वेताम्बर भाइयोंने काल द्रव्य नहीं माना है । और, दिगम्बर सिद्धान्तमें काल द्रव्यको अस्तिकाय नहीं कहा है, पर द्रव्य माना है । काल द्रव्य वास्तविक द्रव्य है यह आगे कहेंगे । यहाँ तो द्रव्यके दो भेद बता दिए कि एक लोकत्वविशिष्ट और दूसरा अलोकत्वविशिष्ट । यह द्रव्यके भेद बतानेकी एक विधि है । द्रव्य ६ प्रकारके हैं, यही सीधी पद्धति है । एक व्यक्तिके रूपमें द्रव्य एक चीज मानो तो उसका अवयव कैसे बन जायगा यह बात यहाँ विशिष्ट पद्धतिसे चल रही है ।

द्रव्योंमें क्रिया और भावका निश्चय :—अब द्रव्योंमें क्रियावत्त्व और भाववत्त्व दोनों ही विशेषताओंका निश्चय करना है । याने कोई द्रव्य जब कि क्रियावान और भाववान भी है तब कोई द्रव्य केवल भाववान ही है, क्रियावान नहीं है, ऐसी विशेषताका यहाँ निश्चय करते हैं ।

उप्पादिट्ठिदिभंगा पोग्गलजीवप्पगस्स लोगस्स ।
परिणामा जायंते संघादादो व भेदादो ।। १२६ ।।

पुद्गलजीवात्मक लोकमें उत्पाद, स्थिति और व्यय :—पुद्गलजीवात्मक, लोकके उत्पाद स्थिति और भंग होते हैं,ये सब परिणामोंके कारण व भेद तथा संघात के कारण होते हैं । आचार्य देवने यहाँ अपनी उस एकत्वपद्धतिको न छोड़कर अद्वैतसे द्वैतके निकालनेकी शैलीका मार्गदर्शन दिया है । धन्य है उन आचार्यश्रीके ज्ञानकी महिमाको । वे कहते हैं कि पुद्गलजीवात्मक इस लोकका उत्पाद, स्थिति और भंग होता है आचार्य श्रीने सीधा यों न कहकर कि पुद्गलमें उत्पाद, स्थिति व व्यय है और जीवमें उत्पाद, स्थिति व व्यय है, यों कहा द्रव्योंमें उत्पाद व्यय ध्रौव्यकी मुख्यता देकर कि पुद्गल जीवात्मक लोकमें उत्पाद स्थिति और व्यय होता है । ये विशेषताएं द्रव्यमें इस कारणसे हुईं कि कोई द्रव्य तो क्रियावान और भाववान दोनों ही हैं । और कोई द्रव्य केवल भाववान है ।

क्रियावान और भाववानका अर्थ :—क्रियाका अर्थ एक क्षेत्रसे दूसरे क्षेत्र तक जाना या उसमें कोई हलन चलन होना अथवा एक क्षेत्रसे दूसरे क्षेत्रमें आना है । ये सभी क्रियाएं परिस्पंद क्रियायें कहलाती हैं । और, भावका अर्थ यह है कि द्रव्यमें रंच भी परिस्पंद हुए विना और गति भी हुए बिना परिणमन पाया जाना । भवनं भावः परिणमनका नाम भाव है । दोनोंके अर्थमें मात्र अन्तर यह है कि क्रियाके परिणमन गतिपूर्वक हैं जब कि भावमें परिणमन गतिपूर्वक नहीं है ।तो अन्ततो गत्वा परिणमन समस्त द्रव्योंमें है । परिणमन द्रव्योंके द्रव्यत्व गुणके कारण है ।

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

भाववतीशक्तिसम्पन्न द्रव्य :—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म आकाश, काल इन समस्त द्रव्योंमें परिणमन पाया जाता है जो इनकी भाववती शक्तिका द्योतक है।

क्रियावतीशक्तिरहित द्रव्य और उनकी स्थिति :—क्रियावती शक्ति समस्त द्रव्योंमें से जीव और पुद्गलमें है। धर्म द्रव्य लोकाकाशमें अवस्थित है। उसके व्यापनेका अन्त लोकाकाशमें है। वहाँ क्षेत्रसे क्षेतान्तर नहीं होता। इसी प्रकार अधर्म द्रव्य धर्म द्रव्यके समान लोकाकाशमें व्यापक और अवस्थित है। उसमें परिस्पंद रंच भी नहीं होता है। आकाश द्रव्य तो महाव्यापक क्षेत्र है ही। वह भी तो निष्क्रिय है। धर्म द्रव्यके व्यापनेका अन्त है पर आकाशका अन्त कहीं नहीं है। कहीं कल्पना करके देखो कि इस लोकमें आगे क्या है [क्या कुछ कल्पनामें बात आती है ? क्या इस लोक के आगे पहाड़ियाँ हैं, पानी है, मकान है ? अरे इस लोकके आगे कुछ भी हो, पहाड़ियां हों, मकान हों, तालाब हों पर उसके आगे भी तो कुछ होगा। क्या वहीं से अंत है ? उसके आगे फिर पोल नहीं होगा क्या ? होगा। अतः आकाशके बारेमें सीमा की कल्पना नहीं हो सकती। आकाश भी व्यापक है। उसमें क्रियाकी कोई गुंजाइश ही नहीं है। रहा काल द्रव्य। वह यद्यपि एकप्रदेशी ही है और लोकाकाशके एक एक द्रव्यमें अवस्थित है पर जो जिस क्षेत्रावगाहमें अवस्थित है वह वहीं अवस्थित है, उसके आगे हेर फेर नहीं है, परिस्पंद नहीं है, क्रिया नहीं है। केवल जीव और पुदुगल दो ही पदार्थ ऐसे हैं कि जिनमें क्रिया होती है।

पुद्गल और जीव द्रव्योंमें क्रियाकी सिद्धि :—पुद्गलमें और जीवमें क्रिया क्यों होती है ? पुद्गल और जीवकी क्रिया अनैमित्तिक नहीं है। एक स्वभावसे वह चलता ही रहता हो ऐसी बात क्रियाके बारेमें नहीं है, क्योंकि यदि ऐसा ही स्वभाव है तो उन्हें निरन्तर चलते ही रहना चाहिए। तब उनकी स्थिति हो ही नहीं सकती है और फिर अधर्म द्रव्य बेकार है, उसका कभी उपयोग ही नहीं होगा, तो यह जो क्रियाशील होता है उसका कारण है भेद और संघात। पुद्गल द्रव्य है, यदि थोड़ा भी चला, हटा, परिस्पंद हुआ तो समझो कि वहाँ या तो भेद होता है या संघात होता है। इसी प्रकार जीव भी अगर चला तो समझो कि वहाँ भेद होता है या संघात होता है। क्रिया होनेका कारण भेद और संघात है। सोई जीवके लिए है, सोई पुद्गलके लिए है। पुद्गल और जीव ये दो पदार्थ भाववान हैं और क्रियावान हैं। क्योंकि, ये दोनों पदार्थ परिणामसे और भेद संघातसे उत्पन्न होते हैं, ठहरते हैं, भाववान होते हैं। इनसे परिणामकी बात स्पष्ट सिद्ध होती है।

द्रव्योंमें परिणमनका और भेदसंघातका कारण—आओ ! अब हम विचार करें कि इनमें परिणाम क्यों पाया जाता है ? ये ५ साधारण गुण हैं इसी कारण इनमें

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

परिणाम पाया जाता है, जीव पुद्गलमें भी परिणाम पाये जाते हैं और परिणामोंके कारण ही उनमें उत्पाद व्यय होरहा है। तब यह निर्णय करें कि भेदसंघात पुद्गलमें कैसे होता है और जीवमें कैसे होता है? इस बातका निर्णय भी इस ही गाथामें आगे चलकर किया गया है। दो पदार्थ तो क्रियावान भी हैं और भाववान भी हैं। किन्तु धर्म द्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य और कालद्रव्य ये भाववान ही हैं, क्योंकि परिणामसे ही इनका उत्पाद व्यय और ध्रौव्य है, भेदसंघातसे नहीं है।

क्रियारूप और भावरूप परिणमन—पुद्गल, जीव, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये ६ द्रव्य हैं। इनमेंसे जीव और पुद्गल ये दो जातिके द्रव्य ऐसे हैं जो कि हलन चलन भी करते हैं और अपनेमें भाव भी करते हैं। पुद्गलमें भावपरिणमन रूप, रस, गंध, स्पर्शका बदलना है। क्रियापरिणमन उस क्षेत्रसे हटकर दूसरी जगह पहुँचना या वहाँ ही पड़ा हुआ हिलना है तथा इस प्रकारकी पुद्गलक्रिया हुए बिना क्रियापरिणमन हटे बिना चले बिना जो परिणमन होता है वह भाव परिणमन है, चलनेमें भी भाव होता है पर चलनेके कारण भाव नहीं होता है। जो चले बिना परिणमें वह तो है भाव परिणमन, व परिस्पंदरूप जो परिणमन है वह है क्रियापरिणमन। परिणमनमात्र हो गया इसको भावपरिणमन कहते हैं। जैसे पुद्गलमें रूपका बदलना। वही का वही पदार्थ है पर उसमें रूप बदल गया।

भावपरिणमनका दृष्टान्त—जैसे आम है, उसी जगहपर है, वहींका वहीं लटकता हुआ है, आम सबसे पहिले होता है काला, इसके बादमें नीला बनता है, इसकेबादमें होता है हरा फिर पीला और फिर बादमें कुछ होजाता है लाल, ऐसा उस आममें रंग बदलता है। सबसे पहिली वारमें कुछ काला आम होता है, फिर बदलते बदलते हरा पीला, लाल होजाता है। देखो आम जो एक पुद्गल द्रव्य है वह वही का वही है परन्तु रूप बदल रहा है, रसदि बदल रहा है, यही बदला हुआ भाव परिणमन है। पर टूट गया गिर गया, पालमें रख दिया गया, बाजार चला गया, यह जो कुछ हुआ वह क्रिया परिणमन हुआ। परिणमनको भाव और परिस्पंदको क्रिया कहते हैं। अतः भाववान तो सभी द्रव्य हैं, क्योंकि उनका परिणमनेका स्वभाव है।

स्वरूपास्तित्वकी अज्ञानताजन्य मान्यताएँ—देखो भैया, द्रव्योंकी स्वतन्त्र त्रैकालिक शक्तियोंके न जाननेके कारण कर्तृत्ववाद पनप रहा है, और कर्तृत्ववादका मोटा रूप यह है कि ईश्वरने सबको बनाया है पर यह बात चित्तमें नहीं समाती कि पदार्थ स्वयं हैं और परिणमनेका वे स्वतन्त्र स्वभाव रखते हैं, सो परिणमते ही रहते हैं उसके अटकनेका स्वभाव नहीं हैं। ऐसा न जाननेके कारण कर्तृत्ववादकी मान्यता। यह हो गई है कि ईश्वर समस्त संसारको बनाता है। यह तो कर्तृत्ववादवालों की बात हुई, किन्तु कोई लोग जो ईश्वरका कर्तृत्व नहीं मानते हैं पर उनकी यह मान्यता

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

कि मैंने यह घर बनाया, दूकान बनाई, अमुक बनाया, क्या कर्तृत्ववादका यह विकल्प नहीं हैं। यह भी तो कर्तृत्ववाद ही है। ईश्वरके स्वरूपसे अनभिज्ञ पुरुष ईश्वरको विडम्बनाका कर्ता कहते हैं।

पर्यायमुग्धोंकी कर्तृत्वजन्य मान्यताएँ—पर्यायमुग्ध जन अपने आपपर इतना ही कर्तृत्व नहीं लादते और आगे बढ़कर अन्य पदार्थोंमें भी ऐसा देखते हैं कि इस पदार्थको देखो मैंने यूँ कर दिया, उस पदार्थको यूँ कर दिया। वे पदार्थोंको प्रेरणात्मक देखते हैं कि जैसे जब कोई किसीका हाथ खींचकर कहता है कि मैंने इसे इसप्रकार कर दिया, अर्थात् अपने आपको किसी भी पर द्रव्यमें कुछ कर देनेवाला मानता है। जैसे मास्टर साहबने लड़केको शिक्षित बना दिया, लड़केको ज्ञानी बना दिया और जिस जगह चेतनताका नाता नहीं है ऐसी जगहमें भी कर्तृत्व मानता है। देखो ना, आगने हीं तो पानीको गरम कर दिया, सूर्यने ही तो वस्तुओंको प्रकाशित कर दिया।

पदार्थोंकी स्वतन्त्र शक्तिकी अस्वीकृति—यह नहीं ख्याल है कि चटाई चौकी आदिमें प्रकाश है। क्या इनमें प्रकाशपना रंच भी नहीं है? फर्क यह है कि वह स्वयं प्रकाश रखनेवाला पदार्थ है। और चौकी चटाई इत्यादि उस सूर्यका निमित्त पाकर चमक उत्पन्न कर लेते हैं। अब यह निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध बिना युक्तिके है नहीं, तो मैया! कहीं कोई ऐसा कर बैठे कि आज तो उसने सिगड़ी पर रोटी बनाई और कल पानीमें रोटी बना ले। ऐसा तो कोई नहीं करते हैं।

वस्तुमें अस्तित्वकी भावाभाव दृष्टि—निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध तो व्यवस्थित है वस्तुका सत्त्व कितना है? इस ओर दृष्टि करके देखें तो वहाँ यह मालूम पड़ता है कि यह पानी भी एक पुद्गल है और यह आग भी एक पुद्गल है यह एकेन्द्रिय जीव है इस की चर्चा नहीं। प्रकरण दूसरा है। आगका निमित्त पाकर पानी गर्म होगया, इसमें एकेन्द्रियका निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध नहीं हैं, इस नाते यह कार्य नहीं, वहाँ तो जो पुद्गल स्कंध है उसका नाता चल रहा है। अब जैसे आग गर्म है तो इतनी बात है कि आग स्वयं अपने गर्म स्वरूपको लिए है पर पानी गर्म स्वरूपको लिए नहीं है। शीत, उष्ण, स्पर्श इस पानीमें भी होता है। सो यह पानी अग्निका सम्बन्ध पाकर शीतपर्यायको छोड़कर गर्म पर्यायमें आ जाता है। निमित्त है, उपादान है, सब है परन्तु वस्तु कोई कितना है, जल कितना है, अग्नि कितनी है? यह भी तो देखो। जल जितना है, क्या वह अपने प्रदेशसे बाहर भी दौड़ता है? आग जितनी है क्या वह अपने प्रदेशसे आगे भी दौड़ती है? आग यदि दो हाथ आगे जल रही है और ठंडके दिनोंमें ताप रहे हैं तो गर्मी आयी और ठंड मिटी। यह गर्मी भी उससे निकलकर नहीं आयी, किन्तु आगकी सन्निद्धि पाकर जो सूक्ष्म स्कंध है वह गर्म अवस्थाको प्राप्त हुआ। इसी तरह गर्म स्कंधका निमित्त पाकर अन्य स्कंध गर्म अवस्थाओंको प्राप्त होकर बना हुआ है

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

और शरीरके पासकी गर्मीके सूक्ष्म स्कंधोंको निमित्त पाकर यह शरीर भी शीत अवस्थाको छोड़कर गरम अवस्थामें आया।

निमित्तनैमित्तिक परिणमन सम्बन्ध—निमित्तनैमित्तकका विरोध नहीं करना है। पदार्थ किस पर्यायमें किस-किस को निमित्त पाकर किस रूप परिणम जाते हैं ? यह निमित्तनैमित्तिक व्यवस्था है, किन्तु उस काल भी निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध ठीक-ठीक चल रहा है अललटप्प नहीं।

स्वयोग्यता ही में व्यवस्थित परिणमन—देखो भैया, पदार्थ अपना कितना अस्तित्व लिए है ? कितना उसका स्वरूप है और वे पदार्थ कैसे परिणम जाते हैं ? निश्चयदृष्टिसे देखो तो समस्त पदार्थोंकी स्वतंत्रता स्पष्ट नजर आने लगती है। सब पदार्थोंमें परिणमन स्वभाव है, ऐसे स्वभावतः परिणत पदार्थोंकी व्यवस्थामें कोई लोग मानते हैं कि तीन देवता हैं, जिन्हें ब्रह्मा, विष्णु और महेश कहा जाता है। ब्रह्माका काम है पदार्थोंको उत्पन्न करना, महेशका काम है पदार्थोंका नाश करना और विष्णुका काम है पदार्थोंकी रक्षा करना। इस प्रकार उत्पत्ति. रक्षा और विनाश इन तीन प्रकारके परिणमनोंके बिना तो काम नहीं बनता है। इन तीन प्रकारकी परिणतियोंमें जो द्रव्योंकी तीन स्वतंत्र योग्यताएँ हैं उनके न माननेसे उनके स्थानके स्वभावपर विविध देवताओंकी कल्पना करनी ही पड़ी; किन्तु वस्तुतः ये तीनों देवता और पदार्थोंकी उत्पाद व्यय ध्रौव्य शक्तियाँ पदार्थोंमें तन्मय हैं। अणु-अणु, सर्व जीव, सर्व पदार्थ त्रिदेवतामय है, नाम कुछ रखलो नामका विवाद नहीं; उत्पादका नाम ब्रह्मा, व्ययका नाम महेश और ध्रौव्यका नाम विष्णु। कारण कि ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों देवता अणु अणुमें समाये हुए हैं। इनका स्थान अलग नहीं है। ये सर्व लोकाकाशमें हैं और अलोकाकाशमें भी है बैकुण्ठपर रहनेवाले, पहाड़ोंपर रहनेवाले अथवा अन्य किन्हीं स्थानोंपर रहनेवाले अणु अणुमें सर्व चेतनोंमें तीनों देवता विराजमान हैं, अर्थात् पदार्थोंमें ये तीनों शक्तियाँ हैं उत्पाद व्यय ध्रौव्य। इन्हें चाहे ब्रह्मा, विष्णु महेश आदि नामसे कहो या सीधे इन विशेषोंके नामसे कहो।

द्रव्यस्वभावके द्वारा वैज्ञानिक प्रगति—द्रव्यके परिणमनस्वभावको जाननेवाले जो वैज्ञानिक हैं, विज्ञानमें प्रगति कररहे हैं और विश्वको आश्चर्यमें डालरहे हैं, वे जानते हैं कि पदार्थ परिणमनका स्वभाव रखते हैं और ऐसे निमित्तको पाकर वे ऐसे परिणम जाते हैं, इसलिए उनका आविष्कारके लिए उद्योग होता है, उनका जुटाव किया जाता है। अमुकमें अमुक गैस मिले तो अमुक चीज बन जाय, अमुक चीज मिले तो हवा पानी बन जाय, पानी हवा बन जाय ! उन्हें निमित्तनैमित्तक सम्बन्धका पता है और पदार्थोंके परिणमन स्वभावका भी पता है।

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

स्वभाव व विभाव रूप परिणमनका दृष्टान्त—हम दर्पणमें देखते हैं तो उसमें प्रतिबिम्ब, छाया परिणम जाती है और जब भींट (दीवाल) में देखते हैं तो प्रतिबिम्ब, छाया परिणमती नहीं है। उसका कारण यह है कि दर्पणमें छायारूप परिणमनेकी योग्यता है, भीटमें छायारूप परिणमनेकी योग्यता नहीं है। जो छायारूप परिणमनेकी योग्यता रखता है वह पदार्थ बाह्य पदार्थोंका सान्निध्य पाकर अपनेमें छायारूप बन गया है, अभी सूर्यका उदय है उदय तो सबके लिए समान है, पर यहाँ विचित्रता यह दिख रही है कि काला बोर्ड ज्यादा चमकता है, भीट उससे कम चमकती है, टीन वगैरह और ज्यादा चमकते हैं, काँच तो बहुत ही ज्यादा कान्ति पैदा कर लेता है और कहीं ऐना हो तो वह बहुत ही ज्यादा कान्ति उत्पन्न कर लेगा। सूर्य यदि इनको प्रकाशित करता तो, या यह सब सूर्यका प्रकाश हो तो, एक ही सा सब चमकें। सभीमें एकसा प्रकाश, एकसी चमक, एकसी कान्ति हो, कोई भी अन्तर न आवे।

चमक दमक व प्रकाशमें अन्तर—यह जो अन्तर दिखता है वह किस कारणसे? इसी कारणसे कि जिस पदार्थमें जितनी स्वच्छता है, योग्यताके अनुसार सूर्यका निमित्त पाकर अपनी कान्तिसे अपने आप ही चमकता है। इन्हीं बातोंको जिनको हम इस रूपमें कहते हैं कि निमित्तकी सन्निधि पाकर उपादान अपनेमें असर पैदा कर लेता है। यदि हम यथार्थ शब्दोंमें कहें तो समय ज्यादा लगेगा। बातें करते जायें तो घुमा घुमा कर बातें करते जायें। सिर दर्द हो तो वैद्यजी से कहो कि वैद्य जी! कोई ऐसी चीज बतलावो जिसके सन्निधानका निमित्त पाकर सिरके अंगोंमें वायुका परिवर्तन हो और वायुपरिवर्तनके निमित्तसे इन नसोंका कम्पन समाप्त हो जाये। भैया! सीधा व्यवहार यह है कि कोई दवा दे दो जिससे सिर दर्द दूर हो जाय। इतनी लम्बी चौड़ी बात व्यवहारमें नहीं चलती। व्यवहारमें तो यही कहा जायगा कि आगने पानीको गरम किया, सूर्यने इसको चमका दिया, मास्टरने शिष्यको ज्ञान पैदा कर दिया आदि।

दृष्टिमें मान्यताका दोष—भैया, ऐसा कहनेमें कोई बुराई नहीं है। पर असली बात तो समझमें रहना चाहिए। मास्टर साहब शिष्यको ज्ञान देते हैं तो किसका ज्ञान देते हैं? अपना ज्ञान देते हैं कि किसी दूसरेका? अपना ज्ञान अगर शिष्योंको देदें तो १०, २०, ५० शिष्योंको ज्ञान देनेके बाद तो मास्टरकी दुर्गति हो जायगी, मास्टर कोरे रह जायेंगे। पर यहाँ तो देखो उल्टा हो जाता है कि मास्टर जितना बच्चोंको ज्ञान देता है, उतना ही मास्टरका ज्ञान बढ़ता जाता है। यहाँ तो यों देखा जाता है, क्योंकि मास्टर अपने ज्ञानका परिणमन कररहा है, ज्ञानको उपयोगमें ला रहा है। उसका ज्ञान और बढ़ता चला जाता है। मास्टरके इस ज्ञान और बतानेकी इच्छाका निमित्त पाकर जो शब्द वर्गणायें हैं वे शब्द रूपमें परिणम जाती हैं। उनका

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

श्रवण कर शिष्य लोग अपने ज्ञान स्वरूपमें बसे हुए ज्ञानका विकाश कर लेते हैं, शिष्य अपने ज्ञानका विकाश कर लेते हैं, मास्टर अपने ज्ञानका विकाश कर लेता है, पर कोई किसीको ज्ञान नहीं देता। कोई किसीका सुधार बिगाड़ नहीं करता है। निमित्त तो है, पर परिणति तो परिणमनेवालेकी स्वयंकी है। दूसरेकी परिणति लेकर, दूसरेका साझा लेकर अपना काम बनाता हो कोई, सो ऐसा कोई पदार्थ नहीं है। अगर कोई किसी दूसरेका काम बनाने लगें तो जगतका अभाव हो जायगा।

साझेदारी हानिकर—साझेदारीमें दुकान बिगड़ जाती है। अकेलेमें एक चित्तसे दूकनदारी की जाती है, उसमें उन्नति करली जाती है। साझेदारीको तो ठीक नहीं बताया है। इसमें बेईमानी होती है तथा संशय बना रहता है। यह लोक व्यवहारकी बात है। पहिले एक बेईमानी करता है फिर दूसरा बेईमानी करता है। इस तरहसे दुकान बिगड़ जाती है यदि कोई किसीको परिणमा दे तो या वह रहेगा या दूसरा रहेगा, कोई एक रहेगा या इसका अभाव होगा या उसका अभाव होगा। निष्कर्ष यह होगा कि सबका अभाव हो जायगा वहाँ दो नहीं रह सकते हैं। कौन रहे, व कौन न रहे? वे आपसमें लड़ जायेंगे। सो भैया! उपाधिका तो निमित्त है। परिणमता उपादान स्वयं है। निमित्तनैमित्तिकताके विरोधको किया ही नहीं जा सकता है। कोई सर्वज्ञ है, किन्तु वस्तुके स्वरूपको भी देखिये कि वस्तु कितना है और क्या करता है? कोई पदार्थ दूसरे पदार्थको अपना कुछ पर्याय देदे ऐसा नहीं है, इस कारण पदार्थ सब अपना-अपना सत्त्व लिए हैं, अपने ही परिणामोंसे वे उत्पन्न होते हैं, व्ययको प्राप्त होते है, और ध्रौव्यको भी प्राप्त होते हैं। इससे शिक्षा क्या लेना है कि मैं अपने ही परिणामोंसे अपनी दशाएँ बनाता हूँ, बिगाड़ता हूँ और सदा बना रहता हूँ। इस मेरे अस्तित्वमें किसी दूसरेका दखल नहीं है। कोई पदार्थ किसी दूसरे पदार्थका अधिकारी हो, मालिक हो, प्रभु हो, सुधार बिगाड़ करता हो ऐसा नहीं है। मैं ही अपना परिणाम करता हूँ, अपना जिम्मेदार मैं ही हूँ। चाहे अपनेको अच्छा बनाऊँ चाहे बुरा बनाऊँ, यह सब अपने ज्ञानपर निर्भर है।

द्रव्योंके भाव—यहाँ प्रकृत बात यह चल रही है कि ६ प्रकारके द्रव्योंमें से जीव और पुद्गल ये दो तो भाववान भी हैं और क्रियावान भी हैं। शेष चार प्रकार के द्रव्य केवल भाववान हैं, क्रियावान नहीं हैं।

भाव क्या है?—अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि भाव किसे कहते हैं? भाव कहते हैं परिणमनमात्रको, प्रदेशपरिस्पंदको नहीं। परिस्पंदको छोड़कर यावन्मात्र परिणमन है, वह सब भाव कहलाता है। भाववान सभी द्रव्य क्यों है? इस कारण कि निरंतर उन द्रव्योंके परिणमनका स्वभाव है। और, परिणमनके ही साथ जिनका

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

अन्वयव्यतिरेक है ऐसा हुआ उत्पाद व्यय ध्रौव्य, सो यह त्रितयात्मकता भी सब पदार्थोंमें स्वभावतः शाश्वत है।

क्षणिकवादी मान्यता — त्रितयात्मकता तो द्रव्य और द्रव्योंका स्वभाव है, किन्तु परिणमन-स्वभावके विपरीत, क्षणिकवादियोंके यहाँ तो नई-नई वस्तुका उत्पाद माना जाता है, वे तो क्षण-क्षणमें होनेवाले तत्त्वोंको पदार्थ कहते हैं, भाव नहीं कहकर नये-नये पदार्थ उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होकर ही एक क्षण रहकर नष्ट हो जाते हैं, ऐसा बताते हैं। सो यह मात्र पर्यायदृष्टिसे ठीक है।

द्रव्यकी भाववती शक्तिकी सिद्धि—अच्छा यदि भाव (परिणमन) नहीं है और नया पदार्थ ही उत्पन्न होता है तो उनका स्मरण रहना, तांता न टूटना और उस उस ही जातिका पदार्थ होना इस सबका क्या कारण है ? तो वे क्षणिकवादी उत्तर देते हैं कि यह सब सन्तान है। पदार्थ नये-नये उत्पन्न होते हैं। पर उनके सन्तान होते हैं और इसी कारणसे स्मरण चलता रहता है। आपके शरीरमें नई-नई आत्मा उत्पन्न होती है। जो नई-नई है वह भिन्न-भिन्न आत्मा हुई। अतः यदि यह आत्मा है तब यह प्रश्न हो सकता है कि पहिली आत्मा जो नवीन ही है उसे अपनी पूर्वकी आत्माका स्मरण क्यों रहता है ? जिस प्रकार भिन्न शरीरमें रहने वाली एक आत्माकी करतूतका स्मरण दूसरे शरीरमें रहने वाली आत्माको नहीं होता। अन्य व्यक्ति क्या सोचरहा है ? क्या आप दूसरेका कुछ अनुभव कर लेते हैं ? नहीं। इसी प्रकार एक ही शरीरमें रहने वाले भिन्न-भिन्न आत्मा हैं तो पहिली आत्मा-वोंकी बातका स्मरण नहीं होना चाहिए। जब नये-नये आत्मा उत्पन्न होते हैं तो वे तो स्वतन्त्र ही हैं। जैसे भिन्न-भिन्न शरीरमें रहने वाला आत्मा स्वतन्त्र है। तो एकको दूसरेकी खबर नहीं रहना चाहिए। क्षणक्षणमें उत्पन्न होनेवाले उन आत्मावोंकी स्मृति नहीं होनी चाहिए, क्योंकि कल काम किया था किसी दूसरे आत्माने और आज एक कोई नया आत्मा काम कररहा है। एक ही शरीरमें स्वरूपकी यह बात बोलरहे हैं। आज भी कहते हैं कि मैंने कल किया था यह, तो क्षणिकवादमें आजका आत्मा कल था नहीं (यह क्षणवाददर्शनकी बात कहरहे हैं) फिर पूर्वके रूपमें यह स्मरण क्यों होता है ? इसके समाधानमें इस दर्शनमें क्या कहा कि पहिली बातका स्मरण तो इस नवीन आत्माको इसलिए होता है कि उसकी सन्तानमें वह आत्मा उत्पन्न हो गया। उस कुलमें उत्पन्न होनेसे स्मरण होता है। जैसे दीपक जलता है और प्रतिसमय प्रतिक्षण नया-नया बूँद जलता है तो नया-नया बूँद जलकर भी दीपक अपना काम निरन्तर करता है। दीपक प्रकाशमान है, उसमें यह अन्तर नहीं आ पाता और क्रिया करनेमें वह दीपक एक सा ही रहता है, तो नये-नये बूँदोंका नया-नया दीपक बनकर भी, (एक चिंगीकी बात कह रहे हैं, एक दियाकी बात कह रहे हैं) नये-नये बूँदोंके

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

नये-नये दीपक लगातार बनते हुए भी उनकी सन्तान एक है इसलिए उन प्रकाशमय क्रियावोंमें अन्तर नहीं पड़ता। इसी तरह एक शरीरमें नयी-नयी आत्मा प्रतिक्षण उत्पन्न होती है तब भी सन्तान होनेके कारण उनमें, उनकी क्रियामें अन्तर नहीं पड़ता। यह उनका समाधान है। दूसरी बात पूछी गई है कि यह क्यों स्मरण होता है कि मैंने कल यह किया था, क्षणिकवादके दर्शनकी बात चलरही है, प्रश्न—जब नया आत्मा उत्पन्न होता है तो वहाँ उनके क्रममें अन्तर नहीं पड़ा तो न सही, सन्तान है, मगर इस रूपसे क्यों स्मरण होता हैं कि कल मैंने यह किया था। उत्तर उसका यह दिया है कि जो आत्मा नष्ट होता है वह नष्ट होते हुए अपना आकार नवीन आत्माको सौंप करके नष्ट होता है। देखो सीधी बात नहीं माननेपर कितनी बातें माननी पड़ रही हैं। नष्ट होने वाला आत्मा उत्पन्न होनेवाले आत्माको अपना सर्वस्व आकार सौंप करके नष्ट होता है। जब अपना सर्वस्व सौंप दिया तो दूसरी आत्मा भी उसकी ही तरह इस आकार रूपमें ही भाव बनाता है। पर इन दोनों प्रश्नोंका हल वस्तु-सिद्धान्त से यह है कि आत्मा एक द्रव्य है और वह भाववान है। यह सीधा उत्तर है।

परिणमनमें और उत्पाद व्यय ध्रौव्यमें अविनाभाव सम्बन्ध—भाव होते हैं तब तो उसमें उत्पाद व्यय और ध्रौव्य माना जाता और उत्पाद व्यय ध्रौव्य हो तो भाव माना जाता। तो परिणमनस्वभाव है द्रव्यका और इसी कारण वह परिणमन करता है। उस परिणमनके साथ उत्पाद व्यय ध्रौव्यका अन्वय व्यतिरेक है। परिणमन हो तो उत्पाद व्यय ध्रौव्य जरूर हो। उत्पाद व्यय ध्रौव्य हो तब ही परिणमन बन सकता है। परिणमन न हो तो उत्पाद व्यय ध्रौव्य कुछ नहीं हैं व उत्पाद व्यय ध्रौव्य नहीं हो तो परिणमन भी कुछ नहीं है। इस तरह परिणमनके साथ जिन्होंने अन्वय व्यतिरेक पाया है ऐसे उत्पाद व्यय ध्रौव्य करि सहित समस्त पदार्थ भाववान होते हैं।

परिणमनस्वभावकी श्रद्धा ही समस्याका हल—पदार्थोंका यह परिणमन-स्वभाव मान लेनेसे कितनी बातोंका हल होता है। अनेक समस्याओंका इससे हल होता है। किसीने किसी वस्तुका कुछ कर डाला इसका भी हल होता है। इससे कितना अज्ञान दूर होता है और मोक्षमार्गमें इस वस्तुस्वरूपके यथार्थज्ञानसे कितनी उन्मुखता होती है। विचारो तो शांतिके लिए, मुक्तिके लिए क्या करना है? मात्र भीतरमें सत्य ज्ञान करना है। इसके अतिरिक्त अधिक क्या करना है। भैया, ज्ञानके बिना मुक्ति नहीं होती है।

तप संयम क्या है—अब तप संयमका भी मर्म क्या ? सो सुनो, हमारा जीवन सब बातोंपर निर्भर है, खाना, पीना और ठंडी गर्मी इत्यादिकी वेदनाका निवारण करना हैं, इन्हीं सबसे जीवन चलता है और पहिले बँधे हुए कर्मोंका विपाक भी चलरहा है।

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

उस विपाकमें कुछ सोचता है, कुछ बोलता है, कुछ कायप्रवृत्ति करता है ऐसी स्थितिमें वह ज्ञानी पुरुष क्या करे ? विरक्त पुरुष तो जो कुछ करता है बस वही संयम है। देखकर चलना, समितिपूर्वक कार्य होना, पापोंका त्याग करना यह सब प्रवृत्ति होती है और यह किया जाता है। यह तो हुई प्रवृत्तिकी बात।

परीषहादि सहनेमें आशय—लोग जान समझकर गर्मीमें पर्वतपर तपते, ठंडके दिनोंमें नदियोंके तटपर ध्यान लगाते, वर्षाऋतुमें पेड़ोंके नीचे तप करते और-और भी तरहसे तप करते, तो, यह सब क्यों किया जाता है ? यह सब इसलिए किया जाता है कि आरामसे प्राप्त किया हुआ ज्ञान, वस्तुस्वरूपविषयक यह ज्ञान कष्ट आनेपर, कर्मोंका विपाक आनेपर विचलित न होजाय, यह आत्मा संक्लिष्ट न होजाय, यह अपने उपार्जित ज्ञानको न खो बैठे, इसके लिए प्रयोगात्मक एक दृढ़ विश्वास किया जात है। अनशन आदिका अभ्यास क्यों करना चाहिए ? अनशन इसलिए किया जाता है कि कदाचित् कितने ही दिन आहारका योग न हो तो उनकी समता न बिगड़े, उनकी ज्ञानपद्धति न टूटे। इसी तरह अन्य अन्य तपस्याओंकी बात समझो। एक बात तो यह है, दूसरी बात यह है कि इन जीवोंके साथ जो कर्मविपाक चलरहे हैं उसमें अबुद्धि पूर्वक और कुछ बुद्धिपूर्वक भी रागद्वेषविषयक भाव चलते हैं। उन तपस्याओंमें यह उपयोग निर्मलताकी ओर बढ़ता है, विषय कषायोंकी ओर नहीं लगता, विषय कषायों की ओर उन्मुख नही होता है, तब आत्मध्यानके लिए रास्ता मिलता है, इसलिए तप संयम आदि किए जाते हैं। पर इनका भी मूल उद्देश्य विश्रामसे प्राप्त किये गयें ज्ञान भावकी रक्षा करना है।

मोक्षमार्ग क्या है ?—यथार्थ दर्शन होना, यथार्थ ज्ञान होना व ऐसा ही ज्ञान बनाए रहना इसीका नाम मुक्तिमार्ग है। जहां यह देखरहे हैं कि परबस्तु अपने-अपने स्वरूपमें है, परिणमन स्वभावके कारण अपने आपमें परिणमते रहते हैं। किसी वस्तुका किसी वस्तुके साथ रंच भी सम्बन्ध नही है। वहाँ ऐसा देखनेपर मोहभाव नहीं रहता। भैया, जो पदार्थ विभावरूप भी परिणमते हैं, विकाररूप भी बनते हैं उनके अन्दर ही ऐसी योग्यता है, ऐसी कला है कि वे अनुकूल निमित्तको पाकर अपनेको अपनी योग्यतासे इस प्रकारका बना लेते हैं। देखो तो, जगतमें जितने भी पदार्थ है वे सब अपना-अपना सत्त्व लिए हुए हैं।

राग और आसक्ति क्या—घरमें जिन स्त्री, पुत्रोंसे राग किया जारहा है, वे क्या चीज हैं ? आशक्ति की जारही हैं, वे क्या चीज हैं ? जिनका विषय करके आत्मा रागी बनरहा है, मोही बनरहा है, उनका इस आत्माके साथ क्या सम्बन्ध है ? कुछ भी तो सम्बन्ध नहीं है। ये राग करनेवाले जीव एकांकी नाटक खेलरहे हैं, वहांसे

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

इन्हें कुछ नहीं मिलता है। दूसरे लोग कुछ राग नहीं उत्पन्न करते, दूसरे लोग किसीकी परिणति नहीं बनाते, पर यह अपने आप ही अपनी धुन बनाकर आपही रत होरहा है।

प्राणी स्वयंके विकल्पोंसे ग्रस्त—एक छोटीसी घटना है कि तीन चोर चोरी करने जारहे थे, रास्तेमें उन्हें एक नया आदमी मिला। उस नये आदमीने पूछा कि भाई कहाँ जारहे हो? तो वे बोले चोरी करने; मुफ्तमें ही हजारों, लाखों रुपया चुरा लावेंगे तो बोला कि हमें भी साथमें ले चलो। सो चोरी करने एक गाँव गए। किसी धनिक बूढ़ेके घरमें वे घुस गए और चोरी करने लगे। उस बूढ़े आदमीकी नींद खुल गयी। खाँस दिया तो तीन चोर निकल कर भाग गए। अब एक अनसिखा चोर रह गया। उसे कहीं छिपनेकी जगह समझमें न आयी सो जो मकानकी म्यारी होती है, उसमें स्थान रहता है, वहीं जाकर बैठ गया। उस बूढ़ेने हल्ला मार दिया, सभी गाँवके लोग जुड़ गए। कोई पूछता है कि कितने चोर थे? तो बोला भाई हमें नहीं मालूम। किसीने पूछा कि क्या ले गये? तो बोला कि मैंने कुछ नहीं देखा। किसीने पूछा कि किधरसे आए थे? तो बोला हमें क्या मालूम। दसों आदमियोंने दसों तरहके प्रश्न किए। जब बुड्ढा बहुत ही परेशान हो गया तो झुझलाकर बोला कि मैं क्या जानूँ, यह तो ऊपरवाला जाने। उस बूढ़ेके मनमें ऊपरवालेका अर्थ भगवानसे था, पर ऊपर बैठा हुआ नया चोर कहता है कि हूँ, हमीं क्यों जानें, वे साथ वाले तीनों चोर क्यों न जाने? बस वह पकड़ लिया गया। अरे पूछनेवाले अपना परिणमन कररहे थे, उत्तर देनेवाला अपना परिणमन कररहा था, पर उस चोरने अपने आपही भाव बनाकर अपना अर्थ लगाकर अपने आपही अपने फसावकी बात बोल दी।

पर द्रव्यराग उत्पन्न नहीं करते—ठीक नवीन उस चोरकी ही तरह ये जगतके रागी मोही जन, कुटुम्बके लोगोंको, मित्रोंको, स्त्री पुत्रादिकको देखकर अपने भाव लगाकर, विकल्प बनाकर अपने आपमें ही अपना काम करते हैं। और रागी होते रहते हैं। यह एक तरहका नाटक है, दूसरा कोई नाचमें मदद नहीं देता, याने परिणति नहीं करता है। स्वयं अपनेको रागरूपप परिणमाता व ज्ञानरूप परिणमाता है। पर शांति तो ज्ञानरूप परिणमें तब मिलेगी। यह सब ज्ञानमें आता है तो मोह नष्ट होता है और मुक्तिका मार्ग प्राप्त होता है।

भाववान द्रव्योंका अबाधित परिणमन—इस प्रकरणमें यह कहा जारहा है कि सभी द्रव्य भाववान होते हैं, निरन्तर परिणमते रहते हैं। कितनी जल्दी परिणमते हैं? क्या प्रत्येक मिनटमें? क्या प्रत्येक सेकेण्डमें? अरे एक-एक सेकेण्डमें असंख्यात आवलियाँ होती हैं और एक-एक आवलीमें अनगिनते समय होते हैं। प्रत्येक समयमें

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

उसका एक परिणमन चलता है। तो यह परिणमनचक्र प्रत्येक पदार्थमें बड़ी तेजीसे चलरहा है। सो सभी द्रव्य भाववान है।

क्रियावान द्रव्य—भैया; पुद्गल व जीव क्रियावान हैं, पहिले तो यह बतलाते हैं, फिर आगे कहेंगे कि जीव भी क्रियावान होते हैं। यद्यपि जीवमेंभी क्षेत्रसे क्षेत्रान्तर की बात आती है फिर भी क्रियावान तो दोनों हैं फिर भी मुख्यता पुद्गलकी रखी गयी है। जीव भी क्रियावानहैं, पुद्गल भी क्रियावान हैं; किन्तु बतलानेके समय पुद्गलको मुख्य रूपसे बतला रहे हैं और जीवोंके पीछे कुछ अपि अर्थात् भी शब्द लगाकर बतलावेंगे। जैसे किसीको कहें कि अमुकचन्दको भोजन कराओ और अमुकको भी करावो। तो पुद्गलको क्रियावान बतानेके लिए पुदगल द्रव्य क्रियावान हैं मुख्यरूपसे वर्णन किया और "जीव भी क्रियावान हैं" ऐसा कहकर उसको गौणरूपसे क्रियावान विवृत किया गया।

क्रियावती शक्तिकी व्यक्तता—जीव व पुद्गलकी क्रियाओंपर कुछ सोचिए ? देखो भैया ! पुद्गलकी क्रिया तो कुछ व्यक्त मालूम होती है पर जीवकी क्रिया व्यक्त नहीं मालूम होती है। दूसरी बात, जीव तो किसी समय अर्थात् मुक्त होनेपर निष्क्रिय हो जाते हैं, फिर क्रियाकी व्यक्ति नहीं चलती, और पुद्गलमें ऐसा अनन्तकाल तक नहीं होगा कि किसी पुद्गलके लिए यह बात कही जासके कि पुद्गल सदाको निष्क्रिय हो गया। इसी कारण क्रियातत्त्व की प्रसिद्धिमें पुद्गल द्रव्यका यहां मुख्यरूपसे वर्णन किया जारहा है। पुद्गल द्रव्य जिनमें कामारणवर्गणायें भी हैं, परिस्पपंदस्वभाव होनेके कारण भेद द्वारा भिन्न हो जाते हैं और संघातके कारण वे जुड़ जाते हैं, ऐसी स्थितिमें उनमें क्रिया होती है।

परिस्पंद शक्तिमें भेद संघात का कार्य :—कोई स्कंध जो कि अनन्त परमाणुवों का पिण्ड है, उसमें अगर भेद होता है, वे कुछ अलग-अलग हो जाते हैं तो उनमें कारण है परिस्पंद। परिस्पंद होता है तो उनका न्यारापन होता है। अभी देखो, लकड़ी भी कटती है तो टुकड़े होते समय परिस्पंद होता है कि नहीं ? यह मोटे रूपसे देखते हैं। बल्कि मोटी चौकी जो अपनेमें ऐसी लग रही है कि वह हिलती डुलती नहीं, फिर भी अनेक परमाणु निकल रहे है। उसमें भेद होते रहते हैं इसका कारण परिस्पंद है। वह अपनेको नहीं मालूम पड़ रहा है। मोटे रूपसे ऐसा लगता है कि यह चीज तो ज्योंकी त्यों अवस्थित है, पर परिस्पंद है तो ऐसा चल रहा है। संघातसे मिलता है संयोग और फिर भेदोंमें भी व भेदसंघातोंमें भी यह भेद और संघात चलता है। भेदके कारण जो उनमें उत्पाद है, जो उनमें व्यय है, जो उनका अवस्थान है, ध्रौव्य है उनमें यह पुद्गल क्रियावान होता है। जीव भी परिस्पंदस्वभावी है। कर्म और नोकर्म तो पुद्गल ही हैं वे भिन्न होते हैं व संयुक्त भी होते हैं। सो उनमें भेद व

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

संघात होता है। कर्म नोकर्म पुद्गलोंसे जीवका संयोग होता है और न्यारापन भी होता है। इस कारण जो उनमें उत्पाद व्यय ध्रौव्य चलता है उससे जो जीव है वह भी क्रियावान है।

जीवकी क्रिया सकारण—यहाँ यह बात आयी है कि जीवमें जो क्रिया चलती है उसका कारण है, अकारण क्रिया नहीं है। अकारण क्रिया हो तो सदैव क्रिया होगी। सो इस कारण यह कहा गया है कि कर्म और नोकर्मके उपसर्गसे भेद होता है और संघात होता है। जीवमें कोई भी क्रिया हो, कर्म व नोकर्मके भेद और संघात हुए बिना जीवकी क्रिया नहीं चलती। जैसे हम आप इतना डोलते चलते हैं, इसमें कारण, कर्म पुद्गल नोकर्म पुद्गलका उदय होता याने नवीन कर्मका भी संघात होता रहता है। यह तो एक मोटी बात है। इसके साथ अनन्त कर्म पुद्गलका भेद और संघात निरंतर चलता रहता है। और स्कंधोंमें तो भैया, उन्हींके समुदायमें अनेकोंका भेद व अनेकोंका संघात होता है। यह नहीं है कि हजार परमाणुवोंके पिण्ड में से कोई स्थिर रहा करे ऐसे परमाणु तो भिन्न हों और उससे लगाव बिलगावके परमाणु अलग हों। पुद्गलोंमें ऐसा नहीं है। वहाँ सब एक प्रकारके हैं। कोई बिगड़ जाय, कोई लग जाय, कोई हट जाय, मगर यह जीवोंका जो भेद संघात कहा जारहा है वहाँ जीव तो एक हैं। जीवके साथ अनेक कर्म और नोकर्मका भेद होरहा है, संघात होरहा है, याने विशिष्ट संयोग वियोग होरहा है। संयोग वियोगके कारण और परिस्पंदके कारण जीवकी क्रिया होती है। इसी तरह जीव भी क्रियावान है। जैसे इस जीवित अवस्थामें मनुष्य ही को लो। मनुष्य है, इसमें जो क्रिया हो रही है सो कर्म नोकर्मके पुद्गलका आवागमन चलता ही रहता है, सो क्रिया होरही है और मरनेके बाद विग्रहगतिका समय आता है तो वहाँ भी कर्म नोकर्म पुद्गलोंके भेद संघात होते हैं। जब निरंतर उदय चलरहा है तो यह भेद ही तो है। बद्ध जो कार्माण-वर्गणायें हैं उनका यहाँसे निकल जाना उदय कहलाता है। माने वे कार्माणवर्गणायें अन्य जगह पहुँच ही जायें ऐसा नहीं है। अन्य जगह जाँय, अन्य जगह जानेका नाम निकलना नहीं, कर्मत्वकी जो परिणति है उसका हट जाना, इसी को कहते हैं कर्मका निकलना। और ऐसी स्थिति होते समय उसका निमितमात्र पाकर यह जीवमें जो क्रिया चलती है वह क्रिया भेद संघातसे चलती है। इसी तरह संसारी जीवमें भेद संघात चलता है।

जीव पुद्गलके अतिरिक्त अन्य द्रव्योंमें भेद संघात व क्रिया नहीं—इन दो द्रव्योंके अलावा अन्य द्रव्यका भेद संघात नहीं है। धर्म द्रव्यके साथ भेद संघात नहीं लगा है, अधर्म द्रव्यके साथ भी भेद संघात कोई नहीं पाया जाता है। आकाश द्रव्यका

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

भी भेद संघात नहीं है। जैसे जीव और कर्मका बन्धन अथवा पुद्गल और पुद्गलका बन्धन हो वैसा या अन्य प्रकारका बन्धन धर्म अधर्मके साथ हो ऐसा नहीं है। आकाश द्रव्यका भी भेद संघात नहीं है, काल द्रव्यका भी भेद संघात नहीं है। इस तरह धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन चारोंमें क्रिया नहीं होती। ये द्रव्य क्रियावान नहीं है।

समानजातीय व असमानजातीय द्रव्यपर्याय—क्रियावान द्रव्य हैं वे दो ही हैं। इसलिए इनमें समानजातीय द्रव्य पर्याय और असमानजातीय द्रव्यपर्याय होता है। अनेक द्रव्योंके सम्पर्कमें होनेवाली परिणतिको कहते हैं द्रव्यपर्याय। एक जीव और अनन्त कर्मवर्गणायें व नोकर्मवर्गणायें हैं उनमें होनेवाले बन्धनके कारण जो व्यंजनपर्याय होती है उसको असमानजातीय द्रव्य पर्याय कहते हैं, यह है एक चेतन और बाकी अचेतन। तो ये परस्पर विजातीय होगये, एक जातिके नहीं हैं। इसमें होनेवाले प्रदेश-परिणमनको असमानजातीय द्रव्यपरिणमन कहते हैं। और स्कंधोमें समान जातीय द्रव्यपर्याय है। वहाँ पुद्गल-पुद्गल मिलकर एक स्कंधको प्राप्त हैं। वे समान-समान जातिके हैं। उस परिणतिको समानजातीय द्रव्यपर्याय कहते हैं। जिस कारण समान-जातीय द्रव्यपरिणमनमें और असमानजातीय द्रव्यपरिणमनमें ही क्रिया चलती है। और अन्यमें नहीं चलती है, इसी कारण क्रियाका कारण बताया है भेद और संघात इसीको गाथामें भी लिखा है कि ये सब जीव और पुद्गलमें उत्पाद व्यय धौव्य जो होता है वह परिणमन भेद और संघातसे होता है। परिणमनके कारण तो भाववती परिणति हुई और भेद संघातके कारण इसमें क्रियावती परिणति हुई। इस तरहसे इस प्रकरणमें आए हुए द्रव्योंमें से विशेषता इस प्रकार बतायी गयी है कि समस्त द्रव्य हैं, उनमें क्रियावानकी विशेषता और भाववानकी विशेषता इस तरहसे दो द्रव्योंमें पायी जाती है।

द्रव्योंका स्वरूपावलोकन :—यहाँ तक यह बताया गया है कि छहों द्रव्योंमें से जीव और पुद्गल तो क्रियावान हैं और भाववान भी हैं, किन्तु बाकी के चार द्रव्य केवल भाववान हैं। इस वर्णनके पश्चात् अब कुन्दकुन्दाचार्य देव यह बतलाते हैं कि इन छहों द्रव्योंमें गुणविशेष हैं जिनके कारण ये छहों द्रव्य भिन्न-भिन्न लक्षित होते हैं।

विशेषगुणोंसे विशेषताकी सिद्धि :—द्रव्य सामान्यसे देखा जाय तो सब द्रव्य हैं, सबमें अस्तित्व है, वस्तुत्व है, द्रव्यत्व है, अगुरुलघुत्व है, प्रदेशवत्त्व है, प्रमेयत्व है। इस प्रकार सामान्य गुणसे तो द्रव्य सब समान हुए, किन्तु इन द्रव्योंमें भिन्नता व भेद कैसे लक्षित होता है? द्रव्योंमें से विशेषता कैसे आती है? इन बातोंको १३० वीं गाथामें बतलाते हैं कि यह द्रव्योंके विशेष गुणकी विशेषतासे होता है।

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

लिंगेहिं जेहिं दव्वं जीवमजीवं हवदि विण्णादं ।
ते तब्भावविसिट्ठा मुत्तममुत्ता मुणेयव्वा ।। १३० ।।

लिंग किसे कहते हैं ? :—जिन लिंगोंके द्वारा द्रव्य जीव और अजीव इस तरह ज्ञात होता है वह तद्भावविशिष्ट होता हुआ मूर्त है और अमूर्त हैं। लिंग शब्दका क्या अर्थ है कि निज द्रव्यका आश्रय करके रहनेवाले जिन चिन्होंसे द्रव्य जाने जाते हैं उन चिन्होंको लिंग कहते हैं। अर्थात् असाधारण गुण कहो, लक्षण कहो, लिंग कहो एक ही अर्थ है। लक्षण वही होता है जो अपने लक्ष्यमें तो पूरे रूपसे रहे और अलक्ष्यमें जरा भी न रहे, वही चिन्ह कहलाता है, वही लक्षण कहलाता है और वही असाधारण गुण कहलाता है। लक्षणको अव्याप्ति अतिव्याप्ति व असम्भव दोषसे रहित होना चाहिए। अव्याप्तिका अर्थ है पूरे लक्ष्यमें न रहना, चाहे ऐसा कहलो कि जो लक्ष्यके एकदेशमें रहे, चाहे ऐसा कहलो कि जो पूरे लक्ष्यमें न रहे। अतिव्याप्तिका क्या अर्थ है कि अति के माने अधिक और व्याप्ति माने व्यापक रहना, अर्थात् जो लक्ष्यके अलावा अलक्ष्यमें भी रहे, उसे अतिव्याप्ति कहते हैं। लक्ष्यके माने जिसका लक्षण किया जाय, और लक्षणके माने वह चिन्ह जो अन्य द्रव्योंसे विवक्षित पदार्थको जुदा करदे याने जुदा बता दे।

जीवका यथार्थ लक्षण :—जैसे जीवका लक्षण क्या है ? चैतन्य। चैतन्य सब जीवोंमें पाया जाता है और किसी भी अजीवमें नहीं पाया जाता है। पुद्गलका लक्षण क्या है मूर्तिकता, मूर्तिकता पुद्गलमें पायी जाती है, अन्य द्रव्योंमें नहीं पायी जाती है।

सदोष लक्षण विचार :—इसके खिलाफ यदि कहें कि जीवका लक्षण क्या है ? तो जो चले, उठे, बैठे, सुखी दुःखी हो, राग करे, वह जीव है। सो क्या ये जीवके लक्षण सही हैं ? सही नहीं हैं। क्योंकि यह लक्षण अव्याप्ति दोषसे दूषित है। खान, पान, राग द्वेष आदि जीवके स्वरूपमें नहीं हैं। मुक्त जीवोंमें कहाँ राग है और उत्कृष्ट संन्यासियों में कहाँ राग है ? सो जीवका राग द्वेष लक्षण नहीं है क्योंकि इसमें अव्याप्ति दोष आता हैं। जैसे पूछा जाय कि पशुवोंका लक्षण क्या है ? तो कह बैठें कि पशुवोंका लक्षण सींग है। तो क्या यह लक्षण सही बन गया ? नहीं, पशुके सींग होते हैं पर सींग पशुका लक्षण नहीं। किसी-किसी पशुके सींग नहीं पाये जाते हैं। जो लक्षण पूरे लक्ष्यमें नहीं रहा वह लक्षण कैसे हुआ ? लक्षण वह होना चाहिए जो पूरे लक्ष्यमें रहे। सींग सब पशुवोंमें (लक्ष्यमें) नहीं रहता, अतः यह लक्षण अव्याप्त है। अब यह पूछे कोई कि गायका लक्षण क्या है ? उत्तर दे कोई कि गायका लक्षण सींग है। तो क्या यह उत्तर सही है ? नहीं। इसमें अतिव्याप्ति दोष आता है, क्योंकि गायके अलावा भेंस आदिके भी सींग होते हैं। जो लक्ष्यके

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

अलावा अलक्ष्यमें भी रहे वह लक्षण अतिव्याप्त कहलाता है। जैसे पूछें कि जीवका लक्षण क्या है ? तो कहें कि अमूर्तपना। याने जिसमें रूप, रस, गंध, स्पर्श आदि न हों उसे जीव कहते हैं। यह सही है क्या ? सही नहीं है, क्योंकि अमूर्तिपना जीवको मिल गया मगर जीवके अलावा धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य,आकाश द्रव्य और काल द्रव्य ये भी तो अमूर्तिक हैं। इस कारण यह लक्षण अतिव्याप्ति दोषसे दूषित है, जैसे पूछें कि गायका लक्षण क्या है ? कहें कि सींग। तो क्या यह लक्षण सही हो गया ? नहीं। सींग यद्यपि गायके हैं पर अन्य पशुवोंके भी सींग पाये जाते हैं। लक्षण वह होना चाहिए जो पूरे लक्ष्यमें पाया जाता हो और किसी भी अलक्ष्यमें पाया न जावे।

लिंग या गुणका क्षेत्र :—लिंग, गुण वह होना चाहिए जो निज द्रव्यका आश्रय करके तो रहे, और परका आश्रय न करे। भैया, द्रव्य पहिचाना जाता है ऐसे ही गुणसे कि जो गुण निजमें तो रहे और परमें न रहे। उसीसे पहिचान होती है। सो वह गुण कितना है। द्रव्य तो एक चीज हुई और गुण उसमें अनेक हुए, अथवा प्रतिनिधिरूप मुख्य एक ही गुण मानलो तो जो द्रव्य है वह गुण नहीं है और जो गुण है वह द्रव्य नहीं है। यद्यपि वह गुण द्रव्यमें तन्मय है, गुण ही द्रव्य तो है भी द्वैतभाव समझमें आगया क्योंकि द्रव्य और द्रव्यका लक्षण। तो इसमें लक्ष्य और लक्षण भेद है, इससे द्वैतभाव आगया। इस कारण लक्षण तो गुण हुआ और द्रव्य गुण है। जो लक्ष्य है वह द्रव्य और जो उसका लिंग है वह गुण है। सो इस तरह लिंग (लक्षण) लिंगी (लक्ष्य) में अतद्भाव हैं, तो भी लिंग लिंगीकी प्रसिद्धिमें याने गुण और गुणवानकी प्रसिद्धिमें ये गुण लक्षणपनेको प्राप्त होते ही हैं।

आत्माका पहिचान क्षेत्रादिसे नहीं, किन्तु असाधारण भावदृष्टि से—इसलिए जितने द्रव्योंकी पहिचान है सब अपने चिन्हसे होती है। अब अपने आत्माको पहिचानो तो द्रव्यसे याने पिण्डदृष्टिसे अनुभवात्मकरूपमें नहीं पहिचान सकते। इस पिण्डकी दृष्टि से अनुभव नहीं होता। पहिचान तो बहुत हो जायगी जैसेकि अन्य द्रव्योंकी पहिचान होती है। पिंड सभी होते हैं, क्षेत्रसे नहीं पहिचान सकते हैं। आकार सभीमें होता है। हम अपने आकारको इस तरह सोचें कि पैरोंसे लेकर सिरतक इतना लम्बा हूँ, इस पीठसे बक्षस्थलतक इतना चौड़ा हूँ, तो क्या ऐसा ही सोचनेसे आत्माकी पकड़ हो जायगी ? आत्माकी पकड़ ऐसे नहीं हो सकती है। यह प्रदेश आत्माका असाधारण गुण नहीं है। प्रदेश तो औरोंमें भी पाये जाते हैं। कालदृष्टिसे आत्माको देखो, यहाँ क्रोध, मान, माया लोभ हैं, यह भाव है, परिणमन है, यह मैं हूँ, इससे भी आत्मा नहीं पहिचाना जा सकता है क्योंकि वे सब तो अध्रुव हैं जिनको निगाहमें रखे हैं। अध्रुवसे ध्रुव नहीं ज्ञात होता है। उससे यह आत्मा पकड़में नहीं आता है किन्तु जब भावदृष्टि बनाएँ, जब अभेदभावकी दृष्टि करें याने यह मैं प्रतिभासमात्र रहूँ तो आत्माकी पकड़

(अब पे ६ आगे दे पृ८३)

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

होती है, अनुभूति होती है। इसीको ही ज्ञानानुभव कहा जाता है, इसीको ही आत्मानुभव कहा जाता है। आत्माका अनुभव इस असाधारण गुणके स्वरूपकी दृढ़ प्रतीति और ज्ञप्तिक्रियासे ही हो सकता है। भैया, जीवका ज्ञान गुण जीवका असाधारण गुण है। तदात्मक जीव है फिर भी विश्लेषणात्मक दृष्टिसे यहाँ यह वर्णन चलरहा है कि जो गुण है वह द्रव्य नहीं है क्योंकि द्रव्य और गुण एक हो जायें तो लक्ष्य और लक्षणका भेद समाप्त हो जाय कि कौन लक्ष्य और कौन लक्षण? असाधारण गुणोंके माध्यमसे ही हम यह जीव है, यह अजीव है आदि भेद उत्पन्न करते हैं। असाधारण गुणका काम ही है कि वहाँ भेद करो। क्योंकि वह द्रव्य भी स्वयं उन उन गुणोंमें तन्मय है, सो वह अपनेमें अपनी विशेषता रखता है।

सत् में विभिन्न दर्शन—जिस शैलीसे यहाँ पदार्थोंका वर्णन किया जारहा है उसमें सबसे पहिले तो एक सत् माना है। सत् कहो, द्रव्य कहो, अर्थ कहो एक ही बात है। वैसे चार शब्द आया करते हैं, द्रव्य, पदार्थ, अस्तिकाय और तत्त्व। जीवके बारेमें भी जीव द्रव्य, जीव पदार्थ, जीव अस्तिकाय और जीव तत्त्व, ये चारों नाम क्यों रखे गये हैं? अलग-अलग चीजें तो नहीं हैं। एक सत् को ही हम किस निगाहसे देखें कि वह हमें जीव द्रव्य नजर आयगा, उसही सत्को हम किस निगाहसे देखें कि वह हमें अस्तिकाय नजर आयगा, उसही को हम किसी निगाहसे देखें तो जीव पदार्थ नजर आयगा, उसही सत्को हम किस और निगाहसे देखें तो हमें जीव तत्त्व नजर आयगा। उन दृष्टियोंका निर्णय करलो।

द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी अपेक्षासे सत्का अवलोकन—सत् द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावमय है। द्रव्यका अर्थ है पिण्ड, क्षेत्रका अर्थ है प्रदेश, कालका अर्थ है परिणमन और भावका अर्थ है गुण। इस सत् को जब हमने पिंडकी दृष्टिसे देखा अर्थात् जो गुण पर्यायका पिंड है वह द्रव्य है। जैसे जीवमें अनन्त गुण हैं, अनन्त पर्याय हैं, उन सबका जो समुदाय है सो जीव है। ऐसा जो देखा तो इस द्रव्यदृष्टिसे उस देखे हुए जीवका नाम है जीव पदार्थ याने पिण्डरूपसे देखे गए जीवका नाम है जीव पदार्थ। फिर जब हमने क्षेत्रदृष्टिसे देखा याने जीवके असंख्यात प्रदेश हैं सो प्रदेशकी दृष्टिसे देखें तो इस क्षेत्रदृष्टिसे देखे गए जीवका नाम है जीव अस्तिकाय। जब कालकी दृष्टिसे इस जीवको देखते हैं तो कालके माने है परिणमन, पर्याय, तो इसका नाम हुआ जीवद्रव्य। द्रव्य उसे कहते हैं जो परिणमन करता था, परिणमन करता है और परिणमन करता रहेगा। द्रव्य शब्दमें परिणमनकी मुख्यता है। जब हमने कालकी दृष्टिसे इस जीवको देखा तो इसका नाम पड़ा जीव द्रव्य। जब भाव दृष्टिसे देखने चले तो अपनी शक्तिसे तन्मय है। जीवकी शक्ति है चैतन्य स्वभावकी दृष्टिसे जीवको निरखा तो उसका नाम पड़ा जीवतत्त्व। यदि हम जीवतत्त्वका अनुभव करते

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

हैं तो हमें आत्मानुभूति होती है। जीव तत्त्व कहो, ज्ञायक स्वभाव कहो, ज्ञानमात्र कहो, उसका जब हम परिज्ञान करते हैं तो उस परिज्ञानके आगे हमें ज्ञानतत्त्वका अनुभव होता है।

आत्मानुभूतिमें प्रथम प्रयत्न—आत्मानुभूतिके प्रयत्नमें सर्वप्रथम प्रयत्न होता है भेदविज्ञानका। सर्व पदार्थोंके स्वरूपको जाने बिना और उनमें यह पहिचान किये बिना कि यह मैं जीव हूँ और इस मुझसे अतिरिक्त सब अजीव हैं। हितके मार्गमें कैसे बढ़ सकते हैं? आत्मानुभवके लिए क्या यह प्रयत्न नहीं हो सकता है कि यह मैं जीव हूँ, बाकी सब अजीव हैं। यह मैं आत्मा हूँ बाकी सब अनात्मा हैं, ऐसी प्रतीति करलें। यह अपने आपका स्वरूप तब तक ज्ञात नहीं हो सकता जब तक ये दो बातें समझमें नहीं आजातीं, एक सामान्यकी बात, एक विशेषकी बात। सामान्य गुण यह बतलाता है कि यह मैं हूँ, अपने स्वरूपसे हूँ, परके स्वरूपसे नहीं हूँ। अपनेमें परिणमता हूँ, परमें नहीं परिणमता हूँ। मैं मैं ही हूँ, अपने लिए हूँ, अपनेमें करता हूँ। करना क्या है? परिणमना। करना शब्द एक व्यवहारका शब्द है, व्यवहार चलानेका शब्द है। और परिणमना शब्द वस्तुके स्वरूपको बताने वाला है।

अस् और भू धातुकी शब्दशास्त्रमें विशेषता—अभी शब्दशास्त्रमें भी देखो तो अस् और भू धातु इन दो धातुओंका ही प्रयोग करके बड़े-बड़े ग्रंथ बनाये जा सकते हैं और बड़ी व्याख्या, भाषण, निर्माण भी कर डालो, कोई भी क्रिया ले लो। कोई बात बताना है। जैसे किसीको मंदिर जाना है, तब तो उसका कथन यह हुआ कि उसका मंदिरके लिए गमन होता है। ऐसे ही सभी शब्द बदले जा सकते हैं। केवल अस् और भू धातुका सबसे अधिक प्रयोग किया जा सकता है। और और क्रियायें रखलो पर अस् और भू धातुओंको न रखो तो काम नहीं चल सकता है।

पराश्रय बुद्धि ही अज्ञान—लोक व्यवहारमें कहते हैंकि इस जीवने क्रोध किया, किन्तु भैया! क्रोध नहीं किया, क्रोधरूप परिणाम गया। भींटको कलईने श्वेत कर दिया, ऐसा कहा जाता है, किन्तु कलईने अपने आपको ही श्वेत किया है, भींटको कलईने श्वेत नहीं किया है। कलई जो पहिले एक ढेलेके रूपमें थी वही बाल्टीमें पानीमें मिलाकर पतले रूपमें परिणम गई है। और वही भींटके आकारमें फैल गई है। जो पहिले ढेलेके रूपमें कलईका टुकड़ा था अब वही टुकड़ा फैलकर विस्तृत हो गया। अतः विचारिये कि कलईने कलईको सफेद किया अथवा कलईने भींटको सफेद किया? अरे भाई, कलई तो स्वतः श्वेत रूपमें है, वही श्वेतरूप उसका विकसित हो गया है। ठीक इसी प्रकार भैया जीवने क्रोध नहीं किया, किन्तु किसी भिन्न तत्त्वका निमित्त पाकर अपने त्रैकालिक स्वभावका आश्रय छोड़कर अपनी योग्यतासे यह आत्मा क्रोधरूप हो गया है। वस्तुतः जीवने क्रोध किया नहीं है। पदार्थमें करनेका प्रयोजन

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

नहीं, पदार्थ है और जो है वह द्रव्यत्व गुणके कारण परिणमता है। जो जैसा है वस्तुतः वैसा वस्तुत्वगुणके कारण परिणम गया। परिणमनमें करनेका कुछ प्रयोजन नहीं है। चीज है परिणमती है किन्तु परिणमन स्वभावको (पदार्थके) न जानने वाला लोक करनेके नामको परिणमनकी संज्ञा देता है इस प्रकार कोई उपादानको कर्ता कहता है, कोई निमित्तको कर्ता कहता है। अरे भाई! न कोई उपादान कर्ता है, न निमित्त कर्ता है, किन्तु पदार्थमें ऐसा होता है, जो होता है वहाँ करनेकी बात क्या है?

आश्रयरहित दृष्टि सर्वत्र यथार्थ—इस अंगुलीको टेढ़ी कर दिया, यों करनेकी बात व्यर्थ कहते हैं। अरे टेढ़ी हो गई, परिणम गयी। किसी अन्य पदार्थको निमित्त पाकर टेढ़ी हो गयी। केवल एककी बात देखो तो सर्वत्र यथार्थ बात ज्ञानमें दौड़ती चली जायगी। द्रव्य परिणम गया, कोई पूछे कि क्यों परिणम गया? स्वभाव तो नहीं था इस प्रकार विकाररूप परिणमनेका। अरे भाई, यह कह दो कि इसका निमित्त पाकर यों परिणम गया। परिणमनमें करनेका नाम तो वस्तुके निर्णयमें न बोलो। परिणमनका नाम बोलो। कोई यह नहीं कहता कि निमितकी सन्निधिके अभावमें भी परिणम गया। क्या प्रकृति क्रोधरूप परिणम गयी? हाँ, प्रकृतिका निमित्त पाकर आत्मा कर्म रूप परिणम गया। करना न तो उपादानमें घटित होता है न निमित्तमें घटित होता है। कोई किसी रूप परिणम गया, कोई किसी रूप परिणम गया। परिणमना ही परिणमना देखते चले जावो। करनेकी कोई बात नहीं है। इस ही परिणमनको व्यवहारमें "करना" शब्द द्वारा बोला करते हैं।

परिणमन द्रव्यशक्तिका परिचायक—द्रव्यमें जो गुण हैं उन गुणोंका पता परिणमनसे मालूम होता है, जीवमें ज्ञानशक्ति है। ज्ञानशक्ति अनादिसे अनन्त काल तक है। यदि ऐसा कहें कि वह अपरिणामी है तो इतने शब्दोंसे हम ज्ञानशक्तिका क्या अन्दाजा करेगें, किन्तु जब ज्ञानशक्तिकी पर्यायका वर्णन करते हैं तब जानते हैं कि ज्ञानशक्ति वह है जिसका विकाश जाननरूप होता है। परिणतिसे जो जानते हैं, ग्रहण करते हैं ना, उसे कहते हैं जानन, और जाननकी शक्ति है ज्ञानगुण। सो, ज्ञानके परिणमनके द्वारसे ही हम ज्ञानशक्तिका ज्ञान कर सकते हैं। बहुत सुगम ज्ञेय द्रव्य पुद्गलको ले लीजिए। पुद्गलमें रूपशक्ति है, पर उस रूपशक्तिका ज्ञान इन्द्रियों द्वारा नहीं किया जा सकता है। किन्तु, रूपपर्यायका ज्ञान इन्द्रियों द्वारा किया जा सकता है कि यह नीला है, यह पीला है, यह रँगा है, यह पर्याय है। रूपशक्तिका ज्ञान जब करना होता है तब यूँ बताया जाता है कि यह काला, पीला, नीला, लाल, परिणमन रूपका विकास है और ये जिस शक्तिके विकास हैं उस शक्तिको रूपशक्ति कहते हैं, और वस्तुभेदोंमें चलो तो यों मालूम पड़ेगा कि रूपपर्याय तो मूर्तिक है पर रूपशक्ति अमूर्तिक है। रूपशक्तिका ज्ञान ज्ञानपरिणमनसे होता है इसी कारण

To report error, please contact vikasnd@gmail.com   Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

हम जिस द्रव्यको जितने प्रकारसे जानन पर्यायमें देखते हैं, हम उसमें उतनी शक्ति बताते हैं। कोई भी पर्याय किसी भी पर्यायसे विशेष समझमें आये तो एक नई शक्ति और बना लेते हैं। पदार्थमें अनन्त शक्तियाँ हैं। कोई परिणति तुम विलक्षण जानो तो झट उसकी शक्ति मान लो। जो शक्ति है वह गुण है और उसका परिचय हमें पर्याय मुखेन होता है। उसी के द्वारा हम ज्ञान करते हैं। जो जाने वह ज्ञानशक्ति है। जो देखनेका काम करे वह दर्शनशक्ति है। जो अनाकुलताका काम करे वह आनन्दशक्ति है। इस तरह पुद्गलमें जो कृष्णादिरूप परिणमें वह रूपशक्ति है। जो खट्टा, कड़ुवा, मीठा आदि परिणमें वह रस शक्ति है और जो ठंडा, गर्म, चिकना आदि परिणमें वह स्पर्श शक्ति है, जो सुगन्ध दुर्गन्धरूप परिणमे वह गन्धशक्ति है।

गुणोंकी अभेदात्मकतासे द्रव्योंमें भेद—पर्यायज्ञानके द्वारा हम द्रव्योंके गुणोंका ज्ञान करते हैं। ये ही गुण अभेदात्मकतासे एक असाधारण स्वभाव बनकर द्रव्यके दो भेद कर देते हैं कि यह जीव है और यह अजीव है। क्योंकि, वह द्रव्य स्वयं उन द्रव्यों करके विशिष्ट है इसलिए वह स्वयं ऐसी विशेषता रखता है क्योंकि जिस-जिस द्रव्यका जो-जो स्वभाव है उस-उस द्रव्यका उस-उस स्वभावके वाचक शब्दोंकरि विशेषितत्व पाया जाता है।

भेदाभेदवाद-समस्याकी विवेचना—जीव हैं, सब चैतन्यस्वरूप हैं। उनके जाननेकी पद्धति एक अभेदवाद और एक भेदवाद है, सब तत्त्वोंको पदार्थोंको उनके एक साधारणस्वरूपसे देखने पर अभेदवादका दर्शन बना है कि सब कुछ एक अद्वैत है, चाहे ब्रह्माद्वैत कहो, चाहे ज्ञानाद्वैत कहो, चाहे चित्राद्वैत कहो, यह तो है अभेदवादका काम और भेदवादमें चलो तो व्यक्तिवाद या विशिष्ठाद्वैत आता है, और उस व्यक्तिवादका और भी सीमातीत भेद करलें तो कुछ स्वरूप विलक्षण नजर आता है।

समवाय आदि सामान्य पदार्थमें अभिन्नता—स्वरूपभेदसे गुण अलग हो जाता है, क्रिया अलग हो जाती है। द्रव्य, गुण, क्रिया, सामान्य, विशेष, समवाय, व अभाव ये ७ तत्त्व अलग हो गये। क्योंकि कुछ तो भेद समझमें आया ना। जब कि जैन सिद्धान्त यह कहता है कि नहीं, सर्वत्र एक-एक ही विशेष दब्य है। गुण, क्रिया, सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव ये पृथक् चीजें नहीं हैं। केवल एक चीज है, वह है द्रब्य। उसकी जो विशेषता है वह है गुण। द्रव्यकी परिणतिका नाम है क्रिया। उस द्रब्यमें अन्य द्रव्यके साथ जो मेलपना है उसका नाम है सामान्य, और सब द्रव्योंको जुदा-जुदा कर देने वाली जो विशेषता है उसका नाम है विशेष। सब गुण तन्मयतासे रहते हैं इसका ही नाम है समवाय। आत्मामें अन्य चीज नजर न आये उसका नाम अभाव है। कहीं ऐसा नहीं है कि सामान्य पदार्थ अलग हैं, समवाय अलग हैं, गुण और क्रिया अलग हैं।

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

तद्भाव और अतद्भावकी समस्याओंका हल—भेदवादके लिए वैशेषिक बढ़े, तो अभेदके लिए अद्वैतवादी बढ़े। परन्तु तद्भाव और अतद्भावका परिचय करना सब समस्याओंका हल करना है। वैशेषिक दृष्टिने गुण क्रिया अलग-अलग माना है। जो गुणका स्वरूप है क्या वह क्रियाका स्वरूप है? सो तो मानते हैं, कि नहीं है, किन्तु अतद्भाव होनेसे भिन्न-भिन्न है, प्रदेशकृत भेद नहीं, इसलिए सब एक है। जो गुण है वह द्रव्य नहीं है और जो द्रव्य है वह गुण नहीं है। केवल अतद्भावकी अपेक्षा है। यह उस पदार्थके स्वरूपकी विशेषता है जिससे पदार्थ अपने स्वभावमय होते हैं। तो स्वभावमय अपनेको देखना, परसे हटना, अपने आपमें लीन होना, यही एक आनन्दका उपाय है। यहाँ तक द्रव्योंका मूर्तविशेष व अमूर्तविशेष गुणविशेषके कारण सिद्ध करते हुए इसी प्रकरणमें मूर्तगुणकी और अमूर्तगुणकी विशेषता भी बताई है। अब मूर्त गुण और अमूर्त गुणोंका लक्षणसम्बन्ध आख्यान करते हैं।

मुत्ता इंदियगेज्झा पोग्गलदव्वप्पगा अणेगविहा।
दव्वाणममुत्ताणं गुणा अमुत्ता मुणेयव्वा ॥१३१॥

मूर्त अमूर्तकी पहिचान—इसमें मूर्तगुणका और अमूर्त गुणका लक्षण सम्बन्ध बताते हैं। मूर्तगुण तो इन्द्रियों द्वारा ग्राह्य होता है किन्तु अमूर्त इन्द्रियोंके द्वारा विषयभूत नहीं होता है। इसलिए मूर्त और अमूर्तको इन्द्रिय व अनिन्द्रियका विषयपना कहा गया है। जो इन्द्रियों द्वारा ग्रहणके योग्य है सो मूर्त है। अमूर्तपदार्थ व सूक्ष्म स्कंध इन्द्रिय द्वारा ग्रहणमें नहीं आते मगर सूक्ष्म स्कन्धमें भी योग्यता है कि वे कभी इन्द्रियगोचर हो सकते हैं। जो इन्द्रियग्राह्य हैं वे मूर्त हैं। यह मूर्तगुण कैसा होता है और अमूर्तगुण कैसा होता है ? मूर्तगुण तो पुद्गल परिणामात्मक होता है और वे नाना प्रकारके हैं। अमूर्त द्रव्यमें अमूर्तगुण होता है। पुद्गलद्रव्यके सिवाय जितने भी बाकी द्रव्य हैं वे सब अमूर्त हैं। पुद्गलमें इस समय गुणके पर्याय तो मूर्तिक हैं यह स्पष्ट है पर उन पर्यायोंकी स्रोतभूत जो शक्ति है उस शक्ति को भी तो मूर्त कहा गया है। शक्ति तो इन्द्रियग्राह्य पुद्गल द्रव्यमें नहीं है, जो गंधशक्ति है, वर्णशक्ति है, रसशक्ति है, स्पर्शशक्ति है वह इन्द्रिय- ग्राह्य नहीं है। पर जिस शक्तिकी परिणति इन्द्रियग्राह्य है वह मूर्त है, तो उन गुणोंको भी मूर्त कहते हैं। क्योंकि अमूर्तगुणसे मूर्तविकास नहीं हो सकता है इसलिए मूर्तविकाशके स्रोतभूत उन शक्तियोंको भी मूर्त कहते हैं।

शक्तियाँ इन्द्रियगम्य नहीं, व्यक्तियाँ इन्द्रियगम्य—शक्तियाँ जो इन्द्रियों द्वारा गम्य नहीं हैं वे भी ज्ञानद्वारा ग्राह्य हैं। काला, पीला, नीला, लाल, सफेद, जो गुण पर्यायें हैं वे पर्यायें इन्द्रियों द्वारा जानी जाती हैं किन्तु इन पर्यायोंकी स्रोतभूत जो रूप आदि शक्ति है वह शक्ति इन्द्रियोंके द्वारा नहीं जानी जाती है। परंतु, मूर्त

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

पर्यायका स्रोत है मूर्त और अमूर्त पर्यायका स्रोत है अमूर्त । अमूर्तमें केवल ज्ञानादिक पर्यायमें आती है वे अमूर्त द्रव्यकी होती है यहाँ गुणशब्द केवल गुणके लिए नहीं है और न केवल पर्यायके लिए है किन्तु सारे कथनमें गुण भी और पर्याय भी सब एक दृष्टिमें रहते हुए वर्णन हैं । जो स्पष्ट पकड़में आ जाय वही वर्णन लिया जाता है । इस तरह मूर्तगुण तो केवल पुद्गलद्रव्यमें है और अमूर्तगुण है सो बाकी जीवादिक ५ द्रव्योंमें है ।

द्रव्यके गुणोंका दिग्दर्शन—यह वर्णन करके अब मूर्त जो पुद्गल द्रव्य है उस पुद्गल द्रव्यके गुणोंको बताते हैं । स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, ये इन्द्रियग्राह्य हैं । मनके द्वारा तो इन चारोंके बारेमें विशेषज्ञान किया जा सकता है विशेष ज्ञान क्या है कि वह इन्द्रियविषय नहीं है, वह मनका विषय है और जो उन पर्यायोंके बारेमें विशेष वितर्क चलता है वह श्रुत है । इसलिए वह मनका विषय है तो वह स्पर्श, रस, गंध, वर्ण इन्द्रियों द्वारा ग्राह्य है उनसे प्रकट होता है । उनकी उनमें शक्ति है । इस कारण कितने ही स्कंधोंके गुण इन्द्रिय द्वारा ग्रहणमें भी आते है फिर भी एक द्रव्यसे लेकर और अनेक द्रव्योंके पिण्ड तक अर्थात् परमाणुसे लेकर और अनेकद्रव्यात्मक स्थूल पर्यायों तक, स्कंधतक परिणामोंमें सामान्यरूपसे ये विशेष गुण पाये जाते हैं । परमाणु हैं उनमें भी रूप, रस, गंध, स्पर्श है । यही मूर्तिपना है और वह पुद्गल द्रव्यमें पाया जाता है । वे मूर्तिस्वरूप हैं, शेष द्रव्योंमें मूर्तिकता सम्भव नहीं । रूप, रस, गंध, स्पर्श ये पुद्गलको ही जताते हैं । जिसमें रूप, रस, गंध, स्पर्श पाया जाय उसे पुद्गल कहते हैं ।

मूर्त अमूर्त द्रव्योंमें विशेषता—पुद्गलका लक्षण है पूरण और गलन । जो गल जाय और मिल जाय सो पुद्गल है । परमाणु परमाणु मिलकर पिंड बन जाते हैं अमूर्त चीजें मिलकर पिण्डपर्याय नहीं बनते, पर अनेक पुद्गल मिलकर स्कंध बनता है । जैसे यह चौकी है, अनेक पुद्गल परमाणुओंका पिण्ड है । कोई ऐसा नहीं है जो दो जीवोंसे मिलकर बनता हो । परमार्थतः मिलकर तो परमाणु भी एक बनता नहीं है, पर जो पर्याय व्यंजनपर्याय है उसकी बात कहरहे हैं ।

व्यंजन पर्यायमें भी द्रव्योंकी स्वतंत्रता—जीव, पुद्गलकर्म और नोकर्म, इन तीनोंके पिण्डमें व्यंजनपर्याय बन जाती है पर परमार्थसे वह भी जुदा-जुदा है । पर वहाँ दृष्टि न देकर बोल रहे हैं, जैसे मनुष्य बन गये, पशु बन गये, पक्षी हो गये, यहाँपर भी जीव अजीव मिलकर एक पर्याय बन जाते हों सो नहीं हो सकता है । उनका सम्बन्ध भी नहीं होता । वे सब जीवोंकी पर्यायें हैं, वहाँपर भी व्यक्तरूपसे भिन्न-भिन्न है । यद्यपि एक शरीरके स्वामी अनन्त निगोदिया जीव हैं, पर उन अनन्त निगोदिया जीवोंकी परिणति भी प्रत्येक जीवोंमें पूर्ण रूपसे भिन्न परिणमती है ।

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

पूरण और गलन पुद्गलद्रव्यमें पाये जाते हैं, जीवमें नहीं पाये जाते हैं। एकमेकहो गये, भिन्न-भिन्न हो गये, ये बातें पुद्गलमें हैं।

प्रत्येक जीवकी भिन्नता—देखो भैया, जीवके साथ जीवका तो बिल्कुल ही सम्बन्ध नहीं है। व्यवहारमें भी सम्बन्ध नहीं, पुद्गल पुद्गलमें तो व्यवहार सम्बन्ध है कि कोई पुद्गल मिल गये, लो पिण्ड हो गया। अब इसको उठाकर धरेंगे तो सभी एक साथ चलेंगे। यह पिण्डपना पुद्गलमें है पर जीवका जीवके साथ इतनी भी बात नहीं है जितनी कि पुद्गल पुद्गलमें मित्रता है। जीवका जीवके साथ जरा भी सम्बन्ध नहीं है, मगर मोही जीवोंके लिए जीवका परिग्रह बहुत विकट परिग्रह लगा है। अचेतन परिग्रहसे तो थोड़ा-बहुत गम खा सकते हैं पर चेतनसे नहीं, जिस चेतनका रंच भी सम्बन्ध नहीं। यह जो दृश्य है वह तो पुद्गल है। जिसमें पूरण और गलन हो उसे पुद्गल कहते हैं। उसमें स्पर्श, रस, गंध, वर्ण ये चार इन्द्रियग्राह्य हैं।

शब्दका स्वरूप तथा द्रव्य, गुण और पर्यायोंका विश्लेषण—कोई प्रश्न करे कि जैसे स्पर्शादिक इन्द्रियग्राह्य गुण है वैसे शब्द इन्द्रियद्वारा ग्राह्य है फिर वह क्यों गुण नहीं कहलाता है? उत्तर—शब्द भाषावर्गणाके अनेक द्रव्योंसे मिलकर पुद्गल पर्याय है, ऐसी ही विचित्रता है, यह शब्द कर्णद्वारा तो विषय होता है किन्तु यह गुण नहीं है, द्रव्यपर्याय है। शब्द पुद्गल द्रव्यमें सदा नहीं पाये जाते हैं जैसे कि रूप, रस, गंध, स्पर्श पाये जाते हैं। स्पर्श गुणकी रूक्ष, स्निग्ध शीत और उष्ण ये चार पुद्गलकी खास पर्यायें हैं, हल्का और भारी, कोमल और कठोर ये पर्यायें नहीं हैं, मगर जो स्कंध बन गया उसमें हल्का भारी कोमल कठोर पाया जाता है सो यह स्कन्धकी परिणति है। हल्का-भारी सापेक्ष परिणति है। यह एकाकी परिणति नहीं है। द्रव्यकी स्वयंकी परिणति नहीं है किन्तु सापेक्ष परिणति है। इसी प्रकार कोमल और कठोर। यह भी पुद्गल द्रव्यकी स्वयंकी परिणति नहीं है परन्तु पुद्गलोंकी मिली जो पर्याय होती है वहाँ कोमल कठोर भी सापेक्ष परिणति हो जाती है। पुद्गलकी जो चार पर्याय है वे और रूपकी जो ५ पर्याय हैं काला, पीला, नीला, लाल, सफेद और गन्धकी दो पर्यायें हैं सुगन्ध और दुर्गन्ध तथा रसकी ५ पर्यायें हैं, खट्टा, मीठा, कडुवा, चरपरा और कषायला ये गुण पर्यायें हैं, और शब्द जो सुननेमें आते हैं, ये गुणपर्याय नहीं हैं, द्रव्यपर्याय हैं, द्रव्यका संयोग-वियोग होनेपर, द्रव्यमें क्रिया होनेपर, परिस्पन्द होनेपर शब्दपर्याय उत्पन्न होती है और गुणपर्याय परिस्पन्द बिना होरही है। शब्द-इन्द्रियद्वारा ग्राह्य है फिर भी गुण नहीं है किन्तु पर्याय है। शब्दको अनेक-द्रव्यात्मक रूपसे माना है। इस तरह पुद्गल द्रव्यमें रूप, रस, गन्ध, स्पर्श पाये जाते हैं।

भावात्मक साधना द्वारा भावात्मक अनुभूति—वस्तुका विस्तृत स्वरूप भेद विज्ञानमें काम आता है। मैं आत्मा एक ज्ञानस्वरूप हूँ, सब पुद्गलोंसे भिन्न हूँ। जब

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

भी ज्ञान और आनन्दकी अनुभूति होती है, तब भावात्मक साधनासे भावात्मक आत्माकी भावात्मक ही अनुभूति होती है उसका किसी भी पुद्गलस्कन्धसे सम्बन्ध नहीं। कभी शरीरमें फोड़ा-फुन्सी हो जाय और उसके कारण बड़ा दर्द होवे, पीड़ाका अनुभव हो, तो वह पीड़ा भीतर हो रही है, वह भावात्मक है, पुद्गलपरिणामात्मक नहीं है। दर्द होरहा है, दुःख होरहा है, वह भावात्मक चीज है, लेकिन कोई कहे कि फोड़ा नहीं हुआ तो इतनी वेदना क्यों उठी? उत्तर—यह फोड़ा ही तो वेदना नहीं है। यह फोड़ेकी वेदना नहीं है, भीतर की है। मगर, भीतरकी वेदना इस प्रकारके ढंगकी है कि शरीरमें फोड़ाका आश्रय करके उसका विकल्प करके बड़ी वेदना बनती है, पीड़ा बन जाती है। वेदना भीतरसे निकलती है इसलिए समयसारमें वेदनाका वर्णन किया है। उसमें लिखा है कि यह ज्ञान वेदा जाता है सो यही ज्ञानकी वेदना है, यह अचल ज्ञान है, स्वयं वेदा जाता है, परन्तु मोही जीव उस फोड़ाके रूपको ही भ्रमवश वेदना कहते हैं। वेदना विद्धातुसे बना है जिसका अर्थ जानना है।

सुख-दुःख मात्र ज्ञानवेदना—जो ज्ञान वेदा जाता है वह वेदना कहलाता है। सुख दुःख क्या है ? ये सब ज्ञान होनेकी कलाएँ हैं। कैसा ज्ञान कर लिया कि सुख-शान्तिका अनुभव हुआ और कैसा ज्ञानकर लिया कि दुःखका अनुभव हुआ। सुख-दुःख इन्हीं दो प्रकारकी ज्ञानकी कलाओंपर निर्भर है। अभी किसी शहरमें किसीका बड़ा व्यापार चलरहा हो और जिसमें लाखोंका टोटा आ गया हो और उसके ज्ञानमें यह न आया हो व टोटेके स्थानपर यदि मुनाफा उसे बताया गया हो तो वह बड़ा सुखका अनुभव करता है। और यदि चाहे हुआ हो मुनाफा, पर उसे पता लग जाय कि टोटा पड़ गया तो वह दुःखी हो जाता है। भाई, ये सुख-दुःख उसे क्या धनसे आये ? अथवा क्या किसी कम्पनीसे सुख-दुःख आये ? वस्तुतः ये सुख-दुःख धन या कम्पनी आदिसे नहीं आए, किन्तु उसने अपनेमें स्वयं किसी कारण इस प्रकारका ज्ञान बनाया कि दुःखी हो गया। यह दुःख-सुख सामग्री व निमित्तपर निर्भर नहीं, किन्तु ज्ञानपर ही निर्भर है।

संयोग व स्वभावका ज्ञान दुःख और सुख—किसी जीवके इष्टका वियोग हो गया, परिवारका मरणरूप वियोग होगया तो उसके बारेमें बड़ी आकुलताएँ होती हैं। समझाने वाले लोग यह कोशिश करते हैं व ऐसी ज्ञानकी बातें करते हैं जिसमें उसके दुःखकी ओर झुकानेवाले ज्ञानकी दिशा बदल जाय। ऐसा करनेके लिए उनके अनेक उपाय होते हैं। जैसे मनोरंजनके साधनोंमें उसे ले जाना, आदि-आदि इन सब उपायोंमें प्रयोजन मात्र उसकी दिशाको बदलनेका होता है, वे जानते हैं कि यह मोही वियोगजन्य ज्ञान करके दुखी है, यदि इसे वियोगके स्वरूपका ऐसा ज्ञान पिलाया जाय जिसे पीकर इसका मोह निर्मोहरूपमें बदल जाय तो वह सुखी हो जायगा। अतः वे समझाने वाले

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

उसे समझाते हैं कि वह तुम्हारा कुछ नहीं था। सभी जीव न्यारे-न्यारे हैं। अपनी-अपनी करनीसे सब सुख-दुःख पाते हैं। अपनी ही करनीसे चौरासी लाख योनियोंमें भ्रमण करते रहते हैं। किसी जीवका किसी जीवसे क्या सम्बन्ध है। इस प्रकार वह ज्ञान को बदल देनेसे ही निर्मोहताके ज्ञानसे सुखी हो जाता है। देखो भैया, एक ज्ञानसे ही सुख हो जाय और एक ज्ञानसे ही दुःख हो जाय। सुख और दुःखका मात्र एक ज्ञानकी विभिन्न परिस्थिति ही कारण है। सुखी होनेके लिए केवल अपने ज्ञानके ढंगको बदलना है। और कुछ बाहरी चीजोंको उठाकर नहीं रखना है। किन्हीं बाहरी चीजोंका संचय नहीं करना है, किसीका सुधार बिगाड़ नहीं करना है। केवल ज्ञानके ढंगको बदलना है। जो मोहके ढंगका ज्ञान है उसे निर्मोहितामें बदलना है। यें पर पदार्थ मेरे हैं, मैं अमुकमें यों करता हूँ, मैं अमुकमें यों कर दूँगा, इस प्रकारसे संयोगी पदार्थोंके स्थाईपनेका ज्ञानसम्बन्ध चल रहा है, वही ज्ञान दुःखका कारण होरहा है। अतः शान्तिके लिए ज्ञानकी दिशा बदलना है। इस मिथ्या ज्ञानको बदले बिना दुःख नहीं मिट सकता है। कितना ही प्रयत्न करते जाओ, बिना मिथ्यात्वके बदले दुःख नहीं मिटाया जा सकता। कितना ही प्रयत्न करते जावो बिना मिथ्यात्वके बदले संकटोंसे मुक्ति नहीं प्राप्त हो सकती है। अच्छा, बतलाओ भैया! कि आपके पास कितने लाख रुपये हो जायें तो आपको सुख मिल सकता है, मिलजुल कर, कमेटी बनाकर निर्णय करके बता देना। अरे भैया, सुख धन वैभवसे नहीं मिल सकता है। सुख तो आत्माके आनन्द गुणका परिणमन है। इस प्रकारका ज्ञान करो कि ज्ञान परिणति आनन्दरूप बन जाय तो सुख प्राप्त हो जायगा।

ज्ञान और आनन्दका अविनाभाव सम्बन्ध—ज्ञान और आनन्द आत्माके अविनाभावी हैं। सुख लेना है, आनन्द लेना है, तो हमें ज्ञानका सत्य उपयोग करना चाहिए। अपने ज्ञानका सही-सही उपयोग करलो, लो दुःख मिट गया। मिथ्या ज्ञान है तो दुःख होगा। इस कमरे में कुछ अँधेरे-उजेले में साँपके आकारकी एक रस्सी पड़ी है, उसके देखते ही यह ध्यान बन जाय कि यह साँप है, ऐसा मिथ्या ज्ञान हो जाय तो व्याकुल हो जायेंगे ना। तब हम विचारते हैं कि कहीं ऐसा न हो जाय कि घरके किसी व्यक्तिको यह काट ले। सो लोगोंको बुलाने लगे, इस प्रकारका ध्यान बन गया, लो दुःख हो गया। कुछ क्षण पश्चात् सोचा कि जरा देखें तो कि वह कौनसा साँप है? कैसा है? किस जातिका है? आगे बढ़कर देखने लगे तो ऐसा बोध आया कि यह तो सर्प प्रतीत नहीं होता। जरा और आगे बढ़े तो निश्चय हुआ कि यह तो कोरी रस्सी है। रस्सीका सही-सही ज्ञान हो जानेसे संकट मिट गए। देखो पहिले भी क्या साँप का संकट आया था? अरे केवल अपने भाव बनाकर संकट बना लिया था।

परिस्थितियोंका मिथ्याज्ञान ही दुःख—मानलो कि कैसी भी परिस्थिति हो,

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

कुछ आर्थिक परिस्थिति खराब हो, कैसी ही कठिनाइयोंका गुजारा होरहा हो, पर कठिनाइयोंकी ओर मेरा लक्ष्य न हो तो मुझे दुःखका अनुभव नहीं होता। किन्तु, यदि ऐसा सोचें कि आगे कैसा गुजारा होगा, बस, इस कल्पनाजगतके हो जानेपर अपने ऊपर मोहीजन दुःखका बोझा लाद लेते हैं।

पारिवारिक समस्याओंका चितासे सुलझनेका अभाव—परिवारकी हम क्या चिंता करें। स्वयं उनके साथ कर्म है। उनका जैसा पुण्य पाप है तैसी ही उनमें लोक व्यवस्था बनेगी। उनपर मेरा क्या अधिकार है एक तो यह बोध करना योग्य है और दूसरा यह बोध्य है कि हम कदाचित् कितने ही धनी हों तो भी काम चल सकता है और धनी न हों तब भी काम चल सकता है। दूसरोंको भी तो देखते हो कि वे कम धनी हैं, अथवा गरीब है तो क्या उसमें उनका गुजारा नहीं हो रहा है?

सुखाकांक्षीके परिस्थितियोंकी उपेक्षा—तीसरी बात यह सोचो कि जैसा भी गड़बड़-सड़बड़ काम चलता हो, कितनी भी तकलीफ हो, कितने भी संकट आते हों पर तुम्हारा काम यह है कि तत्सम्बन्धी सत्यज्ञानका उपयोग रखो, सत्य श्रद्धान रखो व सारी बातें सही-सही जानो। यह निश्चय हो कि मेरा स्वभाव केवल ज्ञाता द्रष्टा रहने का है, इसके आगे मेरा स्वभाव नहीं। मेरा खाने-पीनेका स्वभाव नहीं, कोई भी अन्य स्वभाव नहीं। लोग कहते हैं कि लोककी सारी चीजें मिट जावेंगी, उनकी हम क्या फिक्र रखें?

ज्ञानके विकासमें मनुष्यभवकी विशेषता—मेरा मुख्य काम तो आत्मकल्याणका है जो किसी भवमें नहीं हो सकता। आत्मकल्याणका समर्थ साधन केवल एक मनुष्यभव है, इसीमें मैं आत्महित कर सकता हूँ। देखो भाई, सम्यग्दर्शन किसीभी जीवके उत्पन्न हो सकता है। चाहे तिर्यंच हो, चाहे नारकी हो, चाहे देव हो, चाहे मनुष्य हो, सैनी हो, सबके सम्यग्ज्ञान उत्पन्न हो सकता है, आत्महितका मूल सिद्ध हो सकता है पर सम्यग्ज्ञानका अधिक विकास मनुष्य ही कर सकते हैं। सम्यक्चारित्रको मनुष्य ही उत्पन्न कर सकता है। सो परम हित मनुष्य ही कर सकता है। मनुष्यभव एक ऐसा भव है कि चाहे कितना ही आत्महित करलो। मेरा जीवन आत्महितके लिए है। ऊँची व्यवस्था बनाने, ऊँचा हिसाब-किताब रखनेके लिए नहीं है।

परमें कर्तृत्ववृत्तिकी उपेक्षा—चौथी बात यह है कि कमाई अपने करनेसे कहीं बढ़ नहीं जाती है, धन नहीं बढ़ जाता है। वह तो बढ़ना होगा तो बढ़ेगा। चिंता करो तो क्या, न करो तो क्या। ऐसे कुछ ज्ञान विकासके द्वारा हम अपने ऊपरका बोझा कम करें और आत्महितके मार्गमें अधिक लगें।

आत्महितकी प्रेरणा—यह मैं ज्ञानस्वभाव मात्र हूँ, इस मुझको ऋषिजन कहते हैं चिन्मात्र। पक्षियोंके बच्चे होते हैं उनको बुन्देलखण्डमें चेनुवा बोलते हैं।

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

छोटा बच्चा हो, जिसके पर न आये हों, शरीरका ढाँचा मात्र आ गया हो उसे चेनुवा बोलते हैं। ऐसा वह बच्चा है कि चल नहीं सकता है। कोमल शरीर है तो उसे चेनुवा कहते हैं। चेनुवाके माने क्या है? इसका भाव यह है कि शरीरकी दृष्टि तो गौण करदें, फिर देखें तो कहेंगे कि यह तो केवल जीव ही जीव है, चिन्मात्र है, शरीर नहीं है। यद्यपि शरीर है पर वह काम नहीं कर सकता है सो कहते हैं लोग कि अभी तो केवल उसके जीव ही जीव है, ऐसा नजर करते हैं। तो व्यवहारमें ऐसा बोला ही जाता है। जैसे किसीसे कोई काम कराओ, आधा धूधा काम कर लिया तो उसे बोलते हैं कि इसने तो काम किया ही नहीं। काम किया है पर "नहीं किया" ही बोलते हैं। इसी तरह उस चेनुवाके माने चिन्मात्र है, कुछ शरीर नहीं है, वह चेनुवा शब्द चित्से बना हुआ है। निजमें इस चिन्मात्रको देखो पर्यायको गौण करके सब चैतन्यात्मक पर्यायोंके स्रोतभूत जो एक चैतन्य शक्ति हैं वह मैं हूं। मैं इतना गुप्त हूँ कि कि शरीरकी पर्तको छोड़कर चलूँ, भावकर्म तोड़ कर चलूँ, जो नाना विकल्प हैं, कल्पनाएँ हैं, उनको तोड़-फोड़ कर चलूँ और जो शुद्ध परिणमन है ज्ञान विकास, यदि उससे भी पार हो कर चलूँ तो उस ज्ञानके द्वारा अपना चैतन्य स्वरूप आत्मतत्त्व मेरी पकड़में आता है। ऐसा यह मैं चैतन्यतत्त्व स्वयं प्रभु हूं। इस मर्मको भूल गया तो नाना प्रकारकी खोटी परिणतियाँ होरही हैं। अब यह करने चलो कि सब बातोंकी उपेक्षा करते जाओ, लड़ाई-झगड़ा छोड़ो, राग-द्वेष छोड़ो, कुछ विशेष लक्षण अपनेमें लावो, अपने स्वयंके ज्ञानका अभ्यास करो और अपना निर्णय करलो कि वास्तवमें मैं क्या हूं? जो मैं हूं उसे दुनिया नहीं जानती है। जब मुझे दुनिया नहीं जानती है तो किससे मेरी शत्रुता और किससे मेरी मित्रता। अर्थात् कौन मेरा शत्रु और कौन मेरा मित्र? वे सब कुछ नहीं। और, यदि दुनिया मुझे जान जाती है तो जब चिन्मात्र ज्ञायकस्वभावमात्र आत्मतत्त्व हूं। ऐसे मुझको किसीने पहिचान लिया तो बस, यही उसका मोक्षका मार्ग है। मुझसे फिर नाता कैसा? वे नाता तोड़कर ही बढ़ रहे हैं, उनसे मेरा कुछ भी सम्बन्ध क्या? उनसे मेरा कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। मैं एक आत्मतत्त्व हूँ, सहज परमात्मतत्त्व हूँ। इस तरहकी अपने आपमें पहिचान हो, अपने-आपमें लगन हो तो अपना कल्याण है। नहीं तो संसारमें भटकना ही बना रहेगा। यहाँ वस्तुस्वरूपका वर्णन चल रहा है। इस गाथामें मूर्त व अमूर्त गुणोंका विचार करके अब मूर्त जो पुद्गल द्रव्य है उसके गुणोंको विवृत करते हैं—

वण्णरसगंधफासा विज्जंते पुग्गलस्स सुहुमादो।
पुढवीपरियंतस्स य सद्दो सो पोग्गलो चित्तो॥ १३२॥

पुद्गल द्रव्यमें सूक्ष्मसे लेकर स्थूल तक अर्थात् सूक्ष्ममें हुए परमाणु और

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

स्थूलमें हुई पृथ्वी तक सबमें वर्ण, रस, गंध और स्पर्श पाये जाते हैं। स्पर्श, रस, गंध और वर्णमें ये इन्द्रियों द्वारा ग्राह्य हैं।

वर्णादिगुणोंकी तारतम्यताका द्योतक श्रुतज्ञान—इन्द्रियोंसे जाने हुए वर्ण गुणके तारतम्यको श्रुतज्ञान बतलाता है। उसका रंग विशिष्ट काला है, उसका रूप कम काला है, इस प्रकारका ज्ञान करना श्रुतज्ञानका विषय है। या यूँ समझलो कि जैसे एक छोटा बालक या तत्काल पैदा हुआ बालक आँखे खोलनेपर सब कुछ देखता तो है, पर देखे हुए पदार्थोंको वह कह नहीं सकता। कि यह काला है, यह पीला है, न काले, पीलेका उसे विकल्प है। अतः वर्णादिके विशेषोंका कथन करना श्रुतज्ञानका कार्य है, और वर्णादिका सामान्य ज्ञान, यह मतिज्ञानका विषय है। श्रुतज्ञान सविकल्प होता है। स्पर्शादिका ज्ञान जो मतिज्ञानने जताया, उनका विशेष श्रुतज्ञानसे जाना। स्पर्श, रस, गंध, वर्ण ये चार इन्द्रियग्राह्य हैं। इन्द्रियोंसे ग्राह्यपनेके व्यक्तिकी शक्ति होनेसे वह परमाणुतक भी जो अतिसूक्ष्म है, मूर्त माना गया है।

इन्द्रिय अग्राह्य परमाणु मूर्तिमान क्यों?—परमाणु यद्यपि इन्द्रियग्राह्य नहीं है, पर परमाणु स्कन्धमें हो जानेपर इन्द्रियग्राह्य हो जाता है। इन्द्रियग्राह्य हो जानेकी उसमें शक्ति है। इस कारण गृह्यमाण हुआ हो या अगृह्यमाण हुआ हो, समस्त पुद्गल द्रव्य मूर्तिक ही होते हैं।

विश्व सूक्ष्म स्थूल पदार्थोंका समूह—सूक्ष्म और स्थूलका आशय यह है कि सबसे सूक्ष्म परमाणु है, परमाणुसे सूक्ष्म और कुछ नहीं। और उससे स्थूल है कर्म, कार्माण-वर्गणायें व ज्ञानावरणादिककर्म ये स्थूल चीजें हैं, इससे स्थूल हैं चार इन्द्रियोंके विषय, रस, गंध, स्पर्श और वर्ण। उससे स्थूल है छाया। छाया यही जो यहाँ पड़ रही है, उससे स्थूल है पानी। और पानीसे स्थूल है यह पृथ्वी, पिंड आदि। इन सबमें रूप, रस, गंध, स्पर्श ये चार चीजें पायी जाती हैं। जैसे कि सिद्ध भगवानमें जो अनंत-ज्ञानादिक चतुष्टय हैं वे यथा सम्भव सब जीवोंमें साधारण हैं। ठीक इसी प्रकार स्पर्श, रस, गंध वर्ण, ये चारों सब पुद्गलोंमें पाये जाते हैं। किसीमें जघन्य डिग्री है तो किसीमें उत्कृष्ट डिग्री है, मुक्त जीवोंमें जो अनन्त ज्ञान आदि चतुष्टय हैं वे इन्द्रिया-गोचर हैं, ज्ञानगम्य है। इसी प्रकार शुद्ध परमाणु द्रव्यमें जो वर्णादिक चार गुण हैं वे भी अतीन्द्रिय ज्ञानके विषय हैं, अनुमानगम्य हैं और आगमगम्य हैं।

पुद्गलादि द्रव्योंका तुलनात्मक अध्ययन—यहाँ पुद्गलका वर्णन चल रहा है। इस वर्णनमें आध्यात्मिकता प्रकट होती जाय इस शैलीसे तुलना करते जाइये। जिस प्रकार वर्णादिक सब पुद्गलमें हैं उसी प्रकार ज्ञानादिक भी सब जीवोंमें हैं। जैसे मुक्त जीवोंमें अनन्तज्ञान पाया जाता है पर उसे सीधा नहीं बताया जा सकता। वह अनु-

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

मान गम्य है। इसी तरह जो परमाणुमें रूप, रस गंध, वर्णादिक पाये जाते हैं वे अतीन्द्रिय ज्ञान गम्य हैं।

द्रव्योंका सामान्य निरूपण—अब द्रव्योंका सामान्य निरूपण किया जाता है। जैसे यह परमाणु है, स्निग्ध, रूक्ष गुणके कारण स्कंध पर्यायके बन्धनमें आता है तो अशुद्ध हो जाता है, इन्द्रियगम्य हो जाता है। परमाणुके वर्णादिकचारों गुण इन्द्रियगम्य नहीं हैं, केवल ज्ञानसे जाने जाते हैं। पर वे ही परमाणु जब बन्धनमें आ जाते हैं तो वे परमाणुके चारों गुण इन्द्रियगम्य होजाते हैं। इसी प्रकार संसारी जीवके ज्ञान, दर्शन, शक्ति और सुख ये अतीन्द्रिज्ञानगम्य हैं। रागादिकके निमित्तसे, कर्मबन्धनके बशसे ये त्रिपुटीके पिण्ड बन जाते हैं, याने कर्म, भावकर्म व द्रव्यकर्मकी त्रिपुटीरूप हो जाते हैं और इसी वजहसे जीव अशुद्ध हो जाते हैं। और वे अनन्तज्ञानादिक शक्तियाँ विकृत हो जाती हैं। और जब रागादिक स्नेहरहित शुद्ध आत्माका ध्यान हो तो वह शुद्ध हो जाता है, शुद्ध आत्मतत्त्वके ज्ञानसे शुद्ध हो जाता है। इसी प्रकार वर्णादिक जो चार प्रकारके हैं उनमें स्निग्ध आदिके एकपनेका अभाव होगा तो बन्धन होता किन्तु एकत्व मात्र होनेपर बंध नहीं होता। परमाणुकी अवस्थामें आयेंगे तो वे शुद्ध हो जाते हैं। उपरोक्त विवेचनासे हमें यह सोचना है कि हम किस प्रकारका ध्यान करें कि शुद्ध हो जायें। किसका ध्यान करनेसे हम शुद्ध बन सकते हैं ? अरे भाई, शुद्धका ध्यान करनेसे हम शुद्ध बन सकते हैं। अशुद्धका ध्यान करनेसे हम शुद्ध नहीं बन सकते हैं।

शुद्धके उपयोगसे, आलम्बनसे ही शुद्धि—हम शुद्ध होनेका प्रोग्राम बनायें और अशुद्ध तत्त्वका उपयोग करें तो हम शुद्ध नहीं बन सकते हैं। प्रोग्रामके अनुसार उपयोगसे ही हम शुद्ध हो सकते हैं। कैसे शुद्धके ध्यानसे हम शुद्ध बन सकते हैं ? सिद्धभगवान व अरहंत देव है, इनका जो विशुद्ध परिणमन है, या उसके अनुकूल जो शुद्ध आत्मतत्त्व है, उसीके ध्यानसे हम शुद्ध हो सकते हैं, किन्तु सिद्ध भगवान और अरहंतदेव परद्रव्य हैं, अपने कार्यके लिए जो यावन्मात्र पर हैं उन्हें हम अशुद्ध मानते हैं। अतः पर तत्त्वका जो जीव आश्रय करेगा वह शुद्ध कैसे बनेगा ? सिद्ध भगवान यद्यपि परमात्मासिद्ध है किन्तु वे हैं तो पर अतः पर पदार्थरूपी सिद्ध या अरहंत प्रभुका ध्यान किया तो ध्यान करनेवाला ध्याता और जिसका ध्यान किया वह ये दोनों भिन्न-भिन्न परतत्त्व हो गये।

लम्बाई खींचकर अपना उपयोग वहाँ रखे। ऐसी स्थितिमें सत्यता नहीं प्रकट होती। पुण्य तो बढ़ेगा मगर आत्मत्वसिद्ध नहीं होगा। शुद्धके ध्यानसे ही शुद्धका उपयोग होता है। फिर भी जितने अंशमें राग है उतने अंशमें बन्ध है और जितने अंशमें उसके शुद्ध आत्मस्वरूपका संस्कार है, भावना है उतने अंशमें विकाश है। यहाँ जो जीव शुद्ध होना चाहता है वह परका ध्यान न करे। परके ध्यानसे

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

तो जीव शुद्ध होता नहीं। स्वरूप तो शुद्ध ही है । यदि वह अपने शुद्ध स्वरूपका ही ध्यान करे तो स्वरूप तो स्वयं ही है। भैया ! शुद्ध तत्त्वके ध्यान बिना शुद्धता आती नहीं है । अतः परखो कौनसा शुद्ध तत्त्व है जिसके ध्यानसे आत्मा शुद्ध होता है।

शुद्ध तत्त्वावलोकन:—शुद्ध तत्त्व अपने आपमें दीखता है। अपने आप के आत्मामें जो शुद्ध स्वरूप है, अपने ज्ञानका स्वरसतः अपने आप जो स्वरूप है वह तो शुद्ध है । शुद्धके माने निर्मल पर्याय नहीं किन्तु द्रव्यकी वास्तविक शुद्धता है । अर्थात् केवल । के माने आत्मा और के बना है सप्तमीमें । इसके माने के माने आत्मामें व वल के माने बल । याने आपमें बल लगाकर देखो तो आत्मा दीखेगी । तो केवल, सिर्फ उसी को ही देखा जाय । मेरा जो सहज स्वरूप है वह शुद्ध है, क्योंकि वह तो सदासे बना हुआ है; परपरिणतिसे रहित है इसलिए जो शुद्ध तत्त्व है उसके ध्यानसे शुद्धता उत्पन्न होती है । अर्थात् अशुद्धताका विनाश होता है। ऐसा शुद्ध तत्त्व भी कोई इन्द्रियगम्य नहीं है। और मनसे भी गम्य नहीं है। शुद्ध तत्त्वके अनुभवके उत्पन्न करनेमें तो मनका व्यापार हुआ है । किन्तु अनुभवके स्रोतको उत्पन्न करनेके बाद जब यह आत्मा आत्मानुभवकी ओर बढ़ता है तब मनसे पृथक् होकर ही बढ़ता है। वह मानसिक व्यापार नहीं होता है।

ज्ञानानुभूतिका उत्पत्तिविषय:—उत्पत्तिकी अपेक्षा ज्ञानानुभूतिको मति-ज्ञान कहते हैं। किन्तु वर्तमानमें केवल दृष्टि वर्त रही है। इस कारण यह मति ज्ञानका भेद उत्पत्तिकी अपेक्षा है। क्योंकि उसका पूर्णरूप इन्द्रिय और अनिन्द्रियके निमित्त से उत्पन्न होता है। किन्तु मतिज्ञानमें भी केवल मतिज्ञानकी वृत्ति यदि देखें, इस ज्ञानमें यदि दृष्टि लगावें अर्थात् केवल ज्ञानका स्वरूप देखें तो वहाँ ये भेद नहीं ठहरते।

श्रद्धादिकी अपेक्षा साधु और गृहस्थमें अन्तर—ज्ञानके मामलेमें चाहे साधु हो, चाहे गृहस्थ हो, श्रद्धा और ज्ञान इन दो मामलोंमें जैसा साधु करता है तैसा गृहस्थ कर सकता है। साधुमें और गृहस्थमें केवल संयमज ज्ञानका व चरित्रका अन्तर है। किन्तु ज्ञान और श्रद्धान आत्मामें बराबर रहता है। हाँ, लगनमें गृहस्थके अन्तर रहता है। क्योंकि पारिवारिक परिस्थितियोंमें होनेसे व्यापारादि बिना गृहस्थका गुजारा नहीं चलता। वह कुटुम्ब को भी देखता है पर साधु इनसे भिन्न है। गृहस्थ तो धनको भी सम्हाल कर रखता है । गृहस्थ बहुतसे कारोबारमें लगा है इस कारण इसका उपयोग इस आत्मतत्त्वकी ओर स्थित नहीं रहता है। और, साधु-जनोंको कुटुम्ब का, धनका कोई झगड़ा नहीं है, इस कारण साधु इस तत्त्वमें रह सकता है। देहबन्धनमें रहता हुआ भी वह अपना कल्याण कर सकता है। ऐसा, नहीं है कि साधुजन आत्मज्ञान ज्यादा करते हैं, हम थोड़ा ही करनेके लायक हैं इसलिए

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

थोड़ा ही करते हैं। आत्महितके लिए जैसा ज्ञान गृहस्थका है तैसा ही ज्ञान साधुका है। अन्तर केवल चरित्रका पड़ जाता है। उससे आनन्दका अन्तर हो जाता है।

ज्ञानसामान्यमें ज्ञानकी वृद्धि और विशेषज्ञानमें ज्ञानकी घटती—आत्मीय ज्ञान गृहस्थको झलक मात्र ही होता है, वह छक कर आनन्द लूट नहीं पाता है। और, साधु छककर आनन्द लूट सकता है। इस आनन्दके उदाहरणके लिए एक घटनापर विचार करो, जैसे कोई गरीब मनुष्य बाजारसे एक आनेका पेड़ा ले आया जो परिमाण में बहुत थोड़ा आया उसने उसे खा कर पेड़ाके स्वादका आनन्द लिया और दूसरे एक सेठने २ रु० के पेड़ा मगाये जो मात्रामें अधिक आये। अतः उसने छक कर खाये। दोनोंके पेड़ा खानेमें मात्राका अन्तर है, पेड़ा नामके पदार्थके स्वादके परिचयका अन्तर नहीं। अतः साधारण व्यक्ति व धनिक व्यक्तिके न छकनेका व छकनेका अन्तर पड़ा। इसी प्रकार साधु आत्मतत्त्वका दर्शन करते समय जो अनुभव करता है उसको बहुत आनन्द आता है पर एक गृहस्थ कभी अपने आत्मतत्त्वका जो अनुभव करता है वह छककर नहीं अनुभवता है। आया और गया, फिर उसका उपयोग बदल गया। तो अपने आपमें अन्तः प्रकाशमान अनादि अनन्त अहेतुक जो ज्ञान स्वभाव है, चैतन्य स्वरूप है, उस चैतन्य स्वरूपका ज्ञान करे व आत्मबल लगाकर अर्थात् ज्ञान सामान्य बनाकर रहे तो ज्ञानका बल बढ़ता है। और, अगर ज्ञानका विशेष बनाया अर्थात् विशेष जानकारीमें उपयोगको खींचा तो ज्ञानका बल घटता है।

लोकव्यवहार और मोक्षमार्गमें सामान्यकी स्थिति—भैया! इस लोकमें देखो तो विशेषका बड़ा महत्त्व माना जाता है। अहो, यह विशिष्ट पुरुष है। सामान्यका महत्त्व इस लोकमें नहीं है। जैसे कहते हैं ना, लोग कि अरे यह तो सामान्य पुरुष है। परन्तु मोक्षमार्गमें सामान्यका बड़ा महत्त्व है, विशेषका कुछ महत्त्व नहीं। विशेषको बताया है रागद्वेषका साधन और सामान्यको बताया है सम्यक्त्वका आश्रय।

सामान्यज्ञानकी कारणसहित प्रेरणा—भैया! ज्ञानसामान्य बनानेका उद्योग करो अर्थात् कोई विशेष पदार्थ, कोई व्यक्तिगत पदार्थ ज्ञानमें न आने दें और ज्ञानका ही जो स्वरूप है ज्ञानमात्र, बस उसको ही अपनी दृष्टिमें अधिक रखें। तो यह ज्ञान यदि सामान्यपद्धति अंगीकार करता है तो उसे ज्ञानानुभूति होती है। और, ज्ञानानुभूतिका आनन्द ही कर्मोंकी निर्जरा करता है। क्लेश कर्मनिर्जरा नहीं कर सकते किन्तु आत्मीय आनन्दसे ही कर्मोंकी निर्जरा है। और इसी कारण बड़ी-बड़ी तपस्यायें चाहे ग्रीष्मकाल हो, चाहे शीतकाल हो, जो की जाती हैं, उन तपोंमें भी वह योगी खेदको नहीं प्राप्त होता, किन्तु अन्तरंगमें आत्मीय आनन्दसे भरा रहता है। इसलिए गर्मीमें पाषाणमें शिलापर भी तप करते हैं फिर भी उन्हें वहाँ आनन्द प्राप्त होता है। मोहमें कोमल गद्दोंपर तकियोंमें पड़े हुए लोगोंको भीतरमें आत्मीय आनन्द नहीं है,

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

वे शोक और संतापमें जर्जरित ही होते रहते हैं। उन सेठोंके डाक्टर भी लगे हैं। क्या हो गया है? हार्टट्रबुल हो गया है। हो क्या गया है? कुछ भी नहीं हो गया है। केवल यह हो गया कि जो एक लाखका माल रखा था, उसका भाव गिर जानेसे टोटा पड़ गया है, मुनाफा नहीं हुआ। इसी कारणसे उनके भारी शोक और संताप छा गया है। डाक्टर लोग लगे हैं। डाक्टर जाते हैं, उसको धैर्य देते हैं कि ठीक है, घबड़ावो नहीं, ठीक हो जावोगे। अब घबड़ाना लाभकारी नहीं है, ऐसा सोचकर ही उनका कुछ दिमाग बदल जाता है। डाक्टर बोल देता है कि शारीरिक डिफेक्ट कोई नहीं है, तुम ठीक हो। ठीक है, किन्तु कोई बड़ा भाव हो गया बतादे तो और अच्छा हो जाता है।

ममताका अभाव ही रोगका अभाव—भैया! रोगकी असली दवा तो यही है कि ममता छूटे। शुद्ध आत्मतत्त्वकी दृष्टि आये तो ठीक होता है। धनिक लोग, ये परिग्रहबुद्धिवाले जन अच्छी स्थितिमें रहते हुए भी दुःखी हुआ करते हैं और ये साधु लोग फटी हालतमें रहते हुए भी सुखी रहा करते हैं। अथवा उन साधुओंको आत्मीय आनन्द प्राप्त होता है और उन सेठोंको, धनिकोंको आत्मीय आनन्द नहीं प्राप्त होता है।

आत्मानुभूतिकी महिमा—आत्मानुभूतिमें ही कर्म ईंधनको भस्म करनेकी शक्ति है। और तो सब बाहरकी चीजें हैं कि बड़े सुबह नहा रहे, डिगडिगा रहे, एक बार खा रहे, ये सब अपने उपयोगको स्थिर करनेके साधन हैं। भगवानसे अगर बिनती करें कि मेरा उद्धार कर दो, मेरा कल्याण करदो तो कहीं ऐसा नहीं हो सकता है कि भगवान मोक्षसे आकर हाथ पकड़कर मुझे तरा ले जावेंगे। वह तो इसके खुदको निर्मल बनानेका बढ़िया साधन है। उन साधनोंकी उपासना करें पूजा करें और जैसा उनका उपयोग है वैसा उपयोग करें तो स्वयं सिद्धि प्राप्त होगी।

ज्ञानानुगामित्व ही पूज्यत्व—लोकमें देख लो, जो अपने ज्ञानके मार्गमें चलता है उसका पचासों आदमी आदर करते हैं, पचासों ही लोग उस व्यक्तिकी इज्जत करते हैं। अपने आपमें अगर यह सोच लें कि देखो ये हमसे कितना अनुराग करते हैं तो यह ठीक थोड़े ही है। अरे वे अनुराग तुमसे नहीं करते हैं। पचासों आदमी जो तुम्हारा आदर करते हैं वे इसलिए करते हैं कि तुम अपने ज्ञानसे सही चलते हो, तप और संयमसे चलते हो। पचासों व्यक्ति अगर तुम्हें सहयोग देते हैं तो केवल ज्ञानसे चलते हो, सद्भावसे चलते हो इसलिए सहयोग देते हैं। कोई आदमी यदि उल्टा चले, हिंसा करे, कुशीलसेवन करे; दूसरोंका धन हड़प ले तो उसका कोई भी रक्षक नहीं हो सकता है, उसको कोई भी सहयोग नहीं देगा, उसकी कोई भी मदद नहीं करेगा। अपने स्वरूपकी दृष्टि हो तो वह अपना आत्मस्वरूप ही रक्षक है। स्वयं ही स्वयंका रक्षक है। कोई दूसरा दूसरेकी रक्षा कर ही नहीं सकता है।

पुद्गल व जीव द्रव्यकी तुलनात्मक विवेचना—अभी पुद्गल द्रव्यकी और

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

आत्मद्रव्यकी किन्हीं दर्जोंमें समानता बताते आये हैं कि जैसे पुद्गलके चार गुण हैं रूप, रस, गंध, स्पर्श, । इसी तरह इस जीवके भी चार गुण हैं ज्ञान, दर्शन, सुख और शक्ति । जैसे पुद्गल स्निग्ध, और रूक्ष गुणके प्रसादसे अशुद्ध हो जाते हैं, स्कंध हो जाते हैं, बँध जाते हैं, इसी तरह यह जीव राग और द्वेषके प्रसादसे द्विविध कर्मोंके बन्धनमें बँध जाता है। जैसे स्निग्ध, रूक्ष गुण बन्ध्य न हों तो पुद्गल शुद्ध हो जाते हैं, इसी तरह राग द्वेष न हों तो यह जीव भी शुद्ध हो जाता है। राग द्वेष उत्पन्न न हो इसका अमोघ उपाय क्या है ? रागद्वेषरहित आत्मस्वभावका ध्यान। इस उपायसे चलो कि राग द्वेष मिट जावें तो दसों आदमी क्या, जगत उपासना करेगा। एक यह शुद्धदृष्टि पासमें हो तो सर्व अर्थकी सिद्धि समझिए । यदि एकका अंक पासमें हो तो उसपर कितनी ही बिन्दिया रखते चले जावो, गणनामें संख्या बढ़ती चली जायगी। यदि एकका अंक पासमें नहीं है तो विन्दियोंसे संख्याकी गणना करनेमें मदद नहीं मिल सकती है। इसी तरह हमें अपने शुद्ध स्वरूपका ज्ञान हो, लगन हो तो फिर सत्यस्वरूप पहिचाननेके लिए कुछ भी ज्ञानका यत्न करें उससे लक्ष्य सिद्ध हो जावेगा अन्य यत्न नहीं करना पड़ेगा, इस शुद्ध स्वरूपके आश्रय से ही यथार्थ लाभ मिल सकता है। जितना व्यवहारधर्म है वह परमार्थसे आत्मपदार्थकी उपासना के लिए है। जैसे किसी नवयुवककी ससुरालके गाँवके तीन चार आदमी जारहे हों चाहे छोटी जातिके हों तो दरवाजेपर जाते देखकर उन्हें वह बुलाता है, बिठाता है, खातिरी करता है व बीच बीचमें ससुरालके घरके हाल भी पूछता जाता है कि सभी लोग मजेमें हैं ? यहाँ तक कि अपनी गृहिणी तकका भी हाल पूछ लेता है। इसी प्रकार यह जिज्ञासु अन्तरात्मा आत्मोपलब्धिके लिए ही समस्त व्यवहार धर्म करता है। वहाँ पर भी लक्ष्य केवल शुद्ध आत्मत्वपर रहता है। शुद्ध आत्मा जाननेके लिए शुद्ध दृष्टि चाहिए, जहाँ वस्तुका मात्र स्वरूपास्तित्व भासे वह शुद्धदृष्टि है।

सूर्यका प्रकाश या पदार्थका प्रकाश—उद्योतके माने प्रकाश है। यह प्रकाश, जो चौकीपर पड़ा हुआ है, यह किसका प्रकाश है ? लोग यह कहेंगे कि यह सूर्यका प्रकाश है, मगर यह प्रकाश चौकीपर चौकीका प्रकाशरूप परिणमन है, उसका निमित्त सूर्य है। सूर्यका निमत्त पाकर यह चौकी भी प्रकाशरूप होगयी है। यह सूर्य कितना बड़ा है ? जितना भी बड़ा हो। हजारों कोशोंका हो तो उतनेमें ही सूर्यकी चीजें हैं सूर्यकी कोई भी चीज उसके पिंडसे बाहर नहीं है। न प्रताप बाहर है न प्रकाश बाहर है, न गर्मी बाहर है। सूर्यका जो कुछ है वह सूर्यके ही प्रदेशोंमें है। पर ऐसा निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध है कि सूर्यका सान्निध्यका निमित्त पाकर ये चटाई, चौकी इत्यादि सभी प्रकाशित हो जाते हैं। इसमें अनेक शंकायें हो सकती हैं, क्योंकि एकदम देखनेमें ऐसा लगता है कि देखो सूर्यकी किरणोंसे ही तो ये चीजें प्रकाशित होरही हैं सूर्यकी किरणोंकी

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

गति भी बताई जाती है, आँखोंसे देखी जाती है, सूर्योदय हुआ तो प्रकाश चलता हुआ नजर आता है। तो बाह, वह तो सूर्यका ही प्रकाश है और इस शंकाके समर्थनमें आगममें भी लिखा है कि सूर्यकी सोलह हजार किरणें हैं। इससे तो यह बात बिल्कुल साफ जाहिर हो जाती है कि सूर्यकी किरणें चलती है। भैया, इसको युक्तियों और वस्तुस्वरूपकी अपेक्षासे सोचना होगा कि सूर्य जितनेमें होगा उतनेमें ही सूर्यकी चीजें होगी। पहिला तो नियम यह है कि वस्तु जितने प्रदेशमें है उसका सब कुछ उतने ही प्रदेशमें होगा उससे बाहर नहीं होगा। अब रहा यह कि सूर्यकी किरणें तो दिखती हैं। तो बात यह है कि जैसे यह मोटी चीज है और उसमें प्रकाशरूप परिणमनकी योजना है और अपनी उस योग्यताके कारण सूर्यका निमित्त पाकर यह प्रकाशरूप परिणम जाता है। इसी तरह इस आकाशमें भी सूक्ष्म स्कंध फैला हुआ है और जैसे यह प्रकाशरूप परिणम जाता है वैसे ही यह सूक्ष्म स्कंध भी प्रकाशरूप परिणम जाता है। परिणम गया। जब हम सूर्यको देखते हैं तो हमारी दृष्टिकी गतिविधि ऐसी है, दर्शनविधि ऐसी है कि लाइनें यहाँ दीखती हैं। तो इतना देखनेमें जितनी सूक्ष्म स्कंधकी लाइनें आयें बस चमकदार लाइनें नजर आती हैं और उन चमकदार लाइनोंमें ये सूर्यकी किरणें हैं, ऐसा व्यवहार होता है। और इस तरह जो नियत संख्यामें सूर्यकी किरणें बताई हैं कि १६ हजार किरणें है तो उसका मतलब यह है ? कि इस दृष्टिसे १६ हजार लाइनोंमें स्कंधोंको देख सकते हैं। तो किसकी दृष्टि ऐसी है। चक्रवर्तीकी जैसी दृष्टि ही इन सब लाइनोंके स्कंधोंको देख सकती है। अच्छा, फिर और सोचो सूर्यकी किरणें जब सभी जगह हैं। तो वे किरणें भोगभूमिमें क्यों नजर नहीं आती हैं ? उसका कारण यह है कि कल्पवृक्षकी ज्योतियाँ तेज नजर आती हैं, सो सूर्यकी जो ज्योति है उसका निमित्त पाकर जो प्रकाश आया करता है वह नजर नहीं आता है। अब एक शंका यह होती है कि सूर्योदय हुआ, तो यह प्रकाश आता हुआ दिखता है, सो यह सब सूर्यका ही तो प्रकाश है। एकदम कैसे निषेध किया जाय ? तो आप हमें यह बतलाओ कि सूर्यका जो प्रकाश है वह सूर्यमें से एकरूप निकला कि अनेकरूप निकला ? इस सूर्यके प्रकाशको एकरूप होना चाहिए। नानारूप भी अगर मान कर भिन्न-भिन्न हो गये तो भी कुछ सीमा तक उसी रूपमें होना चाहिए। मतलब यह है कि सूर्यप्रकाश एक है तो हमें सब जगह एक रूप क्यों नहीं नजर आता, काँचपर देखते है तो तेज नजर आता है, ऐनापर देखते तो और तेज नजर आता है, काठ, कंकड़पर देखते हैं तो बहुत कम नजर आता है। ऐसा क्यों ? इसका समाधान यह है कि यह सब सूर्यका प्रकाश नहीं है। सूर्यका प्रकाश होता तो हमें सर्वत्र एकरूप नजर आता। जिन पदार्थोंमें जितनी योग्यता है वे अनुकूल सन्निधिप्राप्त सूर्यका निमित्त पाकर तेज कम चमक रूप परिणम जाते हैं।

सूर्यका आताप या पदार्थका आताप— इसी प्रकार आताप की बात जानो सूर्यका

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

निमित्त पाकर काठ, पृथ्वी, शरीर, जमीन आदि सभी गर्म हो जाते हैं। गर्मीके दिनों में आतापमें तो पैर भी नहीं रख सकते हैं। इसमें जो गर्मी आई है इसे बतलावो यह किस की गर्मी है। जेठके महीनेमें सर्वत्र तपन हो जाती है। घर तप जाता है, छत तप जाती है, सर्वत्र ही तपन हो जाती है फिर भी यह सूर्यकी गर्मी नहीं है। मकान आदिकी गर्मी है ? लोग यह कहते हैं कि सूर्यकी गर्मी है। आजकल सूर्य बड़ा गर्म निकलता है। कहें, पर यह सूर्यकी गर्मी नहीं है। ये तो सूर्यका निमित्त पाकर छत, पृथ्वी, मकान आदि गर्म रूपमें परिणम जाते हैं। और, यह गर्मी जो है वह इसी पृथ्वी, छत, मकान आदि की पर्याय है। आगने पानीको गर्म किया, ऐसी स्थितिमें पानीका, गर्मपन पानीकी गर्मी का परिणमन है। आग भी पुद्गल है, पानी भी पुद्गल है, आग और पानीका परस्पर निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध बन गया है।

निमित्तनैमित्तिक भावकी कर्तृकर्मनिषेधकता—भैया ! प्रकरणमें कहनेका मतलब यह है कि शब्द कोई गुणपर्याय नहीं किन्तु व्यक्त द्रव्यपर्याय है। ये दृश्य सब जो हैं वे भी पुद्गल द्रव्यकी द्रव्यपर्यायें हैं। सूर्यका निमित्त पाकर यह प्रकाश हो जाता है। अब सूर्यका निमित्त पाकर सूर्यके पासके स्कंध गर्म हो गये। उनको निमित्त पाकर पासके स्कंध गर्म हो गये। इस तरहसे गर्म होते हुए ये सब गर्म हो जाते हैं। लोग बिजलीकी भी गति कहते हैं। बिजलीनामक कोई ऐसा तत्त्व हो जो वही खुद यहाँ तक आता हो ऐसा नहीं है, किन्तु बात यह है कि उस विद्युत्का निमित्त पाकर यह तार विद्युत रूप परिणमा। ऐसे निमित्तनैमित्तिक सम्बन्धमें होने वाली गति तीव्र होती है और एक ही कोई अशुद्ध पदार्थ चले तो उसकी गति तीव्र नहीं होती। मूर्त तत्त्व कोई एक यहाँसे चले और वहाँ तक पहुँचे तो उसकी गति तेज नहीं हो सकती। निमित्त-नैमित्तिक भावसे होनेवाला जो परिणमन है और लगातार है उसकी गति तीव्र होती है। जैसे यहाँका निमित्त पाकर यह यों परिणम गया तो निमित्त नैमित्तिक परिणमन उसी समयमें होता है ना ? जिस कालमें कोई निमित्त है, उसी कालमें नैमित्तिक है। यहाँ थोड़ा सा फर्क भी पड़ जाय तो कितना पड़ेगा ? इस कारण निमित्तनैमित्तिक भाव से होने वाले परिणमनकी गति ही तीव्र होती है। जैसे देखते हैं ना कि यहाँ बटन दबा दो तीन मीलपर जलने वाला बल्ब तुरन्त जल गया। अगर एक चीज गमन करके चलती तो वहाँ इतनी जल्दी ना जा सकती थी। यहाँ से वहाँ तक निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध है इसलिए इतनी दूरका भी बल्ब जल्दी जल जाता है।

शब्दके गुणत्वका निषेध—गाथाके प्रकरणमें यहाँ शब्दके बारेमें बतला रहे हैं कि शब्द गुण नहीं है। जैसे पुद्गलमें रूप, रस, गन्ध, स्पर्श आदि गुण हैं वैसे शब्द कोई गुण नहीं है। कई लोग मानते हैं कि शब्द आकाशका गुण है। आकाश व्यापक है और उसका गुण है शब्द, वह शब्द सब जगह भरा हुआ है, हम लोग बोलकर शब्द उत्पन्न

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

नहीं करते। शब्द नित्य है, गुण है, सदा रहनेवाला है, सर्वव्यापक है पर हम लोगोंकी बोलीसे उस शब्दका आविर्भाव होता है! किन्तु अनेक युक्तियोंसे विचार करलो भैया! वह शब्द गुण नहीं है, वह तो अनेकद्रव्यात्मक पर्याय है। शब्दको यदि गुण मानते ही हो तो वह अमूर्तका तो गुण हो नहीं सकता क्योंकि गुण और गुणीका एक ही प्रदेश है। जैसें ज्ञान और आत्मा एक ही प्रदेशमें है। ऐसा नहीं है कि आत्मा अलग प्रदेशोंमें हो और गुण अलग प्रदेशोंमें हो केवल गुणभेदका कथन समझनेके लिए है।

गुण गुणीमें एकवेदनवेद्यता—वस्तुमें तो गुण गुणी अभेदरूप है। वह सब एकवेदनवेद्य है। ज्ञानका ग्रहण होता है तो आत्माका ग्रहण होता है। इसी प्रकार यदि शब्द आकाशका या अन्य किसी अमूर्तका गुण हो जाये तो एकवेदनवेद्य हो जाय अर्थात् जिस रूपमें शब्दका वोध होता है उसी रूपमें आकाशका बोध होने लगे फिर तो आकाशमें व शब्दमें अन्तर नहीं रहना चाहिए। पुद्गलमें शब्द प्रत्येक समय पाया जाना चाहिए। फिर शब्दमय जगत हो जायगा। अभी थोड़ा हल्ला-गुल्ला हो रहा हो तो कुछ झंझट हो जाता है। शब्द पुद्गलका गुण हो तो कान यों ही फूट जावेंगे। जैसे पुद्गल द्रव्यका यह रूप गुण है तो वह सदा ही रहता है ना? कभी न रहे यह नहीं होता। अगर यह शब्द पुद्गलका गुण हो जाय तो शब्दको सदा रहना चाहिए। और, जब शब्द सदा रहेगा तो कान फूट जायगा। मनुष्य भी मारे हल्लाके कुछ न कर पायेगा। सो अच्छा हुआ यह कि शब्द गुण नहीं है, पर्याय है।

शब्दके पुद्गलपर्यायत्वका समर्थन—शब्द कादाचित्क है। कदाचित् होना तो पर्यायका लक्षण है। गुणका लक्षण तो नित्यपना है। वह तो सदा रहता है। यहाँ एकवेदनवेद्यका न होना और कादाचित्क होना, ये दो प्रकार एकरूपपने व नित्यपनेको बिगाड़ देते हैं। इस कारण शब्द गुण नहीं है। शब्दोंका उत्पाद है। उन शब्दोंके आरम्भिक जो पुद्गल हैं, शब्दोंकी उत्पत्ति जिन भाषावर्गणाओंके परिस्पंदसे हुआ करती है, उन पुद्गलोंके संयोग वियोगके परिस्पंदसे शब्द उत्पन्न होते है अतः वे पर्याय हैं। शब्द अनित्य हैं, शब्द इन्द्रियग्राह्य हैं, शब्द पाँचों इन्द्रियोंका विषय नहीं केवल श्रोत्रेन्द्रियका विषय है। स्पर्शन इन्द्रिय, स्पर्श पर्यायको विषय करता है। रसना इन्द्रिय रसपर्यायको विषय करता है, घ्राणेन्द्रिय गंधपर्यायको विषय करता है और चक्षुइन्द्रिय रूपपर्यायको विषय करता है, कर्णइन्द्रिय भाषाजातिके पुद्गल द्रव्यको, शब्दरूप द्रव्यपर्यायको विषय करता है। शब्द तो टकराता है, वह अमूर्तका गुण कैसे हो सकता। जैसा हमने ज्ञानसे स्वयं जाना, ज्ञानको जाना उसीको आत्माका अनुभव कहते हैं। ज्ञानके अनुभवको ही आत्माका अनुभव कहते है सो ये एकवेदनवेद्य हैं। शब्द तो कर्णइन्द्रियका बिषय है, वह कर्णइन्द्रियसे जाना जाता है, क्या आकाश भी कर्णइन्द्रियसे जान लिया जायगा, यह आपत्ति आती है। सो भैया! शब्दको, पुद्गलका सीधा परिणाम

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

क्यों न जान लिया जाय, अमूर्त आकाशका गुण क्यों माना जारहा है ?

शब्दके पुद्गलगुणत्वका निषेध—और भी देखो, शब्द पुद्गलका भी गुण नहीं है। शब्द तो अनित्य है, नष्ट होता है। जो नष्ट होने वाला है वह गुण कैसे हो सकता है, रूपादि तो हमेशा रहता है। देखो ना, प्रत्येक समय स्कंधोंमें रूप नजर आरहा है ऐसा कभी नहीं होता कि लो, इसमें रूप नहीं रहा, अब आ गया, यह अन्तर नहीं रहता।

शब्द क्या ?—यहाँ कोई यह कहे कि शब्द भी तो इन्द्रियग्राह्य है तो वह भी गुण हो जाना चाहिए। इन्द्रियग्राह्य होनेपर भी शब्द गुण नहीं है। इसके दो कारण हैं। एक तो शब्द नित्य नहीं है। गुण जितने होते हैं वे नित्य होते हैं, शब्द हुए अर्थात् भाषावर्गणाकी परिणति हुई और मिट गई। जो शब्द बोला वह शब्द बादमें कहाँ रहता है ? इस कारणसे शब्द गुण नहीं है। दूसरी बात यह है कि शब्द जो है वह अनेकद्रव्यात्मक पुद्गलपर्याय है। शब्द कोई एक द्रव्य नहीं है, किन्तु अनेक भाषा वर्गणाओंके पुद्गलोंकी एक विशिष्ट व्यंजन पर्याय होती है वह शब्द है। यह पुद्गलकी द्रव्यपर्याय है, गुणपर्याय तक भी नहीं है।

शब्दके पर्यायत्वकी विवेचना—शब्द भाषावर्गणाओंके परिणमनसे बना है। यह पुद्गल द्रव्य पर्याय है। शब्द, बन्ध, सूक्ष्म, स्थूल, भेद, अन्धकार छाया और उद्योत, ये सब पुद्गलकी गुणपर्यायें नहीं हैं, द्रव्यपर्यायें है। रूप, रस, गंध, स्पर्श ये पुद्गलके गुण हैं। बन्धकी बात सोचो रस्सी बँध गयी, यह रूपपर्याय है, कि रसपर्याय है, कि गन्धपर्याय है, कि स्पर्शपर्याय है ? इनमेंसे कोई पर्याय नहीं। सूक्ष्म है, छोटा है, यह सूक्ष्मपर्याय भी रूप, रस गन्ध, स्पर्श आदिकी पर्यायें नहीं। स्थूल है,यह भी रूप, रस, गन्ध, स्पर्श आदिकी पर्याय नहीं। संस्थान है, आकार है, यह तिखूटा है, चौखूटा है, गोल है आदि ये भी कोई गुणकी पर्याय नहीं। न वह रूप है, न रस है, न गन्ध है, न स्पर्श है। अच्छा भेदकी बात सुनो, बँधी हुयी चीज अलग हो गई, रस्सी बँधी है, छोड़ दिया, अंगुली बँधी है, हटा दिया। क्या यह किसी गुणकी गुणपर्याय है ? अन्धकार हो गया, यह जो अन्धकार हो गया यह रूपकी पर्याय है, कि रसकी पर्याय है, कि गन्धकी पर्याय है कि स्पर्शकी पर्याय है ? आप थोड़ा ऐसा कह सकेंगे कि अन्धकार रूपगुणकी पर्याय हैं। अन्धकार हो गया तो काला हो गया, काला हो जानेपर पीली वस्तु क्या काली हो गयी ? नहीं, सफेद वस्तु क्या काली हो गयी ? नहीं, तो रूप अलग चीज है और अन्धकार अलग चीज है। कोई चीज सफेद है, सफेद बर्तन हैं क्या वे काले हो गये ? नहीं, ऐसा नहीं है। तो अन्धकार किसी गुणकी पर्याय नहीं है। छाया की, हाथका निमित-पाकर छाया हो गयी है तो यह बतलावो छाया किसकी पर्याय है ? रूपकी पर्याय हैं, कि रसकी पर्याय है, कि गन्धकी पर्याय है, कि स्पर्शकी पर्याय है। जो वस्तु सामने है वह निमित्तमात्र है। यह छाया सामनेकी वस्तुका परिणमन नहीं है, वह तो छाया

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

जिसपर है उसकी परिणति है। तो यह छाया क्या हाथकी परिणति है ? नहीं।

परिणतिका क्षेत्र—एक कानून बनालो कि जिसकी जो परिणति है वह उसके प्रदेशोंमें रहती है। जिसकी जो चीज बतलावोगे वह उसके प्रदेशमें ही होगी, उसके प्रदेशसे, बाहर न उसका गुण हो सकता और न किसी प्रकारका पर्याय हो सकता।

पदार्थोंकी विचित्रता—यहाँ कोई जिज्ञासा करे कि यदि शब्द पुद्गलपर्याय है तो पृथ्वी आदिकी तरह यह ज्ञान में आ जाना चाहिए। सो भैया ! यह सब पदार्थोंकी विचित्रता है कितने ही पदार्थ ऐसे है जो सब इन्द्रियोंके विषय नहीं होते। जैसे जल अग्नि, वायु क्या ये सब इन्द्रियोंके विषय भूत हैं ! ये घ्राण इन्द्रियोंके विषयभूत नहीं है, पर पत्थर काठ आदि स्कन्धको देखते हैं तो ये चारों इन्द्रियोंके विषय हैं। हवाको देखो यह स्पर्शन इन्द्रियसे ही समझमें आता है। ये सब विषय तो है, किन्तु कौन बात किस इन्द्रिय द्वारा ग्राह्य है यह निर्णय कर लेना चाहिए शब्द भी एक विषय है सो शब्द सब इन्द्रियों द्वारा ज्ञानमें आ जाना चाहिए ऐसी बात नहीं हैं। वह केवल श्रोत्रेन्द्रिय द्वारा ग्राह्य है। गुणपर्याय श्रोत्रेन्द्रियग्राह्य नहीं होती।

सर्व पुद्गलोंमें चारों गुणोंकी अनिवार्यता—कितने ही लोग यह ग्राह्यता देख कर ऐसा कह डालते है कि हवामें तो सिर्फ स्पर्श है, अग्निमें मात्र रूप है व स्पर्श है, जलमें स्पर्श रस वर्ण है; पृथ्वीमें रस, गंध, वर्ण, स्पर्श चारों है। उसपर भी जल में तो हमें रस ही नजर ताता है, हवामें स्पर्श ही नजर आता है और पृथ्वीमें गन्ध ही नजर आता है। परन्तु भैया ! ऐसी बात नहीं है। जितने भी पुद्गल है उनमें चार गुण पाये जाते है। उनमें से चाहे हमें चारों नजर आवें या न आवे। ये चारों पाये जाते हैं यह कैसे जाना ? तो बतलाते है कि उनके साधनोंमें जब चारों गुण नजर आते हैं इसलिये उनके कार्योंमें भी चारों गुण समझना चाहिए। यहाँ एक मोटा दृष्टांत दे रहे है। जैसे कहते हो कि हवामें रूप नहीं है तो जरा हवाके साधनपर दृष्टि दो। एक जौ का अनाज होता है, जिसके खा लेनेसे भारी हवा बनती है। गेहूँ में इतनी हवा नहीं बनती है। जौ जानते हो ना भैया, उसमें भारी हवा होती है। जौ खा लिये, अब पेटमें हवा बनने लगी। इस हवाका कारण जौ था सो जौ में देखो रूप भी है, रस व स्पर्श भी है। सो जिसके कारणमें चारों गुण है उसके कारण जो बनता है उसमें यदि एक नजर न आया तो, इसके माने यह नहीं कि यह है, और यह नहीं है, उसमें चारो गुण हैं। यह सब वर्णन पुद्गलका है जिससे भिन्न हम अपनेको निरखते हैं।

मैत्रीभंगका कारण व अहितपनेका परिचय—यदि किसी मित्रकी मित्रता तोड़ना है, तो यह अन्दाज होते ही कि यह मित्र अब मेरे कामका नहीं है, उससे अहितपना जानकर हम दोस्ती तोड़ देते हैं। दोस्ती हम रात दिन पुद्गलोंसे करते चले आये है, उन पुद्गलोंको हटाना है तो यह समझ लेना आवश्यक होगा कि पुद्गल मेरे

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

हितरूप नहीं है। क्या पुद्गलों में कोई ऐसी गुंजायश है कि वे मेरे कभी हो सकें। क्या पुद्गल मेरा सुधार बिगाड़ कर सकते हैं ? क्या ये पुद्गल मुझे शरण हो जायेंगे ? ये सभी बातें विश्वास में आना चाहिये। पुद्गलोंसे जो पुरानी मित्रता है, पुराना संग है, अनादि काल से यह मित्रता चली आरही है ये सब समझमें आते है परन्तु इनमें कुछ तत्त्व है नहीं। इनसे मेरा कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। ये तो अपने आपमें ही विराजमान अपने आपमें ही परिणम रहे हैं। मैं तो अपनेमें ही रहकर एकांकी नाटक अपनी ओरसे कररहा हूं। यदि घड़ी सुन्दर है तो कहीं घड़ी बेचारी अपनी जगहसे उठकर मेरे दिलको कोई धक्का नहीं देती, मुझे हिलाती नहीं, पर हम ही घड़ीके बारेमें कल्पनाएँ करके लट्टू हो रहे हैं। घड़ीकी हमसे कोई बात नहीं होती, हम ही कल्पना बनाकर अपने आपमें खुश होरहे है, प्रेरित अथवा खुश होनेमें यह घड़ी निमित्तभूत भी नहीं है, वह तो एक आश्रयभूत पदार्थ है। जिसे नोकर्म भी कह सकते है।

निमित्त व आश्रय—जितने रागादिक परिणमन होते हैं उनका निमित्त कर्म-विपाक है। कर्म भी उनका निमित्त नहीं, उदयागत कर्म निमित्त है। पुद्गल द्रव्यका निमित्त पाकर यह रागरूप परिणमन होता है। रागरूप परिणमन भी इसी विधि-पूर्वक होता है कि इसको कुछ न कुछ आश्रय होवेगा ही इस कारण जब कर्मोदयका निमित्त पाकर यह आत्मा रागरूप परिणमन करती है तो उसका रूपक क्या बनता है ? उसका रूपक परको आश्रय बना कर विकल्परूप बनता है। यदि ज्ञानरूप परिणमन है तो ये बाह्य पदार्थ कितने ही बने रहें उससे राग नहीं हो सकता।

आश्रयकी अनियमितता एवं दृष्टान्त—भैया ! दृष्टान्त बहुत विख्यात है कि कोई वेश्या गुजर गई थी। लोग उसको जलानेके लिए ले जारहे थे। उसे देखकर कामी पुरुष तो यह ख्याल करते थे कि अगर अभी और यह जीवित रहती तो मैं और अनुराग करता, पर ज्ञानी यह सोचता है कि चौरासी लाख योनियोंमें भ्रमण कर बड़ी कठि-नाईसे मनुष्यभव इसने पाया और दुर्लभ नरजन्मको यों ही व्यर्थ गमा दिया। वेश्या है तो क्या हुआ, संज्ञी पंचेन्द्रिय तो है, किसी समय पतित भी सम्हलकर ज्ञाता बन सकता है। इस जीवने श्रेष्ठ मनुष्यभव पाया, पर मनुष्यभव पाकर भी अपने जीवनको व्यर्थ गवाँ दिया। कुत्ते व स्याल सोचते हैं कि यह तो चली गयी, इसको लोग आगमें फूंके डालते हैं। यदि इसे न जलायें तो हमारा १५-२० दिनका भोजन बन जायगा। ये वृथा ही इसे जलानेके लिये ले जारहे है। इस प्रकारकी विविध कल्पनाएँ करते है ये सब विचित्र कल्पनायें क्यों हुई ? यों हुई कि योग्यता व कर्मविपाक जुदा-जुदा है। वेश्या तो मात्र आश्रयभूत पदार्थ है। इस प्रकरणमें जिन पुद्गलोंसे मोह हटाना है उन पुद्गलोंकी दो चार गाथावोंमें चर्चा चल रही है।

सर्व भौतिकोंमें रूपरसगंधस्पर्शमयता—भैया ! जितने भी पुद्गल होते हैं वे रूप,

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

रस, गंध स्पर्श इन चारों गुणोंसे तन्मय होते हैं। इस सम्बन्धमें न्याय दर्शन यह कहता है कि पृथ्वीमें रूप, रस, गंध स्पर्श ये चारों होते है किन्तु पृथ्वीमें मुख्य है गंध और जलमें गन्ध नहीं होती रस, स्पर्श और वर्ण ये तीन होते है, उनमें भी रस मुख्य है। कोई जल दुर्गन्ध देने लगता है तो उस दुर्गन्धको जल नहीं देता है, किन्तु जलमें जो पृथ्वीके पुद्गल है वे सड़ते है उनकी दुर्गन्धि होती है और अग्निमें दो गुण हैं स्पर्श व रूप; उसमें भी रूपकी मुख्यता है अग्निमें गंध नहीं, रस नहीं, क्योंकि अग्निका रस तो किसीने चखा ही नहीं और गंध भी नहीं है। कभी किसी जलती अग्निमें गंध भी विशिष्ट आती हो तो यह ईंधनकी गंध है। जैसे कपड़ा जलता है तो झट कहते हैं कि उन्नाद आ रही है अर्थात् कपड़ेकी गंध आरही है। तो वह अग्निकी गंध नहीं है वह पृथ्वीकी गन्ध है। कपड़ा पृथ्वी है। जितनी पिण्डात्मक चीजें है सब पृथ्वी हैं। हवामें केवल स्पर्श है। हवामें गंध नहीं, रस नहीं, कभी हवामें गंध भी आती है तो वह हवाकी गंध नहीं है, वह गंध है पृथ्वीकी। पृथ्वीके छोटे-छोटे स्कंध हवाके साथ आते हैं और उनसे गंध आती है। एक दर्शनमें कहा है कि पृथ्वीमें गंध, जलमें रस, अग्निमें रूप व वायुमें स्पर्श ही है जैन सिद्धान्त यह कहता है कि चाहे हवा हो, अग्नि हो, जल हो, पृथ्वी हो, चूंकि ये पुद्गल हैं सो इनमें चारों गुण पाये जाना आवश्यक हैं।

गुणोंमें मात्र व्यक्त अव्यक्तिका भेद—किसीमें किसी गुणकी पर्याय अव्यक्त है और किसीमें किसी गुणकी पर्याय अव्यक्त है। जैसे चौकी है जमीन है, भींट है, कागज है ये पृथ्वी कहलाते हैं। पेड़ है, यह शरीर है अपना, ये सब भी पृथ्वी कहलाते है, पिण्डात्मकदृष्टिसे, भूतचतुष्टयकी छटनीसे। लोक कहते है ना, मर जानेके बाद कि लो यह मिट्टी हो गई या मिट्टीमें मिल गयी। ये पुद्गल हैं। इन पृथ्वीरूप पुद्गलोंमें चारों चीजें व्यक्त है। इसमें रूप भी नजर आता है, गंध भी नजर आता है रस व स्पर्श भी समझमें आता है। जलमें गंध अव्यक्त है और रूप तो सामने से दिखता है। यह सफेद जल है, यह नीला जल है और रस तो प्रधान गुण हैं। जलमें रस गुण तो व्यक्त है और बाकी गुण रूप, गंध और स्पर्श अव्यक्त हैं कोई कुछ व्यक्त भी हैं। अग्निमें दो गुण अव्यक्त है और दो गुण व्यक्त है, अग्निमें गन्ध और रस ये दो अव्यक्त हैं, प्रकट नहीं हैं और दो व्यक्त हैं—रूप और स्पर्श। हवामें स्पर्श तो व्यक्त है हवा लगती है और बाकी तीन गुण अव्यक्त हैं। व्यक्त और अव्यक्तमें अन्तर रहता है। पर जो पुद्गल होते हैं उनमें चारों गुण ही हैं। ऐसा जैन सिद्धान्तमें बताया है।

अव्यक्त होनेपर भी गुणके सद्भावमें युक्ति—प्रश्न-यह तो तुम्हीं कहते हो कि इनमें गुण व्यक्त तो नहीं है, मगर हैं जरूर। कोई युक्ति बतलाईये। जिससे समझमें आवे कि इसमें भी यह गुण पाया जाता है, मगर है अव्यक्त ? सो उत्तरमें कहते हैं, उपादानकारणसदृशं हि कार्यं भवति। चूंकि कार्य उपादान कारणके सदृश होते हैं सो

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

जो गुण उपादानमें होते हैं वे गुण उसके कार्यमें भी होते हैं।

जलमें अव्यक्त गुणोंकी सिद्धि – पृथ्वीमें तो वे सभी चारों गुण हैं। प्रायः सभी लोग मानते हैं और जलकी यह बात है कि जलमें एक गुण अव्यक्त है। कौनसा ? गंध, किन्तु जलकी उत्पत्तिका एक यह भी सिद्धान्त हैं कि चंद्रकान्त मणिसे जल उत्पन्न होता है। और चंद्रकांत मणि है पृथ्वी, अथवा कुछ भी सही, रूप, रस, गंध, स्पर्श इन चारोंका पिंड है, जिसमें चारों गुण व्यक्त है उस चंद्रकांतमणिसे जल झरता है तो उसमें भी चारों गुण हैं क्योंकि यह न्याय है कि जितनी भी क्रियायें होती हैं वे उपादानका अनुविधान करती हैं। जैसे घड़ा बना तो मिट्टीका जितना गुण है वह वह घड़ेमें आगया। जो उपादान है, जिससे कि वह चीज निकली है उसमें जो बातें पायी जातीं हैं वे सब उनके कार्यमें भी पायी जाती हैं। और ये चीजें निमित्त और उपादानका निर्णय देती हैं। निमित्त वह कहलाता है कि जो क्रियारूप न परिणमे जिसमें उपादानके गुण न आवे, और जो अपने गुण उपदानको नहीं दे सके फिर भी जिसकी उपस्थितिमें ही कार्य हो क्रियारूप तो उपादान ही परिणमता है, पर क्रियारूप परिणमते हुएमें निमित्तकी सन्निधि सहायक है, याने अनुकूल पदार्थकी उपस्थितिका निमित्त पाकर उपादान अपना परिणमन बनाता है इसी सम्बन्धको सहायता समझें। कोई पदार्थ अपना गुण पर्याय या द्रव्यादिक कोई अंश परमें देदें ऐसी सहायता नहीं करते किन्तु निमित्त सम्बन्ध देखकर सहायताका उपचार किया गया है अर्थात् परका निमित्त पाकर उपादान विभावरूप परिणम जाता है। तो चंद्रकांत मणिमें चारों गुण व्यक्त है और उस चंद्रकांत मणिसे जल उत्पन्न होता है सो उसमें भी चारों चीजें अवश्य हैं। अब उस जलमें एक गुण अव्यक्त और तीन गुण व्यक्त हो गये।

अग्निमें अव्यक्त गुणकी सिद्धि—भैया! जैसे जलमें चारों गुण हैं इसी प्रकार अग्निकी बातें देखो अग्नि बाँसोंसे भी उत्पन्न होती है। बाँसकी रगड़से अग्नि उत्पन्न हो जाती है, सो उस अग्निका साधन बाँस हुआ और उस बाँसमें चारों गुण व्यक्त हैं रूप, रस, गंध और स्पर्श। जिसमें चारों गुण पाये जाते हैं ऐसे बाँससे उत्पन्न हुई जो अग्नि है, उसमें भी ये चारों गुण होने आवश्यक है सो होते ही हैं। उनमेंसे अग्निमें गंध और रस ये दो अव्यक्त है और रूप व स्पर्श व्यक्त है और मुख्यतासे तो रूप व्यक्त है।

वायुमें अव्यक्त गुणकी सिद्धि—वायुकी बात देखो। ये जो जवा होते हैं जो खाये जाते हैं, उनसे वायु बनती है। वह वायु ऐसी ही होती है जैसी कि चलने वाली वायु लगती है। जौमें चारों गुण पाये जाते हैं रूप, रस, गंध और स्पर्श। अतः ये चारों गुण वायुमें भी पाये जाने आवश्यक हैं। पर वायुरूप कार्यमें एक गुण है व्यक्त और तीन गुण हैं अव्यक्त। समस्त कार्य उपदान के अनुविधायी हैं, इस युक्तिसे यह बात सिद्ध हुई है कि जितने भी पुद्गल हैं उन सबमें रूप, रस, गंध

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

और स्पर्श ये चारों गुण पाये जाते हैं। किसी पुद्गलमें कोई गुण व्यक्त है और कोई गुण अव्यक्त है सो यह उनके परिणामकी विभिन्नताका परिणाम है।

पर्यायविचित्रता स्वभाववैचित्र्यका अहेतु—यदि ऐसी विचित्रताके कारण नित्य द्रव्यके स्वभावमें विघात हो जाय तो सबका अभाव हो जायगा, किन्तु ऐसा नहीं हो सकता। ऐसा नहीं है कि हवामें तीन गुण अव्यक्त हो गये तो हवा जिन द्रव्योंसे बनी है उन द्रव्योंके स्वभावमें भी गुणोंका अभाव आ जाय, पर्यायकी विभिन्नता होनेसे स्वभावमें अन्तर नहीं होता है आत्मामें देख लो पर्यायोंका कितना अन्तर है ? रागद्वेष बढ़ते हैं, मोहका नाच होता है, क्षोभोंकी विचित्रताका लेखा क्या, आनन्दका परिणमन कभी सुख रूप है, कभी दुःखरूप है, कभी आनन्द है, परकी ओर झुकाव है, इतना मलिन परिणमन होरहा है पर मलिन परिणमन होकर भी इससे आत्माके स्वभावमें क्या अन्तर हो जाता है? अन्तर नहीं है। जो पदार्थ सत् है, जिस स्वभावरूप है वह सभी पर्यायोंमें उसी स्वभावरूप रहता है चाहे कितना ही विचित्र, विरुद्ध विभाव हो जाय, चाहे कितना ही द्रव्योंमें सांकर्य हो जाय, वहीं जीव है, वहीं पुद्गल है, वहीं धर्म, अधर्म, आकाश और काल भी है तो भी किसी भी द्रव्यके स्वभावमें परिवर्तन नही होता।

एकक्षेत्रावगाहरूप बन्धनमें स्वभावघातका निषेध—कितने ही पुद्गलोंका एक क्षेत्रावगाहका बंधन भी है। एक क्षेत्रावगाह कैसा कि जैसे जो प्रदेश आत्माका है वह समस्त प्रदेश कर्मोंसे पूरित है, सर्व परमाणुओंसे पूरित है। दूध और पानीकी तरह नहीं दूध और पानी एक क्षेत्रावगाहमें नहीं है। यह मोटा दृष्टांत लिया जाता है कि दूध और पानी एक क्षेत्रमें है, वह एक क्षेत्रमें नहीं है। दूधके छोटे-छोटे अणुस्कंधकी बूँदें न पानीमें प्रविष्ट हैं और न पानीकी छोटी छोटी बूँदें दूधमें प्रविष्ट हैं। दूधमें दूध है और पानीमें पानी है। यदि एक गिलासमें दूध व पानी एक कर दिए गये हैं तो लोग मोटे रूपमें कहते है कि गिलासमें दोनोंका एक क्षेत्रावगाह है, मगर उनकी एक क्षेत्रावगाह नहीं है, प्रदेशभेद है वहाँ। एक क्षेत्रावगाह तो यहां जीव व कर्मका है। ये छहों द्रव्य एक जगह अवस्थित है वहाँ भी एकक्षेत्रावगाह है। पुद्गलमें एक क्षेत्र वहुत सूक्ष्म उन परमाणु स्कंधोंमें होता है जहाँ एक प्रदेशमें अनेक परमाणु ठहरे हुए हैं। उन परमाणुओंका एक क्षेत्रावगाह है किन्तु दूध पानीमें दूधकी यूनिटमेंयाने विन्दुमें पानीकी यूनिट-(बिन्दु) नहीं है और पानीकी यूनिट दूधमे नहीं हैं तथा दूध-दूध रूपमें है और पानी-पानी रूपमें है। इस तरह उनका परस्परमें क्षेत्रावगाह नहीं। सूक्ष्मतासे देखो दूधकी नन्हीं-२ बूँद जो कि पतली सींककी नोकमें भी नहीं आसकती उतनी बूँद भी पानीमें नहीं मिली है। और न उतनी भी पानीकी बूँद दूधमें मिली है। पर इस शरीर और कर्मका आत्मामें एकक्षेत्रावगाह है। जो प्रदेश जीवका है वही कर्मका है ऐसा एक क्षेत्रावगाह भी है तो भी वहाँ जीवोंके स्वभावका बिघात नहीं हो सकता।

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

जीवतो स्वभावमें ही है, अगर द्रव्यके स्वभावका प्रतिघात होने लगे तो यह द्रव्य टिक ही नहीं सकता, आज कुछ न दीखता। यह कभीका विप्लव हो जाता। सो किसीका कोई गुण व्यक्त है और कोई गुण अव्यक्त है। इससे उन चीजोंका मूलभूत जो पुद्गल द्रव्य है उसके स्वभावमें विघात नहीं होता। अर्थात् प्रकृतमें पुद्गलका स्वभाव है रूप, रस, गंध और स्पर्शके चतुष्टयका, सो उसमें अन्तर नहीं होता कि कोई गुण कभी न भी हो, इससे शब्द पुद्गलकी पर्याय ही है ऐसा निश्चय करो। शब्द गुण नहीं है और गुणपर्याय भी नहीं है। अगर शब्द कोई गुण होता तो एक रूप रहता और गुण-पर्याय होता तो कुछ न कुछ शब्द सब अणुओंमें सदाकाल बना रहता, किन्तु ऐसा है कहाँ। इस कारण शब्द पुद्गलद्रव्यकी व्यञ्जन पर्याय है।

अब पुद्गल द्रव्यके गुणों व पर्यायोंका वर्णन करके बाकी बचे हुये जो शेष अमूर्त द्रव्य हैं उन सब द्रव्योंके गुणोंको बतलाते हैं। इसमें दो गाथाएँ एक साथ चलेंगी इसे "युगल" बोलते हैं।

आगासस्सवगाहो धम्मद्दव्वस्स गमणहेदुत्तं।
धम्मेदरदव्वस्स गुणो पुणो ठाणकारणदा ॥१३३॥
कालस्स वट्टणा से गुणोवओगोत्ति अप्पणो भणिदो।
णेया संखेवादो गुणा हि मुत्तिप्पहीणादो ॥१३४॥

आकाश द्रव्यका गुण है अवगाह। धर्म द्रव्यका गुण गमनहेतुत्व है। अधर्म द्रव्यका गुण स्थितिहेतुत्व है। काल द्रव्यका गुण वर्तना है। आत्मद्रव्यका गुण उपयोग है। इस प्रकार अमूर्त पदार्थोंके संक्षेपसे गुण कहे गये।

आत्माके मोहका विषय—आत्माके अतिरिक्त अन्य द्रव्योंके वर्णनका प्रयोजन यह है कि हमें जिन द्रव्योंसे पृथक् होना है उनका भी तो परिज्ञान आवश्यक है। उन पर पदार्थोंमें से यह जीव धर्मद्रव्यसे मोह नहीं करता, अधर्मद्रव्यसे मोह नहीं करता, कालद्रव्यसे मोह नहीं करता, पुद्गलद्रव्यसे मोह करता है और कुछ रूपमें आकाश द्रव्यसे मोह करता है। इसे क्षेत्रावगाहका मोह हो जाता है। असलमें आकाशका मोह कोई नहीं करता, किन्तु जितने आकाशमें मोह करने योग्य चीज उसको कल्पनामें आगयी, उतने आकाशके क्षेत्रमें मोह करता है, तो वह वस्तुतः क्षेत्रमें मोह नहीं करता है वह मोह पुद्गलमें करता है। अब्बल तो यह जीव पुद्गलमें मोह करता है जीवमें भी मोह करता है तो जीवके विभावपर्यायमें। तो जीवके बारेमें-जीवकी जो यह प्रकृति है, कहीं कहीं इसके स्वरूपरक्षणकी रुचिमें इसको पुद्गल ही कह बैठे। ये सब पुद्गल हैं, अजीव हैं। समयसारमें तो कहा ही है कि ये सब जीव नहीं हैं। नारकी, हैं मनुष्य हैं, तिर्यञ्च हैं, क्रोध है, मान है आदि ये सब जीव नहीं हैं। अर्थात् जीव तो एक ज्ञानस्वरूप है, ज्ञायकस्वभाव है उस ज्ञायकस्वभावके अतिरिक्त जितने भी उपाधि

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

और औपाधिक भाव हैं वे सब पुद्गल हैं पौद्गलिक हैं। अर्थात् पौद्गलिक कर्मके विपाकमें उत्पन्न हुए जितने भी भाव हैं वे सब पौद्गलिक हैं।

मोहका विषय पौद्गलिक तत्त्व—भैया ! तात्पर्य यह है कि जीव जितना भी राग करता है यह पुद्गलसे राग करता है। और, फिर कोई ज्यादा बुद्धिमान आदमी हो तो वह आकाश, धर्म, अधर्म इत्यादिसे भी मोह कर लेता है सो वह मोह विकल्पका मोह है। जो जानता ही नहीं है, जिसे खबर ही नहीं है वह आदमी धर्मादिक द्रव्यों का उपयोग ही क्या ला सकता है, उनका तो अज्ञानरूप व्यामोह है। मगर जो शास्त्र जानने वाले हैं, बुद्धिमान लोग हैं, उनको धर्म, अधर्म आकाश, कालमें मोह हो जाना यह कभी हो सकता है। धर्म, अधर्म, आकाश और कालके सम्बन्धमें जो जानकारी की जाती है, जो विकल्प किए जाते हैं उन विकल्पोंको माना कि यह मैं आत्मा हूँ। सो उन विकल्पोंमें जो आत्मत्वबुद्धि है वह आत्मत्वबुद्धि मोह कहलाता है, और इसी कारण देखा होगा कि आकाश आदिकी चर्चा अगर दो व्यक्ति कररहे हैं और उनमें मतभेद हो जाय स्वरूपके बारेमें, तो उनसे लड़ाई तक हो जाती है, गाली गलौज भी हो जाती है एक दूसरेको कहे कि तू मिथ्यादृष्टि है, तू अज्ञानी है, तेरी समझमें नहीं आता है। इतनी गाली हो जाना ; एक धर्म, अधर्म, आकाशकी चर्चा करनेमें विवाद खड़ा हो जाना और लड़ाईका रूप आ जाना, यह सब क्या है ? आकाश आदिका ही मोह है, जिसके कारण विवाद खड़ा हो गया। लेना देना कुछ नहीं है, भैया ! आकाश तो अमूर्त है मगर उसकी भी चर्चा करनेमें बड़ा झगड़ा खड़ा हो जाता है। यह क्या है ? मोहका परिणाम है। यह विकल्प भी तो पौद्गलिक है।

जानकारीके मोहका परिणाम ज्ञान बहुत गहरी चीज है उसके होते हुए ज्ञानकी थाह लेना बहुत कठिन है। इसी तरह मोहकी थाह निकाल लेना भी कठिन है। मोह रह जाय और मोही अपनेको सम्यग्दृष्टि मानता रहे, ऐसा हो सकता है उस मोहकी जड़का वह पता नहीं निकाल सकता है। वस्तुके स्वतन्त्र स्वरूपकी चर्चा करनेमें कोई मतभेद हो जाय तो कहो उस मतभेदके आधारपर गाली गलौज या लड़ाई झगड़ेका रूप खड़ा हो जाय। क्यों ऐसा हो गया ? मोह होनेसे अर्थात् वस्तुके सम्बन्धमें जो जानकारी है, ऐसा विकल्प है, उस विकल्पमें आत्मबुद्धि लगी है। उस विकल्पके खण्डन होनेको अपना खण्डन मानते हैं मोहीजन। जैसे मोही मिथ्यादृष्टि जीव शरीरके नष्ट होनेको अपना नाश मानता है इसी प्रकार पढ़े लिखे मोहीजन अपनी समझमें आया हुआ जो विकल्प है उस विकल्पके खण्डित होते समय अपनेको ही खण्डित होता हूँ ऐसा समझते हैं। इन्हीं कारणोंसे कटु विवाद खड़ा हो जाता है। जरा गम खा जानेमें तो बड़ी कठिन समस्या भी हल हो जाती है। भैया ! चर्चामें यदि अपनी बात नहीं रह पाती है तो न रह पाने दो, वह तो विकल्प है, अध्रुव है, क्लेश

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

देने वाली चीज है। इस विवादमें यदि लोगोंकी निगाहमें सच्चा तत्त्व नहीं आता हो न आने दो, उपेक्षा करदो। शान्तिमें ही तो लाभ है।

मात्र विकल्पका ही मोह—कभी-कभी अपनी बड़ी खराब परिस्थिति हो जाती है तो वहाँ भी हम अपने आपके विकल्पोंसे ही अपने बाधक बने हुए हैं। दूसरे लोग समझाते हैं, बताते हैं फिर भी समझमें नहीं आता है। कोई कुछ समझाता है भी तो किसी दृष्टिसे यह ठीक है ऐसा मानकर एक सान्त्वना नहीं दे सकता कि भाई इसकी भी बात ठीक है, इस दृष्टिसे ठीक है हाँ ऐसा तो है कुछ। दृष्टियाँ लगाकर उसकी बातको ठीक कहें और अपने विकल्पोंका खण्डन होते समय धैर्य बनाये रहें यह कितना कठिन रहता है, तो मोही जनोंको बातका भी मोह है, और विकल्पोंका भी मोह होता है। इन्हीं विकल्पोंके मोहमें वे सब द्रव्य आ जाते हैं धर्म द्रव्यका क्या मोह है? जो विकल्प किया है उस विकल्पमें मोह है इसीको धर्म द्रव्यका मोह कहते हैं। भैया! लोक व्यवहारमें लोग बोलते भी हैं। जैसे कोई केलेवाला ठिलियामें केले बेचता है, बोलता है कि केले खरीदो तो मकान पर बैठे हुए आदमी जिनको केलोंकी जरूरत है पुकारते है कि ऐ केला, केलेवाले नहीं कहते। ओ केला! यहाँ आओ, ऐसा कहते हैं कि नहीं भैया! और वह केला बेचने वाला समझ जाता है तभी वह केले बेचने वाला ठेलिया से नहीं कहता कि वहाँ जा। उसने उसकी भाषाको समझ लिया। उसके भाव उसने समझ लिये। केले देनेवाला केले देने लगता है तो जैसे उस केला और केलावाले में अभेद हुआ, इसी तरह धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य तथा मूर्त पदार्थ व अमूर्त पदार्थके बारेमें सोचो तो जो विकल्प हुए उन विकल्पोंमें अहंबुद्धि हो तो यही उपचारसे उस विषय का मोह कह लाया। धर्म द्रव्यके विकल्पमें मोह होना ही धर्मादिक द्रव्यका मोह है। साक्षात्में तो अमूर्तमें क्या, मूर्तमें भी मोह नहीं होता।

विकल्पकी रुचि महासंकट—द्रव्यके सम्बन्धमें जो हमने जानकारी बनायी उसमें राग करना, विकल्प करना, मैं बुद्धिमान हूँ, यह खूब समझता हूँ, यह ठीक है यही मैं हूँ, ऐसा स्पष्ट न कहकर भी मौज मानना विकल्पोंसे अपनेको व्यवस्थित समझना ये सब बातें भैया, मोहकी ही तो हैं। नहीं तो उन विकल्पोंसे अपने आपपर संकट समझना चाहिए था। ये विकार विकल्प ही तो बड़े संकट हैं, कितने विकट संकट छाये हैं, कैसे-कैसे रागद्वेषके विकल्प, कैसे अन्य तरहके विकल्प, कितने संकट हैं। इन संकटोंमें रहते हुए भी इन संकटोंके बीच, नीचे, मर्ममें, निज ज्ञायकस्वभाव गुप्त है, सुरक्षित है। इन विकल्पोंसे हटें और ज्ञायक स्वभावकी ओर लगें, ऐसा भाव होना चाहिए था। पर, ऐसा भाव न होकर हम विकल्पोंमें एकमेक हो जाते हैं। यह क्या है? मोह। वैसे तो धनादिका भी मोह कोई नहीं करता। धनका मोह करना भी औपचारिक कथन है। कोइ भी पुरुष हो, जो कि धनार्थी है, वह धनविषयक विकल्पमें

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

मोह करता है धनमें मोह नहीं करता है। जो कहते हैं ना, कि इसको धनका मोह है उसका अर्थ मानना चाहिए कि वह धनको विषय बनाकरके जो ये विकल्प बनाए हुए हैं उन विकल्पोंसे उसे मोह है, धनसे मोह नहीं है। असली स्थिति यह है।

विकल्पमें ही मोहकी संभवता—जैसे किसीके प्रति कहा जाय कि इसका कुटुम्ब में मोह है, तो यह बात सत्य नहीं है। वह कुटुम्बमें मोह नहीं कररहा है। मोह की बात कररहा है अर्थात् कुटुम्बको विषय बनाकर जो उसने अपनेमें विकल्प किये हैं उन विकल्पोंमें उसे मोह है और उन बिकल्पोंके मोहका उपचार विषयमें किया गया है। यह बात तो मौलिक पदार्थोंमें भी इसी तरह है और इसी तरह पढ़े लिखे लोग जो धर्म, अधर्म अस्तिकायका विचार बनाते हैं, बिकल्प बनाते हैं उन बिकल्पोंमें मोह, करें तो उसका भी उपचार धर्म द्रव्यमें करना चाहिए। इस तरह यह जीव करता तो है मोह विकल्पोंमें मगर जो भी विषय होते हैं उन सबमें मोहका उपचार किया जाता है। हमें जिन पदार्थोंसे हटना है उनकी यह चर्चा चलरही है। अर्थात् ज्ञानानन्दघन निज आत्मद्रव्यके अतिरिक्त सब शेष द्रव्योंकी चर्चा की जारही है।

द्रव्योंके विशेष गुण—आकाशका तो गुण समस्त द्रव्योंको अवगाह देना है धर्म द्रव्यका गुण जीव और पुद्गलके गमनका हेतु होना है अधर्म द्रव्यका गुण जीव और पुद्गलके ठहरनेका कारण होना है, काल द्रव्यका गुण सब द्रव्योंके बर्तनाका कारण होना है और आत्माका गुण उपयोग है, इस प्रकार जितने अमूर्त पदार्थ हैं उन पदार्थोंके संक्षेपमें गुण बताये हैं। मूर्त पदार्थका गुण रूपरसगन्धस्पर्शमयता है जिसका वर्णन पहिले हो चुका है। यह सब द्रव्योंके विशेष गुणोंका वर्णन है।

द्रव्योंके सामान्य गुण—सामान्य गुण तो ६ हैं, जो कि सब पदार्थोंमें पाये जाते हैं : (१) प्रत्येक पदार्थ हैं, (२) अपने स्वरूपसे हैं परके स्वरूपसे नहीं हैं। (३) प्रत्येक समय परिणमते रहते हैं (४) अपने ही स्वरूपमें परिणमते है परके स्वरूपमें नहीं परिणमते है। अपने ही गुणोंमें परिणमते है परके गुणोंमें नहीं परिणमते हैं और अपने ही प्रत्येक गुण अपने उसही गुणके रूपमें परिणमते है, अपने दूसरे गुणरूप नहीं परिणमते हैं। (५) वे अपने प्रदेशोंमें हैं। (६) किसीका किसी ज्ञानके द्वारा ज्ञेय है। यह सभी द्रव्योंके गुणोंका वर्णन है।

परमार्थसे आकाशादिकी विशेषता—आकाश, द्रव्यका असाधारण गुण क्या है ? एक साथ समस्त द्रव्योंके साधारण रूपसे अवगाह होनेका कारण बनना। यह आकाश द्रव्यका गुण है जो देखा जाता है या होता है उसको गुणरूपसे यहाँ बताया है। आकाश द्रव्यका काम सब द्रव्योंको अवगाह देना है। पर, परमार्थसे आकाश द्रव्यका काम क्या है कि अपना बर्तन करे अपना परिणमन करे। इसी प्रकार धर्म, अधर्म, आकाश व कालका भी कार्य अपना परिणमन है।

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

मन है। अन्य पदार्थोंके किसी कार्यमें निमित्त हो जाने रूप लक्षण बताना औपचारिक वर्णन है। पुद्गलको छोड़कर शेष द्रव्य सब अमूर्त हैं और जीव भी अमूर्त है पर जीव तो स्वयं यही है जो जान रहा है इस कारण अपने लक्षणका तो पता बन जाता है पर आकाशादि तो भिन्न है, अमूर्त है इस कारण अपने अनुभवमें नहीं आता है। दूसरेका जीव भी अपने अनुभवमें नहीं आता किन्तु अपना जीव अपने अनुभवमें आता है अपना परिचय होनेपर समानताकी बात सोचकर दूसरे जीवोंका भी ज्ञान होता है। तो जैसे अमूर्त पदार्थ आकाश, धर्म, अधर्म, काल है और उनका हमें परिचय नहीं होता इसी तरह हमें सब जीवोंका भी परिचय नहीं होता। किन्तु, खुदका परिचय यों विशद हो जाता है कि खुद जीव है ना, वह अमूर्त है तो भी स्वयं है और स्वयंमें परिणमता है तथा स्वयंके परिणमनका ज्ञाता है इस कारण स्वयं स्वयंके परिचयमें आता है। अमूर्तका, परजीवका तो हमें परिचय भी नहीं मिलता पर निजके नाते हमें अपना परिचय मिलता है। वस्तुतः हमें मूर्तका भी परिचय नहीं मिलता।

अमूर्तके इन्द्रिगम्यताका भ्रम.व—भैया ! अमूर्त पदार्थोंको हम इन्द्रियों द्वारा जान नहीं सकते। हमारे जाननेके साधन तो अभी इन्द्रियाँ हैं। इस कारण हमें अमूर्तोंका विशेष परिचय नहीं। उनके कार्योंको समझकर या थोड़ा बहुत किन्हीं युक्तियोंसे सोचकर हम अमूर्त पदार्थोंके बारेमें ज्ञान किया करते हैं।

आकाशका परिचय—चीज कहाँ रखी जाती है किस जगह है ? ऐसा चिन्तन करनेपर अवगाहनका हेतुभूत जो है वह आकाश है ऐसा कुछ मालूम पड़ता है। सो अवगाहको आकाशमें देखकर आकाशका लक्षण अवगाहनहेतुत्त्व कहा गया है। इन अमूर्त पदार्थोंमें से एक आकाश ऐसा पदार्थ है कि जिसके बारेमें हम विशेष अनुमान कर सकते हैं धर्म, अधर्म और काल की अपेक्षा। कुछ ऐसी पहलेसे भावना पड़ी है, कि यही तो है आकाश जो पोल है, जहाँ कुछ नहीं है। ऐसी पहलेसे भावना बनी आरही है तो हमें आकाशका कुछ अधिक अनुमान हो जाता है इन अमूर्त पदार्थोंमें, इस आकाशका विशेष गुण क्या है ? एक साथ समस्त द्रव्योंका साधारण अवगाहहेतुपना होना। यह अन्य द्रव्योंमें असम्भव है। अन्य द्रव्य अवगाह नहीं देते, इस कारणसे अवगाहनका हेतुपना होना इस आकाशका निश्चय कराता है।

धर्म द्रव्यका परिचय—धर्मद्रव्यका विशेष गुण क्या है ? गतिपरिणत समस्त जीव पुद्गलमें एक समयमें गतिका साधारणहेतुपना होना है। साधारण शब्द सब जगह दिया है। धर्मद्रव्यका लक्षण सामान्यरूपसे गमनहेतुपना है,गमन गोल हो, चौकोर हो, इन कामोंका कारण धर्म द्रव्य नहीं है, किन्तु सामान्यगतिका कारण है, वह गति चाहे निमित्तप्रसंगमें किसी रूप हो। यह विशेषगुण धर्मद्रव्यका यों कहलाता है कि यह गुण अन्य द्रव्योंमें असंभव है, ऐसा जो गमनहेतुपना लक्षण है यह धर्म द्रव्यका

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

अवगम कराता है। ऐसी भी बात सोची जाय कि समस्त पदार्थ जितनेमें हैं अर्थात् लोकाकाशमें है, जितने आकाशमें ये सब द्रव्य पाये जाते हैं उतने आकाशसे बाहर ये द्रव्य नहीं है, कुछ ऐसा होना प्राकृतिक है कि सबके सब कहीं न कही तक हैं तो उस अवस्थामें अवधिसे दूर वे नहीं हैं। तो कोई इसमें बाह्य निमित्त है या कारण होना चाहिये ना, ऐसा अनुमान करके यह बात जानी जाती है कि ऐसी कोई अमूर्त चीज जो उसके बाहर नहो, लोकाकाशमें ही हो वही गमनका कारण है ऐसे पदार्थका नाम धर्म द्रव्य सिद्धान्तमें प्रसिद्ध है।

अधर्म द्रव्यका परिचय—अधर्म द्रव्यका विशेषगुण क्या है ? स्थितिपरिणमन-हेतुत्व अर्थात् चल करके ठहरनेके कार्यमें लगे हुए समस्त जीव पुद्गलको एक समय में साधारण रूपसे स्थितिका कारण बनना यह अधर्म द्रव्यका विशेष गुण है। यह अन्य द्रव्योंमें नहीं पाया जाता है। जो-जो द्रव्य अपने परिचयमें हैं उनमें यह खूबी नहीं दिखती है कि वे स्थितिके साधारण निमित्त हो सकें। इसलिए स्थितिहेतुत्व अधर्म द्रव्यका निश्चय कराता है, कुछ-कुछ अन्दाज भी होता है। इसका अवगम कठिन है ऐसी बुद्धि जो आती है वह श्रद्धाकी ओर बढ़ाती है श्रद्धासे हटाती नहीं है जैसे कि कर्मोंकी रचना,निषेकोंकी रचना इनकी परिस्थिति और समय-समयकी व्यवस्थाके वर्णन से, कार्यपरिणतिके दिग्दर्शनके अनुकुल उदयके फिट बैठनेके अवगमसे तीनों लोकमें उनके मापके वर्णनसे इत्यादि अनेक सूक्ष्म तत्त्वके चर्चणसे दुर्गम तत्त्वोंका जब अन्दाज होता कुछ ज्ञान होता है तो सर्वज्ञ आप्तकी और श्रद्धा बढ़ती है। ऐसे यदि आप्त नहीं होते तो कैसे यह ज्ञानपरम्परा रहती। आप्तनिरूपित अधर्मद्रव्य युक्तिगम्य भी है।

यहाँ अधर्म द्रव्यका लक्षण बताया जारहा है कि जीव पुद्गलके एक साथ स्थापनमें हेतुपना अधर्म द्रव्यका लक्षण है।

काल द्रव्यका लक्षण—काल द्रव्यका लक्षण है समस्त शेष द्रव्योंके परिणमनों में समय-समयमें बर्तनमें हेतुपना होना। यह परिणमनका हेतुपना भी कालद्रव्यको छोड़कर अन्य द्रव्योंमें असम्भव है। जो भी अन्य द्रव्य परिचयमें आते हैं उनमें यह विवेषता नहीं नजर आती सो अनुमानित होता है कि परिणमनका जो हेतु है वह काल द्रव्य है। काल द्रव्यके बारेमें आगे गाथा आवेगी और काल द्रव्य का अस्तित्व है इसका वर्णन न्यायशैली व सिद्धान्तप्रतिपादनसे किया जायगा।

जीवका परिचय--जीवका विशेष लक्षण है चैतन्य परिणाम यह जीव भी अमूर्त है अपन जीव हैं स्वयं ना ? इस कारण अपना पता रहता है। देखो भैया स्थूल है द्रव्य कर्म और सूक्ष्म है भाव कर्म। तो भी द्रव्यकर्मका परिचय नहीं हो पाता है और भावकर्म का परिचय होता है क्योंकि भाव कर्म स्वयं की बीती हुई दशा है और द्रव्य कर्म हमसे पृथक् पदार्थ है सो द्रव्यकर्मको किसने समझा कि यह अमुक है द्रव्यकर्म, यह देखली गई

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

कर्मकी गाँठ, ऐसा परिचय क्या किसीने किया ? इस प्रकार कुछ भी द्रव्य कर्मके सम्बन्धमें परिचय नहीं है। यद्यपि कर्मोंको मूर्त कहते है, वे अमूर्त नहीं हैं तिस पर भी हमें द्रव्यकर्मका परिचय नहीं। भावकर्मका परिचय, गुस्सा आ गया, छल कपट घमंड आदि हुआ, इच्छा हुई, विषयवासना हुई इन सब बातोंका पता पड़ जाता है। इसमें बीतने वाली ये बातें है, इसमें तन्मय हैं इस कारण भावकर्मका परिचय अच्छी तरहसे करते हैं, परन्तु द्रव्यकर्मका परिचय नहीं कर सकते हैं। इसका कारण यह है कि द्रव्यकर्म पर है व इन्द्रियग्राह्य नहीं है।

अमूर्तोंमें मात्र मेरी गम्यता—इन अमूर्त पदार्थोंका हम परिचय नहीं कर पाते और अन्य जीवोंका भी परिचय हम नहीं कर पाते, हाँ अपना परिचय जरूर हो जाता है कि यह मैं खुद हूँ, "अहं" यह अहंप्रत्ययवेद्य हूँ, मैं हूं इस प्रकारके ज्ञानसे वेद्य हूँ, मैं अपने आपको समझ लेता हूँ सो जीवका लक्षण है चैतन्यपरिणमन, यह आत्मा आकाशवत् अमूर्त है, अन्तर मात्र आकार और असाधारण गुणका है।

आकाशकी निराकारता—भैया ! आकाशका चिन्ह बताया है समस्त द्रव्योंको साधारणरूपसे अवगाह देनेका निमित्त होना। यह बात अन्य द्रव्योंमें नहीं पायी जाती है क्योंकि अन्य सब द्रव्य असर्वगत है। सब जगह ही नहीं है, उनका आकार है। धर्म द्रव्य है वह ३४३ घन राजू प्रमाण आकारवाला है, अधर्म द्रव्य भी इतना है। जीव है वह अपने २ धारण किये इस शरीरके अवगाहके प्रमाण है या मुक्ति होने पर जिस शरीरसे मुक्ति होती है उसकी अवगाहना प्रमाण है, अरहंत अवस्थामें समुद्घातके समय इससे भी अधिक प्रमाणवाला है पर अधिकसे अधिक प्रमाण वाला यह जीव ३४३ घन राजू प्रमाणका है। इस प्रमाणसे अधिक बिस्तारवाला नहीं हो सकता है। यह प्रमाण लोकपूरण समुद्घातमें होता है तो उन द्रव्योंमें भी आकार है मगर आकाश निराकार है। आकाशके बारेमें यह क्या बताया जा सकता है कि पूर्वमें कैसा आकार है, पश्चिममें कैसा आकार है, गोल है कि चौकोर होगा। अंतमें आकाश का आकार कैसा है ? गोल है कि चौकोर है ? फिर उस कोनेके बाद क्या आकाश नहीं है ? अरे आकाश सर्वगत है इसकी सीमाके बारेमें किसी प्रकारकी कल्पना नहीं की जा सकती है, अवगाहनका सम्पादन करना आकाशका काम है यह लक्षण आकाश का निश्चय कराता है।

धर्मद्रव्यकी सिद्धिमें एक प्रधान युक्ति—धर्म द्रव्यका काम गतिपरिणत समस्त जीव पुद्गलोंको लोकपर्यन्त हमेशा गमनका हेतुपना होना है। यह लक्षण धर्म द्रव्यको प्रसिद्ध करता है, यह लोक पर्यन्त शब्द जो यहाँ पूज्यश्री अमृतचन्द्रजी सूरीने कहा है इससे धर्मद्रव्यके अन्दाजमें विशेष सहयोग मिलता है कि यह व्यवस्था क्यों है कि समस्त द्रव्य कुछ हदतक हैं और उसके बाद ये सब नहीं हैं इसका कोई कारण है ? और

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

वह कारण है लोकाकाशके बाहर धर्मद्रव्यका अभाव। यद्यपि पर पदार्थ अपने-२ में परिणमते हैं और अपने ही कारणसे सब कुछ करते हैं, मगर उन सबके परिणमन की क्रियामें, विकारमें, विभावमें कोई अन्य उपाधि हेतुभूत होता है। कितनी बातें स्पष्ट समझमें आती हैं, कितनी ही नहीं आती है, कोई बात कम समझमें आती है, जो जो बोलनेमें बातें गुजरती हैं जैसे रसोई बनाना, पढ़ना, लिखना, यह करना, वह करना आदि भाव ज्यादा समझमें आते हैं, जीवमें बिकार होना, जीवके परिणमनकी विधि होना इनमें भी युक्ति ठीक समझ जाते हैं कि हाँ कोई निमित्त है पर और सूक्ष्म चीजोंमें, अमूर्त चीजोंमें यह परस्परका ऐसा निमित्त बना हुआ है कि जिसका समझना यद्यपि दुर्गम है पर कुछ न कुछ युक्तिसे ऐसा भान होता है कि कोई चीज है। धर्म द्रव्यको सीधा नहीं कहें कोई किन्तु वैज्ञानिक लोग कहते हैं कि आकाशमें कुछ श्रेणियाँ ऐसी हैं, कोई ईथर जैसा होता है कि जिसके होनेके कारण चीजें चलती है, शब्द चलते है जो भी गति करनेवाली चीजें हैं वे चलती हैं। ऐसा अंदाज तो वैज्ञानिकोंको भी हो गया है। तो यहाँ आचार्य देवने धर्म द्रव्यका वर्णन किया है कि वह धर्म द्रव्य समस्त जीव पुद्गलोंमें गतिका कारण है लोक पर्यन्त ; लोकसे आगे नहीं।

गतिहेतुत्वका अन्य द्रव्योंमें अभाव—यह गतिहेतुत्व कालका लक्षण क्यों नहीं हैं। यों नहीं है कि काल अप्रदेशी है। और, भैया ! पुद्गल भी अप्रदेशी है, शरीर भी अस्तिकाय नहीं है। पुद्गलको अस्तिकाय किस अपेक्षासे कहा उसका काय केवल एक प्रदेशका है बहुप्रदेशका नहीं हैं पर व्यवहारमें हम पुद्गलको एक पिंडके रूपमें देखते हैं और हमें एक चीज मालूम भी होती है ? अगर चौकीका कोना सरकायें तो सारी चौकी सरक आती है, किसी पुद्गलपिंडको किसीने हटाया तो वह पुद्गल विखरा हुआ नहीं नजर आता है इसलिए व्यवहारमें स्कंध एक चीज है और प्रदेश वाला है, अनन्त परमाणुवाला है, आकाशके बहु प्रदेशमें रहनेवाला है ऐसे स्कंधोंको अस्तिकाय कहते हैं पर उनमें वस्तुतः अस्तिकायपना नहीं है। कोई प्रश्न करे कि जीवका लक्षण क्यों नहीं गतिहेतुत्व होता ? कहते हैं कि जीव केवल लोकके असंख्यातभाग मात्र विस्तृत है समुद्घातके अतिरिक्त अन्य समयोंमें यह जीव देहप्रमाण लोकके असंख्यात में भागप्रमाण है, यह सर्वत्र नहीं है जिससे कि यह जीव अन्य द्रव्योंके गमनका हेतु बन जाय। धर्म द्रव्य समस्त लोकमें है इससे उसमें गमनहेतुपनाका अनुमान हो सकता है। आकाश क्यों गमनका हेतु नहीं बना? उत्तर—वह लोक है और यह अलोक है ऐसे लोक और अलोकमें आकाशके जो भेद पड़े हैं वे क्या आकाशके कारण पड़े है? आकाशके कारण लोक अलोक भेद नहीं हैं किन्तु जहाँतक धर्म द्रव्य है वहाँ तक लोक माना गया है याने इस कारण जहाँ तक जीव पुद्गलका आवास रहता है वहाँ तक लोक है। और अलोककी सीमा अचलित है इसलिए आकाशका भी गुण गमनहेतुत्व नहीं है।

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

आकाश तो सर्वत्र है, लोकके वाहर भी है वहाँ तो जीवादिक नहीं हैं। सो यह लोक अलोकका विभाग धर्मद्रव्यको ही सिद्ध करता है।

स्थितिहेतुत्वका अन्य द्रव्योंमें अभाव—अधर्म द्रव्यका हेतु क्या है? इसके उत्तर में कहते हैं कि एक बारमें स्थितिपरिणत समस्त जीव पुद्गलोंको लोकपर्यन्त ठहरनेमें जो हेतुभूत है वह अधर्म द्रव्य है। यह गुण भी पहिलेकी भाँति काल द्रव्यमें नहीं है, जीवमें न हीं है, आकाशमें नहीं है, धर्मका काम अधर्मसे उल्टा है, पुद्गलमें तो हो ही कैसे सकता, इसलिए यह स्थितिहेतुत्व लक्षण अधर्म द्रव्यको सिद्ध करता है।

वर्तनाहेतुत्वका अन्य द्रव्यमें अभाव—भैया! अब काल द्रव्यको कहते है कि इन समस्त द्रव्योंकी पर्यायमें प्रतिसमय उनकी बर्तना चलती उसमें जो हेतु होता है वह काल द्रव्य है। उन पदार्थोंमें समय समयकी बर्तना स्वतः असम्भव है याने कारणांतर-साध्य है। भैया! इतना तो व्यवहार कालके बारेमें आप जानते ही हैं कि पदार्थोंका परिणमन, समय गुजरता है तो होता है समय नहीं गुजरता तो कैसे वदलना होता। कालकी बात कही जारही है,यदि समय नहीं गुजरता, सेकेन्ड आदि समय नहीं गुजरता तो पदार्थोंका परिणमन कैसे होता? रोटीको पकाई जाती है सेकी जाती है। मिनटोंमें ही रोटी पक जाती है तो मिनटोंका समय गुजरता तो जाता है सो देखलो वर्तनोंमें काल निमित्त है ना, निमित्त जितना होता है वह बाह्य होता है। उपादान-भूत पदार्थोंसे दूर होता है, उपादानमें उनके ही कारण उनकी योग्यतासे वहाँ परिणति होती है, यह बात उपादानमें यथार्थ है, पर बाह्य पदार्थोंका जब मेल देखते हैं और अन्वय व्यतिरेक देखते हैं तो उनसे निमित्तका अनुमान होता है।

यहां ऐसा देखो कि यदि समय नहीं गुजरता तो यह बात पुरानी नहीं पड़ती। यह जो पुरानापन हुआ इसका निमित्त काल है। बदलनेमें यद्यपि यह ही इस प्रकार की दशाको प्राप्त होता है, पर यह भी यथार्थ है कि यदि समय न गुजरे तो उनकी यह अवस्था न हो। व्यवहारकालके कारण समयमें यह निमित्त व्यवहारपना विशद प्रतीत होता है, सो भैया, द्रव्य तो कोई भी निमित्त नहीं होता, पर्याय ही निमित्त होता है यह व्यवहारकाल निश्चलकालका पर्याय है, कालद्रव्यकी पर्याय है। वह एक-समयमें होता, यह विशेषता अन्य द्रव्योंमें नहीं हैं। इतना यहाँ विज्ञात कर लेना है कि समय गुजरता है वह पदार्थके परिणमनका निमित्त होता है। पदार्थोंका परिणमन उनमें ही स्वयं है, पर सर्वतोमुखी चारों ओरकी बातका जब विचार करते हैं तो यह बात भी यथार्थ जचती है कि समय गुजरता है उसको निमित्त पाकर यह भी परिवर्तित होता रहता है इस कारण समयनामक विशिष्टवृत्ति कालका निश्चय कराता है।

चैतन्य परिणामका अन्य द्रव्योंमें अभाव—भैया! जीवका निश्चय कराने वाला

To report error, please contact vikasnd@gmail.com

Download PDF file from http://is.gd/varniji

चैतन्य परिणाम है क्योंकि बांकीके सब द्रव्य अचेतन हैं। पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये द्रव्य चेतनेवाले नहीं हैं। इस कारण चैतन्यपरिणमन इन द्रव्योंमें असम्भव है सो यह उपयोग चेतन द्रव्यका निश्चय कराता है। इस प्रकार गुण विशेष का ज्ञान कर लेना चाहिए। यहाँ तक असाधारण गुणोंका संक्षिप्त वर्णन किया है।

पदार्थोंकी साधारणा-साधारणगुणात्मकता—पदार्थ जितने है। वे सब स्वयं अपने-अपने असाधारण व साधारण गुणस्वरूपको लिए हुए हैं। साधारण गुणोंका भी अस्तित्व पृथक् ऐसा नहीं है कि कोई गुण स्वतन्त्रतासे फैला हुआ है, अपनी अलग सत्ता कायम किए हुए है और वह सबमें पाया जाता है, सबको व्याप कर रहता है ऐसा नहीं है किन्तु वे सब गुणरूप है, ये गुण साधारण हैं और ये गुण असा-धारण हैं ऐसा पदार्थोंके नाते कोई विभाग नहीं है। पर पदार्थ हैं और वे इतने गुण रूप हैं फिर जब हम सब पदार्थोंमें दृष्टि लगाते हैं तो यह कहते हैं कि हमें अनेकों गुण तो साधारण नजर आ रहे हैं इसमें भी है और उसमें भी है। सब पदार्थों में नजर आते है सो ६ तो साधारण गुण हैं और ये गुण तो इन ही पदार्थोंमें प्रतीत हुए सो ये असाधारण गुण हैं।

गुणोंकी स्वतंत्रसत्ताका अभाव— इन साधारण गुणोंको यों नहीं मान लेना कि जैसे समवाय एक है, सर्वव्यापक है और भिन्न-भिन्न पदार्थोंमें वह रहता है यों माना है ऐसे समवाय की तरह ये साधारण गुण नहीं है। भेदवादमें पदार्थ ६ माने गये है। द्रव्य गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव। द्रव्य तो व्यक्तिगत हैं समवाय, सामान्य,गुण, अभाव आदि ये सामान्य हैं, एक हैं, सर्वव्यापक हैं। लक्षणतः विचारो तो द्रव्यको छोड़कर बाकी सब पदार्थ सर्वव्यापक है। जैसे जीवमें गुण ज्ञान है और द्रव्य है जीव। विशेषवादमें जीव और ज्ञान भिन्न भिन्न है, किन्तु ज्ञानके समवायसे जीव ज्ञानी कहलाता है। जीवनामक पदार्थ अलग है और ज्ञाननामक पदार्थ अलग है, जीव ही ज्ञान नहीं है ये तो दो भिन्न-भिन्न सत् अलग हैं, जीवका सत् अलग है और ज्ञान का सत् अलग है और इनका समवाय करनेवाला समवायनामक पदार्थ अलग पहिले से ही है। प्रश्न-जीवमें ज्ञानका समवाय कब तक रहेगा ? उत्तर मिलता है अनन्त काल तक साथ रहेगा। अनन्त कालसे जीव और ज्ञानका समवाय है और अनन्त कालतक रहेगा। फिर हैं कैसे अलग ? तो उसका उत्तर होता है कि भले ही चाहे अनन्त काल तक रहे, पर उनकी सत्ता न्यारी न्यारी है। जीवका काम और है, ज्ञानका काम और है। जिसे जैनसिद्धान्तमें कहते हैं अतद्भाव कहा उसे विशेषवादमें पृथग्भाव कहा है। अतद्भावका तात्पर्य लक्षणभेदसे है, प्रदेशभेदसे नहीं, सो भैया ! यों समवायकी तरह ६ गुणोंको नहीं मानना, किन्तु जैसे विशेष गुण अपने ही प्रदेशमें है जीवका चैतन्य नामक विशेष गुण चैतन्यके ही प्रदेशमें है, इसी प्रकार साधारण गुण भी उस वस्तुके

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

प्रदेशमें हैं।

साधारण गुणोंकी भी पृथक् सत्ताका अभाव – इसी प्रकार अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, अगुरुलघुत्व प्रदेशवत्त्व, प्रमेयत्व ये समस्त साधारण गुण भी उसके; उसके ही प्रदेशमें है। दूसरेके गुण दूसरेके ही प्रदेशमें रहें ऐसा कोई यहाँ गुण नहीं है। जो सर्व-व्यापक हो,एक हो और सबमें पाया जाता हो ऐसे किसी सत् की व्यवस्था नहीं है किन्तु जिस पदार्थमें जो गुण है वह उस ही प्रदेशमें है, उससे बाहर नहीं है। हाँ कुछ गुण जैसे जीवमें मिले, इसी प्रकार धर्मद्रव्यमें मिले सब द्रव्योंमें मिले। इस कारण उन गुणोंका नाम साधारण गुण रख लिया गया हैं।

पदार्थोंकी परिपूर्णता व गुणपर्यायमयता—भैया प्रत्येक पदार्थ अनन्त गुणोंसे तन्मय हैं, अपने प्रदेशोंमें हैं उनका परिणमन, उनकी स्वयंकी क्रिया, उनकी स्वयंकी परिणति उनमें ही है, उनके बाहर नहीं हैं। इस कारण प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र है, अपनी ही पूर्ण सत्ताको लिए है। प्रत्येक समय द्रव्य पूरे हैं, अधूरे नहीं है। साधारण गुण व असाधारण गुण उन्हीं प्रत्येकमें स्वयंमें है। जब जीव रागी हो तो उस समयमें भी पर्याय उसकी पूरी है, आधी नहीं है, द्रव्य भी पूरा है। कोई पर्याय इस तरह नहीं होतीकि भाई अभी तो हम आधे ही बन पाये हैं अब आधे दूसरे समयमें बनेंगे। प्रत्येक समय में पर्याय पूर्ण है। बस पदार्थ है और वे स्वयंकी वृत्तिसे वर्तते रहते हैं इतनी ही तो बात है। इस तरह वस्तु स्वरूपको जब यथार्थ रूपमें देखते हैं तो वहाँ मोह नहीं ठहर पाता। यहाँ तक उन अमूर्त द्रव्योंका वर्णन हुआ।

जीवा पोग्गलकाया, धम्माधम्मा पुणो य आगासं।
देसेहिं असंखादा णत्थि पदेसत्ति कालस्स ॥१३५॥

जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, और आकाश ये प्रदेशवान पदार्थ हैं, क्योंकि इनमें अनेक प्रदेश पाये जाते हैं। परमार्थसे तो प्रत्येक पदार्थ अखण्ड हैं द्रव्य होनेसे अखण्ड क्षेत्री हैं। किन्तु परमाणुके मापका जितना एक अखण्ड प्रदेश है, इतने-इतने होकर किस पदार्थमें कितने प्रदेश हैं इस दृष्टिसे असंख्यातप्रदेशी व अनन्तप्रदेशीका वर्णन है। सो अनेक प्रदेशोंका वर्णन परमाणुसे अवगाहित आकाशप्रदेशके मापके कारण उपचारित है इसी प्रकार धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य, आकाश द्रव्य और जीवके भी प्रदेश उपचारित हैं। सो ये अस्तिकाय अनेकान्तसे एकक्षेत्री व अनेकक्षेत्री सिद्ध होते हैं।

एक पदार्थमें अनेकान्तके खोजकी जिज्ञासा—यहाँ कोई यह जिज्ञासा करे कि प्राय: अनेकान्त तो माना जाता है, पर दो वस्तुओंकी अपेक्षासे माना जाता है। जैसे यह घट घट रूपसे है, पटरूपसे नहीं है तो यह घटका क्या अनेकान्त हुआ ? इसमें दो का मुकाबला करके अनेकान्तको द्विष्ठ बतलाया है कि अपनी अपेक्षासे है परकी अपेक्षा नहीं है, ऐसी बातमें स्वयं एक पदार्थकी चर्चा तो नहीं होती है। एकही पदार्थमें

To report error, please contact vikasnd@gmail.comVersion 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

"है" और नहीं ये दोनों बातें घटित होना चाहिए।

एक वस्तुमें द्रव्य दृष्टिसे अनेकान्तका विधान—उक्त जिज्ञासाका समाधान सर्वदेश वर्णन करनेपर होगा और उसमें ही एक क्षेत्र व अनेकप्रदेशीका भी समाधान होगा। भैया! पदार्थ जाना जाता है, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावसे। कोई पदार्थ हो, वह अपने द्रव्यसे है, परके द्रव्यसे नहीं है, यह तो अपेक्षाकृत वर्णन है। अपने क्षेत्रसे है, परके क्षेत्रसे नहीं है, अपने कालसे है, परके कालसे नहीं है। अपने भावसे है, परके भावसे नहीं है। यह सब अपेक्षाकृत वर्णन है। अनेकांत तो होगया मगर उसही प्रदेशात्मक पदार्थमें अनेकान्त तो नहीं हुआ तो एक ही पदार्थमें अनेकान्त घटित करनेके लिए चिन्तन तो कीजिये। द्रव्य किसे कहते हैं? गुण पर्यायका जो समूह है उसे द्रव्य कहते हैं, ऐसा वर्णन करना भेदका वर्णन है। और, द्रव्य है वह एक पूर्ण वस्तु पिण्डात्मक जिसकी इकाईको लेना है यह अभेदका वर्णन है। जैसे जीव द्रव्यको लो, तो ज्ञान, दर्शन, चारित्र, शक्ति आदि गुण और उन सब गुणोंकी पर्यायें उनका जो समूह है वह जीवद्रव्य हैं, यह भेदवाला वर्णन हुआ और जो यह एक वस्तु है, वह हुआ अभेदरूपका वर्णन तो वही जीव द्रव्य जब भेदरूप द्रव्यसे देखा जाता है तो भेदरूप द्रव्यसे तो है और अभेदरूप द्रव्यसे नहीं है और जब अभेदरूप दृष्टिसे देखा जाता है तो अभेदरूप द्रव्यसे है व भेदरूप द्रव्यसे नहीं है। यह प्रकरण चलरहा है कि एक वस्तुस्वरूपमें उसकी ही अपेक्षा अस्ति और नास्ति आवे। जीवके चतुष्टयसे तो है और पुद्गलके चतुष्टय से नहीं है, यह तो अपेक्षाका वर्णन है, इसमें तो भिन्न-भिन्न द्रव्योंमें अनेकान्त आया, किन्तु एक ही द्रव्यमें भेद व अभेद दृष्टिसे जो परस्पर अस्ति हुआ और नास्ति हुआ, वह एकमें अनेकान्त हुआ। भैया! पदार्थ द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावरूप होते हैं। सो उन चारोंको भी दो दो रूपमें देखें—द्रव्य दो रूप हैं एक भेदरूप द्रव्य और दूसरा अभेदरूप द्रव्य। किसी भी एक द्रव्यको ले लो। एक व्यक्तिगत जीवको ले लो, जाति रूपको नहीं जैसे खुदको ले लो, तो यह आत्मा अनन्त गुण पर्यायोंका समूह है, अनन्त गुणवान व अनन्त पर्यायवान है। ऐसा जब देखा तो यह भेदरूप द्रव्यकी दृष्टिसे देखा। अब उस ही आत्माको अभेददृष्टिसे जब देखा तो भिन्न भिन्न गुण पर्याय फिर इसका समूह, यह नहीं दिखेगा किन्तु जो पिंडरूप है, एकत्वरूप है, ऐसा अभेदात्मक द्रव्य ही दिखेगा तो जब भेदरूप द्रव्यसे देखा तो यह आत्मा है, यों है जिस प्रकारसे देखा हो, और अभेदरूप द्रव्यसे नहीं है, जब अभेदरूप द्रव्यसे देखा तो अभेदरूप द्रव्य तो है, किन्तु भेदरूप द्रव्य नहीं है। तब स्वदृष्टिकी अपेक्षा ही एकमें अस्ति नास्ति आया।

एक वस्तुमें क्षेत्रदृष्टिसे अनेकान्त—क्षेत्रकी अपेक्षा देखने चले तो जब प्रतीत हुआ यह जीव असंख्यातप्रदेशी है, असंख्यात प्रदेशमें फैला हुआ है, तो यह हुआ भेद स्वक्षेत्र, किन्तु ऐसे अनगिनते प्रदेश जो इसमें हैं वह सब एकस्वरूप अखण्ड क्षेत्र है।

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

उसमें भिन्न-भिन्न खण्ड-खण्ड रूप क्षेत्र नहीं हैं, अतः इसही जीवको एक अखंडक्षेत्रीय की दृष्टिसे देखा तो वह अभेद अखण्डदेशी नजर आया। और संख्यामें गिनतीमें भेद करके देखा तो, भेक्षेत्रीय नजर आया। भेदक्षेत्रीयदृष्टिसे आत्मा है तो अभेदक्षेत्रीय आत्मा नहीं है। जब अभेदसे देखा तो अभेदक्षेत्र दृष्टिसे आत्मा है वह भेदक्षेत्रदृष्टिका आत्मा नहीं हैं। एक ही पदार्थमें उसके ही क्षेत्रकी अपेक्षा है भी और नहीं भी है, यह है एक पदार्थमें उस एकके ही कारण अस्ति और नास्ति का दर्शन।

एक वस्तुमें कालदृष्टिसे अनेकान्त—अब कालदृष्टिसे देखो, काल माने पर्याय, इसे बहुत ध्यानसे सुनना। इसमें चार प्रकारका वर्णन दो पद्धतियोंमें होगा। काल का अर्थ है पर्याय। एक तो जीवकी पर्यायको इस तरहसे देख सकते हैं-यह ज्ञान गुणकी पर्याय, यह दर्शन गुणकी पर्याय, यह चारित्र गुणकी पर्याय, इस तरह एक ही समयमें कितनी पर्यायें हो गईं? अनन्त पर्यायें हो गयी एकही समयमें, इसे कहते हैं भेदरूप पर्याय। परमार्थतः क्या जीवमें अनन्त पर्यायें हैं? नहीं, जीव एक वस्तु है और यह परिणम रहा है। एक समयमें पर्याय एक है अनेक पर्यायें नहीं हैं। अनेक गुण भी नहीं है तो अनेक पर्यायें कहाँसे आ गयी? गुणभेद भी व्यवहारसे है, पर्यायभेद भी व्यवहारसे है। और जो भी बना, जैसा बना, परिणमा वह एक पर्याय है। तो एक समयमें ही उस उस पर्यायको देखा यह अभेदपर्याय है। जब यह जीव भेदपर्यायसे है तो यही अभेदपर्यायकी दृष्टिसे नहीं है। यही जब अभेदपर्यायकी दृष्टिसे है तब भेदपर्यायकी दृष्टिका नहीं हैं। यह प्रथम पद्धति है। दूसरी पद्धतिसे देखिये जीवकी पर्याय ऊर्द्ध्वता विशेषकी अपेक्षा भी देखी जाती है। अनन्तकालके जितने समय हैं उतनी ही तो इस जीव द्रव्यमें पर्यायें हैं। तो उन पर्यायोंकी अपेक्षा देखो तो उन अनन्त पर्यायोंका समूह यह जीव है। यों देखो, ज्यों उन-भिन्न-भिन्न समयोंकी अनन्त पर्यायें नजर आकर उस समुदायको द्रव्य माने यह तो है भेददृष्टि और वे समस्त पर्यायें भी आखिर पर्याय ही तो हैं। पर्याय जातिकी अपेक्षा देखो तो वे अनन्त व्यक्त पर्यायें एक परिणमन मात्र हैं, यह हुई अभेदपर्यायकी दृष्टि। तो इस ऊर्द्ध्वताविशेषकी अपेक्षामें याने भेदपर्यायकी दृष्टिमें आत्मा है तो अभेद पर्यायकी दृष्टिमें नहीं हैं। और अभेद पर्यायकी दृष्टिमें जो आत्मा है वह भेदपर्यायकी दृष्टिमें नहीं है। इसी प्रकार एक जीव पदार्थमें कालकी अपेक्षा से है और नहीं है, ये दोनों बातें आ जाती हैं।

एक वस्तुमें भावदृष्टिसे अनेकान्त—भैया! अब भावकी दृष्टिसे एकमें अनेकान्त देखें, भावके माने हैं गुण। इस जीवमें ज्ञान, दर्शन, चारित्र, शक्ति, आदिक अनंत गुण हैं, अनन्त भाव हैं, यों अनन्त भावभेद दृष्टिमें हुए, किन्तु परमार्थसे जीव एक है और उसका स्वभाव एक है। इस जीवको जब हम भेददृष्टिसे देखते हैं तो अनन्तभाववान है और जब अभेद दृष्टिसे देखते हैं तो एकभाव है, एकस्वभाव है। जिसको एक शब्दमें

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

कहा चैतन्य स्वभाव। यों भाव भेदभाव और अभेदभाव दो प्रकारके उपयोगमें आये। अब देखिये, भेदभावकी दृष्टिसे जो आत्मा है वह भेदभावकी दृष्टिका आत्मा नहीं है। और अभेदभावदृष्टिसे जो आत्मा दृष्ट होता है वह भेदभाव दृष्टिका आत्मा नहीं है। इस तरह जो भेदभावकी अपेक्षा है वह अभेद भावकी अपेक्षा नहीं है और जो अभेदभावकी अपेक्षासे है वह भेदभावकी अपेक्षाका नहीं है। स्वचतुष्टय से है और स्वचतुष्टयसे नहीं है, ऐसा स्याद्वाद एक पदार्थमें घटित होता है।

सप्रदेशी और अप्रदेशी—भैया ! प्रकृतमें यह कहरहे हैं कि जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश ये प्रदेशवान है, क्योंकि इनमें प्रदेश बहुत हैं। किन्तु कालाणु एक प्रदेशी है, यहाँ अप्रदेशीका अर्थ प्रदेश नहीं है, ऐसा नहीं लेना किन्तु एक प्रदेशी लेना। अप्रदेशका अर्थ है दो आदि प्रदेश न होना। काल एक ही प्रदेश वाला है।

जीवका संस्थान अनिर्दिष्ट—जीव प्रदेशवान है, लोककाशके बराबर प्रदेश वाला है। उपाधिवश इसमें संकोच विस्तार हुआ करता है जैसे-जीव चींटीके शरीरमें गया तो चींटीके शरीरकी माप बराबर वह जीवप्रदेश हो गया और हाथीके शरीरमें गया तो हाथीके शरीरके मापके बराबर जीव प्रदेश फैल गया। तो यह फैलता और सिकुड़ता है। भैया बड़े गजबकी चीज है कि जीवका प्रदेश, जीवका आकार जीवका माप घटा बढ़ा हुआ रहता है। यह प्रदेशकी अपेक्षा बात है।

जीवका लक्षक लक्षण—जीवका वर्णन तो प्रधानतया ज्ञानकी अपेक्षा होता है। प्राय: प्रदेशकी अपेक्षा वर्णन नहीं होता। जीवमें दो गुण हैं ज्ञान और आनन्द इन दोनोंको ही यह जीव चाहता है कि मेरा ज्ञान बढ़े और मेरा आनन्द बढ़े। तो जीव हैं सभी एकही उद्देश्यको लिये हुए कि ज्ञान व आनन्द प्राप्त हो। त्याग करते हैं, समाधि-करते हैं ज्ञानोपयोगको लेते हैं उनका प्रयोजन आनन्दके लिए है और जो प्राणी संसारके विषयोंमें दौड़ लगा रहे हैं उनका भी प्रयोजन आनन्द पानेके लिए है, भैया ! ज्ञान गुण तो छोड़ा ही नहीं जा सकता है, क्योंकि ज्ञान और आनन्द ये दो मुख्य गुण हैं,सो ज्ञान गुणका जो प्रयोग होता है, ज्ञानकी अर्थक्रिया होती है वह तो अर्थग्रहणरूप है, इस कारण जितने पदार्थोंका ग्रहण हुआ, जानना हुआ, याने जितने विस्तारमें, जितने क्षेत्रमें जितने पदार्थोंका विकल्प हुआ, वह ज्ञानका एक विकाश है। ज्ञानका क्षेत्र बहुत बड़ा है इसकी अपेक्षा कहा जाता है कि आत्मा सर्वव्यापक है। यह ज्ञान कितना बड़ा है ? णाणं णेयपमाणं, ज्ञान कितना है ? जितना कि ज्ञेय है। और, ज्ञेय कितना है ? जितना कि विश्वमें चेतन अचेतन सर्व अर्थ है। तो ज्ञान कितना बड़ा हो गया? जितना कि सभी विश्व है इतना बड़ा ज्ञान हो गया। एक सिद्ध भगवानका ज्ञान लो, सर्वज्ञका ज्ञान लो। कितना बड़ा ज्ञान है ? जितना कि त्रिकालवर्ती यह समस्त सर्व लोक व अलोक है, इतना ही बड़ा ज्ञान है। इस लोकसे बाहर जो अलोकाकाश है वहाँ भी ज्ञान

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

फैला हुआ है। इस दृष्टिसे यह आत्मा सर्वव्यापक है, यह आत्मा लोकालोकव्यापक है, पर प्रदेशकी अपेक्षासे नहीं, ज्ञानकी अपेक्षासे है। आत्मा ज्ञानके बराबर है। ज्ञान ज्ञेयके बराबर है और ज्ञेय लोकालोकरूप समस्त पदार्थ प्रमाण है, इतना सर्वव्यापक है आत्मा। यह वर्णन हुआ ज्ञान गुणकी अपेक्षासे।

आनन्दका आलोडन:—अब आनन्द गुणकी अपेक्षा देखो। आत्मा आनन्दमय भी तो है और आनन्द कितना बड़ा है? आनन्द क्या लोकालोकव्यापक है? आनन्द गुण उतना बड़ा है जितनेमें जीवके प्रदेश हैं। आनन्दका अनुभव जीवप्रदेशमें होता है अर्थात् इस जीवप्रदेशमें ही आनन्द सीमित रहता है। जैसे कहते हैं कि सुख होता है तो एक फुरेरूसी आगयी, रोंगटे खड़े हो गये यह विशिष्ट अनुभव आत्मप्रदेशमें ही होता है प्रदेशमें ही नियमित है इसके बाहर क्या आनन्दका अनुभव होता है? नहीं होता है। पर ज्ञानके समय तो आत्मप्रदेशका भी आधार समझमें नहीं आता। हाँ जान लिया, इतना जान लिया। यह देखो ना, चार मीलमें फैल गया जानन। किन्तु आनन्द की अनुभूति प्रदेशोंमें ही होती है। तो यह जीव बहुप्रदेशी है, जितने जीवके प्रदेश हैं उतनेमें ही आनन्द गुणका परिणमन है।

जीवके निजक्षेत्रका संकोच, विस्तार—प्रदेशोंकी अपेक्षा संकोच और विस्तार कैसा हो रहा है? आज मनुष्य भवमें है तो कल अंगोपांगरहित शरीरमें अवस्थित है, इस तरहसे देखो इसके फैलनेकी क्षेत्रीय अपेक्षा लगी है। जीव अखंडक्षेत्रीय होकर भी जीवके प्रदेशोंका आकार ऐसे फैले हुए देहके मापमें हो गया। यह आत्मा हाथमें है और इन पैरोंमें भी आत्मा है। देखो हाथमें प्रदेश हैं, पैरमें प्रदेश हैं, किन्तु इन दो पैरोंके बीच जितना आकाश क्षेत्र छूटा है यहाँ नहीं है और फिर भी अखंडक्षेत्रीय है अखंड क्षेत्रका अर्थ है कि परिणमन जो हो वही परिणमन सब प्रदेशोंमें हो, समान भी नहीं कि जैसा ज्ञान हाथके प्रदेशमें होता वैसा ज्ञानपरिणमन पैरोंके प्रदेशमें हो, ऐसा समान भी नहीं किन्तु जो परिणमन एक प्रदेशमें है वही परिणमन सारे प्रदेशोंमें है।

अखण्ड क्षेत्रकी पहिचान—अखण्ड क्षेत्रकी पहिचान यह है कि एक कोई परिणमन जितनेमें होना ही पड़े, जितनेसे वाहर न हो उसे अखण्ड क्षेत्र कहते हैं। तभी तो देखो ज्ञानरूप जो परिणमन एक प्रदेशमें है वही परिणमन सारे प्रदेशोंमें है। यह प्रदेश कुछ और भिन्न चीज नहीं हैं किन्तु जो गुण हैं, गुण परिणमन हैं उनका ही आधार समवायात्मक वह प्रदेश कहलाता है। आज मनुष्य हम हैं तो इस तरहका प्रदेश परिणमन है और मृत्यु करके वृक्ष बन गये तब? तब तो इन वृक्षोंकी सकल देखो नीचे कैसी जड़ें फैली हुयी है कैसी शाखायें फूटी हुई हैं, उनकी उपाशाखायें फैली हुई है, कितनी ही टहनियाँ है, उनमें पत्ते गुथे हुए हैं। पत्तोंके बीचमें नसें सी है, छोटी टहनियोंमें फूल पैदा होते हैं। उन फूलोंके बीच मकरंदका स्थान है ऐसे सूक्ष्म-सूक्ष्म

To report error, please contact vikasnd@gmail.comVersion 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

क्षेत्रोंके रूपमें भी कैसा फैला हुआ है आत्मा। तो देखो जीवके प्रदेश इतने मापमें फैल गये। जीव कितना ही फैला हुआ हो, सर्वत्र असंख्यातप्रदेशी है। यह कर्मविपाकका निमित्त समझो। जिस-२ क्षेत्रमें जिस-जिस देहमें यह जीव पहुँचता है उस देह प्रमाण उस जीवका बिस्तार है। आज इस देह प्रमाण इस जीवका विस्तार है।

आत्मपरिचयका कारण—भैया! आत्मपरिचयका कारण ज्ञानका प्रकाश है। उसीसे हम जीवकी असलियत तक पहुँचते हैं। उस ज्ञानके माध्यमसे हम आनन्दका अनुभव करते हैं। प्रदेशका ज्ञान करके आनन्दका अनुभव हो जाय सो नहीं किन्तु ज्ञानस्वरूपका अनुभव करनेसे आनन्दका अनुभव होता है। ज्ञानस्वरूप यह मैं अपनेको ज्ञानमय जानूँ इसही में परमहित है, अन्य उद्योगोंमें हित नहीं है, अन्य प्रयत्नोंमें मुक्तिका मार्ग नहीं है। मैं ज्ञानी हूँ और ज्ञानको ही अनुभवूं, ज्ञानस्वरूपका ही ज्ञान करूँ, यह वृत्ति यदि हममें बन सकती है, तो हम मुक्तिके मार्गमें हैं, कर्म कलंकको काट सकते हैं, परम आनन्दको पा सकते हैं। यह जीव प्रदेशदृष्टिकी अपेक्षा संकुचित और विस्तृत होता है फिर भी वे असंख्यात प्रदेशोंका परित्याग नहीं करते। प्रदेश वही है इसलिए जीव जो है वह असंख्यातप्रदेशवान है।

पुद्गलका क्षेत्रस्वरूप—अब पुद्गलके क्षेत्रस्वरूपकी ओर चलिये। यह पुद्गल द्रव्यसे तो प्रदेशमात्र है। पुद्गल स्वयं अखंड जो एक वस्तु है वह एक एक प्रदेश प्रमाण है। यह स्कंध तो परमाणुओंका पिंड हुआ। यह पुद्गल द्रव्य नहीं। एक-एक अणु पुद्गल द्रव्य है और वह प्रदेशमात्र है इसलिए वस्तुतः पुद्गल द्रव्य अप्रदेशी है, काल द्रव्य सर्वथा अप्रदेशी है। काल द्रव्योंका संघात नहीं होता, पर पुद्गल परमाणुओंका संघात होता है। परमाणुके इस प्रकार प्रदेशबंधोंके कारण समान-जातीय द्रव्यपर्याय बनती है सो इस तरह वे स्कंध बहुप्रदेशी संख्यातप्रदेशी व असंख्यातप्रदेशी व अनन्तप्रदेशी हो जाते हैं। इन पर्यायोंके रूपसे उन्हें देखा जाय तो पुद्गलोंके प्रदेशोंमें अवधारण नहीं होता, नियम नहीं होता कि जैसे बताया गया कि जीव असंख्यातप्रदेशी हैं, तो वे असंख्यातप्रदेशी ही हैं। धर्मद्रव्य असंख्यातप्रदेशी है, अधर्मद्रव्य असंख्यातप्रदेशी है, आकाशद्रव्य अनन्तप्रदेशी है, ये सब इतने प्रदेश वाले ही हैं। किन्तु पुद्गलके प्रदेशोंका कुछ अवधारण नहीं होता। दो, तीन प्रदेश वाले भी हैं अर्थात् विविध संख्यात प्रदेश वाले भी हैं, असंख्यात व अनन्त प्रदेश वाले भी हैं। परमार्थतः पुद्गल एक प्रदेशवान ही है। पुद्गल स्कन्धके प्रदेश नियत नहीं होते।

जीवोंका असंख्यातप्रदेशित्व—देखो भैया, ३४३ घनराजू प्रमाण समस्तलोकमें भी असंख्यात प्रदेश है और सुईकी नोकके गड्ढा भर स्थानमें भी प्रदेश असंख्यात हैं। यह सारी दुनियाँ भी असंख्यातप्रदेशी है और स्याहीका एक थोड़ासा बूँद गिर जाय तो वह जितनी जगह घेरता है वह जगह भी असंख्यातप्रदेशी है। असंख्यात

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

असंख्यात तरहके होते हैं। कोई भी जीव हो मुक्त जीव हो या संसारी सब असंख्यात प्रदेशमें ही ठहरते हैं। निगोद या लब्धयपर्याप्त जीव जिसे कहते हैं, जिनका अंगुलोंके असंख्यातवें भाग प्रमाण अवगाहनक्षेत्र है। वे भी असंख्यातप्रदेशकी अवगाहना वाले हैं। कोई जीव असंख्यात प्रदेशसे कम प्रदेशोंमें नहीं रहता। छोटा से छोटा जीव हो, उसका भी क्षेत्र असंख्यात प्रदेशमें है, और १००० योजनका लम्बा, ५०० योजन का चौड़ा, और २५० योजनका मोटा महामत्स्य भी असंख्यात प्रदेशमें है।

स्कन्धनिर्देशनपूर्वक उपसंहार—जितने पुद्गल हमें दृष्टिगोचर होते हैं वे सब अनन्तप्रदेशी हैं, असंख्यातप्रदेशी भी नहीं। अनन्त परमाणुवोंका पिंड हुए बिना पुद्गलस्कंध दृष्टिगोचर नहीं होता है। पुद्गलस्कंधमें कुछ नियम नहीं हैं कि वह संख्यातप्रदेशी है कि असंख्यातप्रदेशी है कि अनन्तप्रदेशी है। होते सब प्रकारके हैं, किन्तु दृष्टिगोचर अनन्तप्रदेशी स्कंध ही होता है। स्कंधकी अपेक्षा पुद्गल भी अस्तिकाय हैं। इस वर्णनका प्रयोजन यह है कि हम सारे पदार्थोंको जानकर, विशेषरूपसे समझकर यह निर्णय बना सके कि यह मैं आत्मा समस्त पर पदार्थोंसे सर्वदा 'न्यारा हूँ।' ऐसे भेद विज्ञानकी दृढ़ताके लिए यह समस्त विज्ञान चलता है। यहाँ यह प्रकरण चल रहा है कि द्रव्य प्रदेशवान भी हैं और अप्रदेशी भी हैं। प्रदेशवान यों हैं कि जीव द्रव्य असंख्यातप्रदेशी हैं और पुद्गल द्रव्य परमार्थसे तो अप्रदेशी हैं, किन्तु स्कंधकी अपेक्षा कोई संख्यातप्रदेशी कोई असंख्यातप्रदेशी और कोई अनन्तप्रदेशी हैं, नाना प्रकार हैं। धर्म द्रव्य असंख्यातप्रदेशी है और वह समस्त लोकमें व्यापक है, प्रस्ताररूप है। प्रस्ताररूप कहनेके माने यह है कि लोकाकाशके एक एक प्रदेशपर धर्म द्रव्यका एक एक प्रदेश अवस्थित है। धर्म द्रव्य एक है, असंख्यातप्रदेशी है और प्रस्ताररूप है। इसी प्रकार अधर्म द्रव्य भी समस्त लोकमें व्यापक है, असंख्यातप्रदेशी है और प्रस्तार रूप है। यह भी लोकाकाशके एक-एक प्रदेश पर एक-एक प्रदेशमें अवस्थित है। ऐसे ही केवलीसमुद्घातमें लोकपूरणके समय जीवप्रदेश लोकके एक-एक प्रदेश पर अवस्थित हो जाते हैं। आकाश द्रव्य सर्वव्यापक है, अनन्त प्रदेशी है और प्रस्तार रूप है। वह भी एक एक प्रदेशोंमें फैला हुआ है सो ये ५ द्रव्य तो प्रदेशवान हैं, इसी कारण इन्हें अस्तिकाय कहते हैं पर कालाणु द्रव्य केवल प्रदेशमात्र है। कालद्रव्य स्वयं पूर्ण एक प्रदेशरूपमें रचा हुआ है। कालकी जो पर्यायें है सो चूँकि पर्यायोंमें परस्परमें सम्पर्क नहीं होता सो जो समय गया वह नहीं आयगा, वह दूसरे समयमें नहीं ठहरता है। इसका सम्पर्क ही नहीं, अतः कालाणु अप्रदेशी है। एक काल द्रव्य तो अप्रदेशी है और बाकी के ५ द्रव्य प्रदेशवान् हैं। अब आगे यह बतलाते हैं कि इन प्रदेशवान और अप्रदेशवान समस्त द्रव्योंके प्रदेश कहाँ पर अवस्थित हैं। इस बातको पूज्य श्री कुन्दकुन्दाचार्य देव इस १३६ वीं गाथामें कहरहे हैं :—

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

लोगालोगेसु णभो धम्मधम्मेहिं आददो लोगो।
सेसे पडुच्च कालो जीवा पुण पोग्गला सेसा ॥ १३६ ॥

लोक और अलोकमें आकाश द्रव्य रहता है। तथा यह लोक धर्म द्रव्य और अधर्मद्रव्यसे व्याप्त है। इसी प्रकार शेषके जीव पुद्गल भी और काल द्रव्य भी लोकाकाशमें सर्वत्र निरन्तर व्याप्त है।

आकाशकी सर्वव्यापकता—आकाश तो लोक और अलोकमें अविभाग रूपसे रहता है अर्थात् आकाशके दो भेद नहीं हो सकते। वह तो एक ही है। जो छह द्रव्योंका समवायात्मक है वह तो लोक है और छह द्रव्योंका असमवायात्मक अलोक है। धर्म द्रव्य और अधर्म द्रव्य लोकमें सर्वत्र है उसका निमित्त पाकर जिनका गमन होता है और ठहरना होता है ऐसे जीव पुद्गलोंका लोकके बाहर किसी भी जगह गमन नहीं होता, और जब गमन नहीं होता तो गतिपूर्वक स्थिति भी नहीं होती इस कारणसे धर्म और अधर्म द्रव्य लोकमें ही सर्वत्र व्यापक है। धर्मद्रव्यकी सिद्धि करनेमें प्रधान हेतु आचार्योंने यह दिया है कि लोकके बाहर चूंकि किसीकी गति स्थिति नहीं हो सकती है इसलिए सिद्ध है कि उन गुणोंका कारणभूत पदार्थ इसके बाहर नहीं है और आकाश बहुत विशाल चीज है। लोक कितना बड़ा है। उसके बाहर जीव पुद्गल हैं कि नहीं हैं? कहाँ तक यह लोक अलोक है। तो परोक्षज्ञानियोंको भी यह स्पष्ट जचता है कि कुछ समूह है, समूहकी सीमा होती है। आकाशकी सीमा नहीं होती क्योंकि आकाश सीमासे रहित वस्तु है। समूहकी जहाँ तक सीमा है उसके बाहर केवल आकाश ही है इसका कारण यही है कि समूहके चलने ठहरनेका कारण भूत कोई चीज आगे नहीं मिलती है। इसलिए वह चीजसमूह सीमित है, वह ३४३ घन राजू प्रमाण लोक है।

काल द्रव्यका विवरण—जीव व पुद्गलके परिणाम विद्यमान रहें इसके लिए जो पर्याय निमित्त है वह वर्तनापर्यायवाला काल है याने समय गुजरे बिना तो परिणमन नहीं होता है। तो समय तो कोई चीज है और समय छोटासे छोटा एक-एक समय है वह समय किसकी पर्याय है, क्या वस्तु है। समय द्रव्य है कि गुण है कि पर्याय है। तो समय चीज द्रव्य तो है नहीं, क्योंकि वह ध्रुव नहीं। समय गुण नहीं, क्योंकि ध्रुव नहीं है। उसे एक पर्याय कहा जा सकता है। और वह समय पर्याय है तो किसी द्रव्यकी अवश्य है सो जिस द्रव्यकी पर्याय समय है, वह द्रव्य है काल द्रव्य। वे लोकके एक एक प्रदेशमें ही रहते है। एक-एक प्रदेश ही उसका काय है। किन्तु इसको काय यों नहीं कहते हैं कि जो संचित हो उसका नाम काय है। काल तो संचित नहीं होता। काल न अपनेमें संचित है न अन्य वस्तुके साथ संचित है इसलिए वह अकाय है।

लोकमें जीवादिककी व्याप्तिकी पद्धति—जीव पुद्गल भी लोकमें ही है क्योंकि लोक छह द्रव्योंमें समवायात्मक है। जीवमें संकोच विस्तारका धर्म है जैसे

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

पुद्गलमें स्निग्धत्व रूक्षत्वका धर्म है। जीव और पुद्गल कैसे बंध जाते है ? उसका कारण स्निग्धत्व और रूक्षत्व है। जीवका स्निग्धत्व हुआ स्नेह रूक्षत्व हुआ द्वेष पुद्गलका तो स्पष्ट है। हालाँकि पुद्गलमें रस है, गंधादि है, पर पुद्गल उसके कारण बंधनप्राप्त नहीं है। इसमें बंध स्निग्ध गुण और रूक्षत्व गुणके कारण ही है। काल में संघात भेद होता ही नहीं, क्योंकि ये एक ही प्रदेशमें ठहरे हैं पुद्गलका कोई नियम नहीं कि संख्यातमें ठहरे कि असंख्यातमें ठहरे। इसी प्रकार काल द्रव्य, जीव द्रव्य और पुद्गल द्रव्य ये आकाशमें एक एक देशमें होते हैं। पुद्गल द्रव्य भी असंख्यात प्रदेशमें ठहरता है स्कधंकी अपेक्षासे और काल द्रव्य तो एक ही प्रदेशमें रहता है। अगर इस समस्त लोकको देखें तो जिस प्रकार काजलसे भरी हुई काजलकी डिबिया होती है उसी प्रकार सर्वत्र ये छह द्रव्य लोकाकाशमें काजलकी सी डिबियामें भरे हुए मालूम होते हैं। लोकमें कोई प्रदेश ऐसा नहीं है जहाँ छहसे कम द्रव्य हों। लोकमें सर्वत्र छह द्रव्य पाये जाते है।

लोकका प्रत्येक प्रदेश जीव पदार्थसे व्याप्त—सब जीव अनन्तानन्त हैं। किसी भी लोकके प्रदेशको देखो तो प्रत्येक प्रदेशमें जीव प्रदेश मिलेंगे, अनन्ते जीव सर्वत्र ही मिलेंगे और ऐसे भी सूक्ष्म निगोदिया जीव हैं, जो दूसरे जीवोंके देहके आधार नहीं रहते पर उनके शरीर हैं वे विना शरीरके नहीं है, हाँ उनका वनस्पतिका आधार नही है ऐसे निगोदिया जीव सर्वत्र भरे हुए हैं। अब जो कोई मानते हैं कि एक ज्ञानमात्र तत्त्व है वह एक सर्व व्यापक है, तो वह ज्ञानमात्र तत्त्व तो जीव ही है। और, वह जीव सर्व व्यापक है। कोई ऐसा प्रदेश, कोई ऐसी जगह नहीं है जहाँ जीव न हो। उदाहरणके लिए, कहीं अंगुली उठाकर बतलाओ कि यहाँ जीव हैं कि नहीं। वहाँ भी अनन्ते जीव हैं। उन सब जीवोंको केवल जीवस्वरूपकी दृष्टिसे देखो ज्ञानस्वरूपकी दृष्टिसे देखो तो अद्वैत भाव व्यक्त हो जायगा क्योंकि वहाँ केवल ज्ञानस्वरूप ही उपयोगमें रह जाता है।

दर्शनके लक्षणोंका लक्ष्य एक—दर्शनका लक्षण कहीं कहीं कहा गया है कि सब पदार्थोंमें जो सामान्य प्रतिभास है उसे दर्शन कहते हैं। एक लक्षण कहता है कि महासत्ताका जो प्रतिभास है उसे दर्शन कहते हैं। उसी जगह कहते हैं कि आत्मा का जो प्रतिभास है उसे दर्शन कहते हैं। दर्शनके बारे में तीन लक्षण हैं। मोटे रूपसे सुनने पर ऐसा लगता है कि यहाँ आचार्य महाराज क्या अलग-२ बातें कह रहे हैं। किसी दार्शनिकने कहा महासत्ताका प्रतिभास दर्शन है,। किसीने कहा सामान्यका प्रतिभास सो दर्शन, किसीने कहा आत्माका प्रतिभास सो दर्शन है। यह तो परस्पर बिरोध हो गया मगर परस्पर उनमें विरोध नहीं, तीनोंका मूल मुद्दा एक है, लक्ष्यबिन्दु एक हैं। वह क्या ? आत्मसामान्यप्रतिभास।

दर्शनके एक लक्षणमें शेष लक्षणोंका अन्तर्भाव—तीनों लक्षणोंमें वही लक्ष्य

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

पकड़ा जाय ऐसा सीधा लक्षण क्या है ? दर्शनका सीधा लक्षण है आत्माका प्रतिभास, आत्माका प्रतिभास विशेषरूपसे नहीं, विकल्परूपसे नहीं, अर्थग्रहणरूपसे नहीं। वह लक्षण तो ज्ञानमें चला जाता है, आत्माका निर्विकल्प प्रतिभास सो दर्शन है। अब बाँकी जो दो लक्षण हैं उन लक्षणोंका जो भाव निकले वह इन लक्षणोंको पकड़ता हुआ निकलना चाहिए। इन तीन लक्षणोंमेंसे एकको अपना लो, अब दोनों लक्षणोंके भाव इस लक्षणमें मिलना चाहिए। इस तरहसे उनका अर्थ देखो कैसे हुआ ? जैसे पदार्थोंका सामान्य प्रतिभास सो दर्शन कहा यहां दर्शन पदार्थोंमें आकारका ग्रहण नहीं करता अर्थात् अर्थग्रहण नहीं करता, विकल्प नहीं बनाता और पदार्थोंमें विशेषत्व भी नहीं लगाया, फिर उनका जो सामान्य प्रतिभास है सो दर्शन हुआ। तो पहिले तो यही बतलाओ कि जिस समय हम यह कहेंगे कि हमें चौकीका सामान्य प्रतिभास हो गया तो चौकी लगा देनेसे ही विशेष बन गया ना। अब सामान्य प्रतिभास क्या रहा ? किसी वस्तुका नाम लिया जाने पर उसमें सामान्य क्या रहा। वहाँ तो विशेषता आ गयी; क्या ? कि इसका सामान्य। सो इन सब पदार्थोंको साधारणतया प्रतिभासनेपर सामान्य प्रतिभास बनता है। यदि हम व्यक्तिगत पदार्थोंमें सामान्य ढूढ़कर चलें तो सामान्य प्रतिभास नहीं रह सकता। भले ही उन विशेषोंके मुकाबले तुम सामान्य व विशेष कहलो। जैसे मनुष्यको सामान्य कहें तो पंडित, त्यागी धनी आदि को विशेष कहलो परवह क्या मनुष्य सामान्य तत्त्व है ? अच्छा उसकी विशेषमें ही छटनी कर लो और एक विशेषको ही सामान्य बनालो, विशेष विशेषके मुकाबलेमें सो वहां भी विशेष ओझल हो जाता है; फिर भी वह सामान्य नहीं है। इन सब पदार्थोंको सामान्य प्रतिभास उस विधिमें होता है जिस विधिमें ये सब परपदार्थ विकल्पमें ही न रहें। अगर कुछ भी-विकल्पोंमें है तो सामान्य प्रतिभास नहीं। सो पदार्थोंमें ज्ञान करे और फिर अपने उपयोगमें यह यत्न करें कि इन पर पदार्थोंका उपयोग छूटे तथा सामान्य प्रतिभासमें स्थिति हो, वहाँ जब निर्विकल्प प्रतिभास होता है तो उसे कहते हैं पदार्थोंका सामान्य प्रतिभास, इस सामान्य प्रतिभासमें स्थिति क्या होती है कि उपयोगमें आश्रय परपदार्थोंका तो रहता नहीं, क्योंकि पर आश्रय रहे तो वही आपत्ति है कि वह विशेष प्रतिभास। बन जायगा, सो पर पदार्थका आश्रय तो रहता नहीं और उपयोग जिसकी परिणति है उपयोग उसको छोड़कर कहाँ जावे सो उस उपयोगमें अवश हो केवल आत्मतत्त्व रह जाता है सो उस सामान्य प्रतिभासका आश्रय आत्म-प्रदेश होता है। सामान्य कहो या महासत्ता कहो दोनों एक ही बात है। सो महासत्ताके प्रतिभासमें भी यही बात है। यदि परकी महासत्ता है ऐसा उपयोग हो तो यह विरुद्ध बात हो जायगी। हमारी दृष्टिमें कोई परपदार्थ रहें और फिर महासत्ता दृष्ट हो, ऐसा नहीं होता। महासत्ता किसी परपदार्थको छूकर नहीं रहती, किसी एक भी विशिष्ट

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

पदार्थको छूकर नहीं रहती। वह तो उपयोगमें सर्वव्यापक है, सो महासत्ताके प्रतिभासमें भी आश्रय आत्मप्रदेश है, सामान्य प्रतिभासमें भी आश्रय आत्मप्रदेश है।

दर्शनके सर्व लक्षणोंकी अविरोधकता—सो भैया फलितार्थ यह है कि आत्मप्रकाशक दर्शन और परप्रकाशक ज्ञान जैसे धवलाजीमें लिखा है वह ठीक है तथा स्व-परप्रकाशक ज्ञान और स्वपरप्रकाशक दर्शन जैसा कि नियमसारमें लिखा है वह भी ठीक है। दर्शनका जो लक्ष्य है वही सबमें है, पर उसकी प्रारम्भिक विधि कहीं कोई है कहीं कोई है। इस आत्माका जब हम ग्रहणात्मक प्रतिभास करते हैं तो यह आत्मप्रकाश भी ज्ञानरूप है और इसही आत्माका जब ग्रहणात्मक प्रतिभास नहीं करते हैं, किन्तु स्पर्शात्मक प्रतिभास करते हैं, तब उस प्रतिभासको दर्शन कहते हैं।

दर्शनज्ञानात्मक आत्मा द्वारा ज्ञेय—आत्मसामान्यप्रतिभासक दर्शन और आत्मविशेषप्रतिभासक ज्ञानसे लक्षित इस आत्मा द्वारा यह सर्व विश्व ज्ञेय होता है। ये समस्त पदार्थ छह साधारण गुणोंसे व अपने-अपने विशिष्ट गुणोंसे तन्मय हैं। इन पदार्थोंमें से कौन पदार्थ अनेक प्रदेशी हैं और कौन एक प्रदेशी है इसका विवरण इस गाथामें किया जारहा है :—

> जध ते णभप्पदेसा तधप्पदेसा हवंति सेसाणं।
> अपदेसो परमाणू तेण पदेसुब्भवो भणिदो ॥ १३७ ॥

जैसे आकाशके प्रदेश हैं वैसे ही शेष द्रव्योंके भी प्रदेश हैं। परमाणु एकप्रदेशी है उस परमाणुको प्रदेशके उद्भवका मूल कारण कहा गया है। आगे आकाशके प्रदेशों का लक्षण पृथक् गाथामें बतायेंगे जो एक परमाणु द्वारा व्याप्य हैं व एकप्रदेशी कहलाते हैं।

प्रदेशका लक्षण अणुव्याप्यत्व—आकाशका जितना एक प्रदेश है उतनेमें जो ठहरे उसके माने परमाणु है, इस प्रकार प्रदेशसे परमाणुकी पहिचान तो ठीक नहीं बैठती, किन्तु एक परमाणु जितने आकाशक्षेत्रको व्यापे है उसे प्रदेश कहते हैं इस लक्षणसे प्रदेशकी पहिचान ठीक हो जाती है। अतः, जैसे आकाशके प्रदेशको अणुव्याप्यत्व लक्षण बताया गया उसी प्रकार सब प्रदेशोंमें भी प्रदेशोंका लक्षण प्रदेशोंका प्रकार एक ही है, अर्थात् जिस एक परमाणुकी मापसे जाना गया जितना आकाश क्षेत्र है वह एक प्रदेश है और ऐसे-ऐसे आकाशमें अनंत प्रदेश हैं, इसी तरह एक अणुसे जो व्यापा गया है उससे अगर धर्म द्रव्यमें गणना करें तो वह धर्म द्रव्यका एक अंश होता है। ऐसा धर्मद्रव्य भी असंख्यातप्रदेशी है और अधर्म भी इसी तरह तथा एक जीव द्रव्य भी असंख्यातप्रदेशी है। परमार्थसे आकाशमें और धर्म अधर्म आदिक द्रव्योंमें कुछ सम्बंध नहीं, कुछ आधार आधेय भाव नहीं इसलिए वह आकाश जैसा अनादिसे है, ऐसा ही धर्म आदि द्रव्य है। केवल निमित्तरूपसे कहा जाता है कि जहाँ आकाश है वहाँ धर्मादिक द्रव्य है जब आधार

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

आधेय भाव नहीं, भिन्न-२ रूप है तो जैसे आकाश अपनेमें है वैसे सब अपने-अपनेमें हैं। प्रदेशका स्वरूप ऐसा समझनेके लिए माप मूर्त परमाणु है। धर्म द्रव्यके भी असंख्यात प्रदेश हैं उसका भी माप करनेके लिए मात्र परमाणु उपाय है चाहे आकाशके एक प्रदेशसे माप करलें चाहें एक परमाणुसे माप करलें, बात एक है, किन्तु मूलमाप परमाणु है धर्म द्रव्य आदिक आकाशके असंख्यात प्रदेशोंमें है। वे इससे असंख्यातप्रदेशी हैं इस तरहकी दृष्टि करके नहीं समझना है, मूल मापबीज परमाणुके मापसे समझना है कि धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य असंख्यातप्रदेशी है, आकाश अनन्तप्रदेशी है आदि यह इस पद्धतिसे समझा गया कि एक अणु जितने क्षेत्रको व्यापे वह है एक क्षेत्रांश। ऐसे-ऐसे अनन्त क्षेत्रांश हैं इसलिए आकाश अनन्तप्रदेशी है। इसी तरह एक परमाणु धर्मद्रव्यमें जितनेमें माये वह हुआ धर्म द्रव्यका एक क्षेत्रांश। ऐसे-ऐसे धर्म द्रव्यके असंख्य क्षेत्रांश हैं इससे धर्म द्रव्य असंख्यातप्रदेशी है। इसी तरह अधर्म द्रव्य और जीव भी असंख्यातप्रदेशी हैं। यहाँ यद्यपि मूलमाप परमाणुसे है फिर भी परमाणुओंसे आकाशप्रदेश मापकर अन्य द्रव्योंके प्रदेशोंको आकाशप्रदेश द्वारा मापना सुगम ज्ञानोपाय है।

प्रदेशोंकी अवस्थितता व अनवस्थितता—भैया! धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य ये अवस्थित हैं इसलिए इनका जितना माप है वह अवस्थित है। इतना ही अनादिसे है और इतना ही अनन्त काल तक है। धर्म द्रव्य व अधर्म द्रव्यका है प्रस्तार। सो इनका प्रदेश अवस्थित है इसी प्रकार परमाणु अपने एक प्रदेशप्रमाणमें अवस्थित है। किन्तु जैसे सूखे चमड़े और गीले चमड़ेमें संकोच विस्तार है गीला चमड़ा ज्यादा फैलता है और सूखा कम फैलता है, इसी प्रकार जीवके प्रदेशोंमें संकोच और विस्तार होता है। इसी रूपमें जीव असंख्यातप्रदेशी है। जीव असंख्यातप्रदेशी है, फैल जाने व सिकुड़ जानेपर भी उतना ही असंख्यातप्रदेशी है जितना लोकाकाश असंख्यातप्रदेशी है, और रहा यह कि संकोच अवस्थामें तो माप उसका कम है तो उसका क्षेत्रीय माप भले ही कम हो, मगर प्रदेशोंमें कमी नहीं होती है। इसके लिए सूखे और गीले चमड़ेका दृष्टांत दिया गया है। आत्मा यद्यपि अमूर्त हैं तो भी उसमे संकोच और विस्तार होता है।

जीवके प्रदेशोंके संकोच विस्तारका परिचय—एक शंका यहाँ यह हो सकती है कि इन रबड़ वगैरह पदार्थोंको स्पष्ट देखते हैं कि अब यह फैल गयी, अब यह सिकुड़ गयी, तो रबड़में तो स्पष्ट समझमें आता है, पर आत्मा तो अमूर्त है। इस अमूर्त आत्मामें संकोच और विस्तार कैसे होता है? भैया! इसकी सिद्धि तो अपने आप में ही खुद देखलो, अभी दुबले हैं और शरीरसे कभी मोटे हो जावें तो आत्म प्रदेशका विस्तार हुआ कि नहीं हुआ। अर्थात् मोटे होनेपर तो आनन्दका अनुभव अधिक जगहमें हुआ और दुबले हो जानेपर फिर आनन्दकी अनुभूति उसके उतने ही देह प्रमाणमें रही, तो आत्मप्रदेशका संकोच हुआ कि नहीं? एक भवसे दूसरे भव का संकोच विस्तार होता

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

है यह तो परोक्ष बात है। इसही भवमें हम शरीरसे दुर्बल थे और इसहीं भवमें मोटे हुए तो यहाँ आत्माका संकोच विस्तार हुआ कि नहीं? अभी और देखलो, जब पैदा हुए तब छोटे थे अब जवान हुए तो शरीर डेवढ़ा हो गया अर्थात् विस्तृत हो गया। तो इसी प्रकार संकोच और विस्तार होना यह सम्वेद्य हो ही तो गया।

पुद्गलके प्रदेशित्वका विवरण—भैया! पुद्गल द्रव्यसे एक प्रदेशमात्र है, क्योंकि पुद्गल द्रव्य जितने हैं स्वयंकी ऐकाकी सत्तामें हैं, वे एक प्रदेशी हैं फिर भी दो प्रदेश आदि रूप स्कंध बन जाते हैं जिसका कारण है योग्य स्निग्ध रूक्ष गुणके परिणमन शक्तिका स्वभाव, इसके कारण स्कन्धरूप परिणमन हो जाता है। इन्द्रियों द्वारा अप्रदेश परमाणु ग्रहण नहीं किया जा सकता है, किन्तु अनन्त परमाणुओंका पिंड ग्रहण किया जा सकता है, हाथसे उठा लिया जाता, बंधनमें आगया, पकड़नेमें आ गया, क्योंकि स्कंधमें कितने ही परमाणु इकट्ठे हैं। इस प्रकार शुद्ध परमाणु तो एकप्रदेशी होता है और पुद्गल स्कंध कोई द्विप्रदेशी, कोई और अधिकप्रदेशी कोई असंख्यातप्रदेशी व कोई अनन्तप्रदेशी होता है।

स्कंध अवस्थामें भी प्रत्येक अणुके स्वरूपास्तित्वकी स्वतन्त्रता—सूक्ष्म दृष्टिसे देखिये प्रत्येक पदार्थ अपने आपमें परिणमन कररहे हैं, कोई परमाणु किसीका परिणमन नहीं कररहा है। जैसे इस चौकीका एक खूंट जलता है तो इस एक ही खूंटमें असर है दूसरेमें नहीं है अगर यह चौकी एक चौकी होती तो जितना भी परिणमन होता सब उस एक पूरेमें ही होना पड़ता। एक परिणमन जितनेमें पूरेमें होना पड़े और जिसके बाहर कुछ नहीं हो उसे एक कहते हैं। यह एकका लक्षण है। यह जीव एक है। मैं एक हूँ तो इसमें जो भी परिणमन होता है, ज्ञान परिणमन, आनन्द परिणमन जो भी परिणमन होता है वह निज समस्त प्रदेशोंमें होता है और निज प्रदेशोंसे बाहर कभी नहीं होता है, इसलिए यह एक कहलाता है। चौकीका एक खूंट जलने पर वह जलन सर्व चौकीमें देखी जारही है इसलिए चौकी एक चीज नहीं है जिस सूक्ष्म हिस्सेमें जल रहा है वह जलन दूसरे हिस्सेमें नहीं है। एक साथ अगर चार अंगुल जल रहा है तो वहाँ भी भिन्न-भिन्न हिस्सोंकी भिन्न-भिन्न जलन है, एक परिणमन नहीं है। चाहे सूखे लकड़ी एक साथ जलं रही हो मगर एकका परिणमन नहीं है। एक द्रव्यका लक्षण यह है कि जितना भी परिणमन हो वह एक पूरेमें हो। ऐसा नहीं होता है कि अमुक परिणमन आधे द्रव्यमें हो जाय और आधेमें न हो मगर स्कंधोंमें देखा यों जारहा है कि आम आधा पीला हो गया, कुछ पीला हो गया, कुछ लाल हो गया कुछ हरा है। भाई आम एक द्रव्य नहीं है, वह भी अनन्त द्रव्योंका पुंज है। सो कोई यूनिट हरा है कोई पीला है, भिन्न-भिन्न रूपोंमें वे यूनिट हो गये हैं। यद्यपि यह पुद्गल द्रव्य एकप्रदेशी है फिर भी अनेकप्रदेशी हो जाता है। तो पर्यायरूपमें पुद्गल द्रव्य

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

अनेकप्रदेशी है। इस तरह ही पुद्गलका अस्तिकायपना सम्भव है वैसे पुद्गल बहुप्रदेशी नहीं है, अप्रदेशी है फिर भी पुद्गल ऐसा द्रव्य है कि जिसमें समानजातीय द्रव्य-पर्याय होती हैं, वे पिंड हो जाते हैं, हाथमें उठाई वस्तुमें अनन्त परमाणु आ जाते हैं।

पूरण गलन पुद्गलमें संभव—मिलना बिछुड़ना पुद्गलमें ही संभव है। यों परस्परमें अन्य द्रव्य मिल नहीं सकते। धर्म, अधर्म, आकाश व कालमें तो पूरण गलन तो है ही नहीं, जीव जीव भी नहीं मिलते हैं, निगोद जीव रहते हैं और एक देहमें मिलते हैं, उनमें अनन्त जीव रहते हैं पर उनका सूक्ष्म शरीर स्कंध भी निगोदिया जीवमें अन्य अन्य है। मगर मिलकर वह एक पिंड नहीं बन गया है। शरीर एक पिंड बन गया है पर वे अनन्त निगोदिया जीव एक पिंडरूप नहीं बन गये हैं उनमें पौद्गलिकता नहीं है कि पूर जाँयें और गल जाँयें। जीव सब बिल्कुल स्वतंत्र ही स्वतंत्र हैं, एक जीव का दूसरे जीवके साथ रंच भी सम्पर्क नहीं है। ये तो बाहर ही खड़े खड़े अपना हिसाब बना रहे हैं। ये जीव सब अपने-अपनेमें परिणम रहे हैं।

पुद्गल द्रव्यमें अनन्त प्रदेश सम्भव हैं और असंख्यात प्रदेश भी सम्भव हैं व संख्यात भी सम्भव है तथा एक प्रदेशी तो है ही। पर काल द्रव्य ध्रुव अप्रदेशी है अब इस प्रकारका निश्चय करते हैं—

समओ दु अप्पदेसो, पदेसमत्तस्स दव्वजादस्स।
वदिवददो सो वट्टदि पदेसमागासदव्वस्स ॥ १३८ ॥

समय पर्यायका उपादान कारणभूत काल द्रव्य अप्रदेशी है। आकाशके एक प्रदेशसे दूसरे प्रदेशपर मन्दगतिसे जानेवाले शुद्ध परमाणुकी गतिसे काल द्रव्यकी समय पर्याय व्यक्त होती है।

काल द्रव्यका सर्वथा अप्रदेशित्व—यह कालाणु स्वयं अप्रदेशी है सो द्रव्यसे भी कालका प्रदेशित्व नहीं और पुद्गलकी तरह पर्यायसे भी उसका अनेकप्रदेशपना नहीं हो सकता अर्थात् काल द्रव्य सब मिलकर एक व्यञ्जन पर्याय हो जायें ऐसा भी नहीं होता। और, वे समय मिलकर इकट्ठे हो जायें ऐसा भी नहीं होता है। वे तो तिर्यक् रूपमें फैले हुए द्रव्य हैं उनमें कोई भी काल द्रव्य कभी पिंडरूप नहीं बन सकता इसी प्रकार ऊर्ध्व रूप फैला हुआ जो समय है वह भी परस्पर मिलता नहीं है। औरोंके मिलनेकी तो कल्पना ही छोड़ो, प्रस्ताररूपमें जिसका विस्तार है,जो प्रदेशवान है, असंख्यातप्रदेशी है, ऐसे मूर्तिमान पुद्गल द्रव्योंमें भी परस्परमें उनका सम्पर्क स्वरूपत: नहीं होता है। यह काल द्रव्य एक-एक आकाश प्रदेशको व्याप करके ठहरा हुआ है, प्रदेश मात्र है। परमाणुकी मंदगतिसे एक आकाश प्रदेशके उल्लंघनकी व एक कालाणुसे दूसरे कालाणु तक जानेकी जितनेमें वृत्ति होती है बस वही काल द्रव्यका शुद्ध पर्याय है, यही एक समय कहलाता है।

कालकी औपचारिकता व अनौपचारिकता—वैसे दिगम्बरसिद्धान्तमें और

To report error, please contact vikasnd@gmail.comVersion 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

श्वेताम्बरसिद्धातमें काल द्रव्यके बारेमें इतना अन्तर है कि श्वेताम्बरसिद्धान्तमें काल नामक कोई द्रव्य नहीं हैं पर व्यवहार काल माना जाता है, समय वर्ष घड़ी घंटा वगैरह। सो वहाँ व्यवहार कालके आधारपर ही कालको स्वीकार किया गया है और दिगम्बरसिद्धान्तमें यह व्यवस्था है कि लोकाकाशमें एक-एक आकाश प्रदेश है उसपर अन्य-अन्य काल द्रव्य अवस्थित है और उस काल द्रव्यके समय नामकी पर्याय प्रति समय होती रहती है। द्रव्यके परिणमनका नाम समय नहीं है और द्रव्यके परिणमनसे समयका उपचार नहीं है। जैसे कि जीव नामका कोई द्रव्य है और उसके क्रोध आदि पर्याय होती है। इसी प्रकार काल द्रव्य नामका एक द्रव्य है उसकी एक एक समय नामकी एक-एक पर्याय होती है ऐसा माना है। घड़ी घंटा पर्याय नहीं है। काल द्रव्य की एक-एक पर्याय चलती रहती है, एकाकी पर्याय है, एक पर्याय है। उन समय नामके पर्यायोंका जो काल्पनिक संकलन है वह व्यवहार काल हैं।

बद्ध पदार्थमें स्वरूपचतुष्टयकी बद्धता—बद्ध द्रव्य कौन कहलाता है ? जहाँ दो का बन्धन हो। तो जो बंधे हुए हैं उनमें दो द्रव्योंका बंधन दो क्षेत्रोंका अवगाह और दो समयों तक पर्यायोंका चलना और दो भावोंका मिश्रण है याने बद्ध दो द्रव्य, दो क्षेत्र, दो काल और दो भाव हैं, किन्तु परमार्थसे एक-एक हैं, मगर जिस द्रव्यमें बद्धता देखी जारही उस द्रव्यमें दो द्रव्य, दो क्षेत्र, दो काल और दो भावोंका बंध है और दो को ही बंधन कहते हैं और जो अबद्ध होता है, वहाँ अबद्धका यह अर्थ है कि एक द्रव्य एकक्षेत्र एक काल और एक भाव रहे उसे अबद्ध कहते हैं। यहाँ पर ऐसा देखा कि जीव बँधा है तथा जीव और धर्म इन दोनोंमें एक क्षेत्रावगाह है तो उसमें द्रव्यका बँधन हुआ, क्षेत्रका बंधन हुआ। अब उसमें जो परिणमन होगा, काल होगा, परिणति होगी वह परिणति भगवान सिद्धकी तरह निरपेक्ष एक समयकी विकारवृत्ति अनुभूतिमें आये ऐसा नहीं होता। यद्यपि अवस्थाके समयमें एक-एक पर्याय होती है मगर वह एक पर्याय विकाररूप अनुभूतिका कारण नहीं होती बुद्धिमें, वहाँ अन्तर्मुहूर्ततक का राग परिणमन, द्वेष परिणमन, मोहपरिणमन अनुभूत होता है। सूक्ष्मरूपसे वहाँ पर भी समय-समयका परिणमन है मगर वह पदार्थोंमें बद्ध यों ही होता है कि वे विकार विकारका अनुभवना एक समयमें नहीं करते हैं, उसमें अनेक समयकी परम्परा चलती है। राग तो उस जीवके समय-समय पर होते हैं पर एक समयका राग अन्य समयों की रागपरिणतिकी अपेक्षा लिए बिना स्वतंत्रतया अनुभवमें आ जाय तो वह नहीं आता। उस उपयोगको असंख्यात समय लग जाता है। सो जीव पुद्गलके परिणमनकी वृत्तिसे समय औपचारिक हो यह मान्यता दिगम्बर सिद्धान्तमें नहीं हैं, यह श्वेताम्बर सिद्धान्तमें है, क्योंकि कालनामक द्रव्य वहाँ नहीं माना गया है। व्यवहार कालको ही काल माना गया है।

काल द्रव्यकी अबद्धता—प्रकृत बात यह है कि कालद्रव्य है और उसकी वृत्ति

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

समय-समयके रूपमें प्रकट होती है। वह निरपेक्ष परिणमन है, क्योंकि काल द्रव्य शुद्ध द्रव्य है, अवद्ध द्रव्य है। जो शुद्ध चेतन है, उसके उपयोगमें स्वतंत्र निरपेक्ष समय-समय की पर्याय ज्ञात है। जैसे यह स्कंध है इसे जलाया तो ऐक-ऐक परमाणु निरपेक्ष होकर जलन परिणमन कररहा है ऐसा नहीं है क्योंकि यह वद्ध द्रव्य है। सूक्ष्म दृष्टिसे परमाणुमें परिणमन उसका ही निहित है मगर जो यह व्यञ्जन पर्याय है, अशुद्ध पुद्गल है, उस पर जो बात बीतती है वह अनन्त परमाणुओंकी समवेत पिंड जैसी बीतती है, नहीं तो पुद्गल परमाणु जलनेवाली चीज नहीं है।

शुद्ध जीवकी अबद्धता व प्रकृतका उपसंहार—काल द्रव्य चूंकि अबद्ध द्रव्य है इस कारण काल द्रव्यका पर्याय एक समयनामक है वह अनेक समय तक नहीं चलता इसी प्रकार जैसे सिद्ध भगवान अबद्ध द्रव्य है, सिद्ध है इसलिए सिद्ध भगवानका ज्ञान इतना निर्मल है कि उनका ज्ञानोपयोग एक एक समयमें होता है जब कि छद्मस्थ जीबमें अन्तर्मुहूर्तका उपयोग मानते हैं। अन्तर्मुहूर्त तक ज्ञानोपयोग रहे बिना पदार्थ को जान नहीं सकते हम लोग, किन्तु सिद्ध भगवान एक ही समयके ज्ञानोपयोगसे सारे विश्वको जानता है और प्रत्येक समयमें वैसा ही वैसा जानन उसके बना रहता है। ज्ञानानुभव उस भगवानके प्रत्येक समयमें होता है। समयनामक पर्याय परमाणुकी गतिसे उपचरित हो ऐसा नहीं है और न उसके कारण समय उपचरित होता है। समय एक पर्याय है और काल द्रव्यकी पर्याय है ऐसा समय बतलाकर अब काल द्रव्य क्या है और काल द्रव्यकी पर्याय क्या है ? इसका प्रज्ञापन करते हैं—

वदिवददो तं देसं तस्सम समओ तदो परो पुव्वो।
जो अत्थो सो कालो समओ उप्पण्णपद्धंसी॥ १३६॥

कालाणुसे व्याप्त आकाशके एक प्रदेशको मंदगतिसे गमन करनेवाले पुद्गल परमाणुके गमनक्षणके समान काल द्रव्यकी सूक्ष्म पर्याय समय है। वह समयनामक सूक्ष्म पर्याय तो एक समयमात्रकी स्थितिका है, किन्तु उसका मूल उपादानभूत काल पदार्थ उसके पश्चात् भी है और उसके पूर्व भी है। काल द्रव्य तो अनादि अनंत अहेतुक ध्रुव है और काल पर्याय वर्तमान समयमात्र है, उत्पन्न और प्रध्वस्त है।

परमार्थकाल और व्यवहार काल—इस प्रकरणमें इस प्रकार मानकर गवेषणाके क्षेत्रमें चलें कि प्रदेशमात्र अर्थात् निज एक प्रदेश मात्र क्षेत्र वाला कालनामक परमार्थ सत् है और उसकी वर्तना अर्थात् समयनामक व्यवहार काल परिणमन है यह इस प्रकरणका सार ध्यानमें रख कर अब इसका विवरण सुनें, जिस प्रदेशमात्र काल पदार्थके द्वारा जो आकाशप्रदेश व्याप्त हुआ है उस प्रदेशको परमाणु मन्दगतिसे उल्लंघन करे सो उस अतिक्रमणके परिमाणके बराबर जो कालपदार्थकी सूक्ष्मरूप समय लगा वह समय कालनामक पदार्थकी पर्याय है। इस प्रकारकी समय समय नामक

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

स्वसंवेदनज्ञानरूपसे साक्षात् स्पष्ट जानना चाहिये तथा सर्व रागादिविभावोंको उपयोगसे हटाकर स्वरूपाचरण चरित्रकी वृद्धि करके इस निज परमात्मतत्त्वके ध्यानकी स्थिरता करना चाहिये। इस उपायसे ही हम भावी अनन्तकाल तक निज शुद्ध ज्ञानानन्द परिणमनमें विश्राम पावेंगे। अब आकाशके प्रदेशका लक्षण सूचित किया जा रहा है—

आगासमणुणिविट्ठं आगासपदेस्ससण्णया भणिदं।
सव्वेसिं च अणूणं सक्कदि तं देदुमवकासं ॥१४०॥

एक परमाणुसे घिरा हुआ जो आकाशका अंश है वह आकाशके प्रदेशके नामसे कहा गया है। वह आकाशका एक प्रदेश सब द्रव्योंको और परमाणुवोंको स्थान देनेमें समर्थ है। आकाशका जितना अंश एक अणुसे घिरा हुआ होता है वह आकाशका एक प्रदेश है। एक परमाणु आकाशके दो प्रदेशोंमें स्थित नहीं हो सकता है। क्योंकि परमाणु अविभागी होता है। वह आकाशका एक प्रदेश भी शेष पांच द्रव्योंके प्रदेशोंको और परम सूक्ष्मरूपमें परिणत अनन्त परमाणुवोंके स्कन्धोंको अवगाहन देनेमें समर्थ है। यह आकाश द्रव्य एक है, अविभागी है, असीम है फिर भी इस आकाशके अंशोंकी कल्पना न्याय्य ही है। यदि अंशकल्पना न हो, आकाशके प्रदेश न हो तो सर्व अणुवोंको अपने अविभागी अंशमें अवगाह देनेकी या अपनेमें अवगाह देनेकी बात नहीं बन सकती है। अब इस सम्बन्धमें दूसरी दृष्टि कीजिये कि यदि आकाशके अंश नहीं हैं ऐसी तुम्हारी बुद्धि हो तो दो अंगुलियोंको आकाशमें फैलाकर जरा निरूपण तो कीजिये कि इन दोनोंके रहनेका क्षेत्र एक है कि अनेक है? यदि एक बताओगे तो यह भी बताओ कि अभिन्न अंशमें विभागरहितरूपसे होनेवाले एक आकाश द्रव्यके रूपसे वह क्षेत्र है या भिन्न-भिन्न अंशोंमें अविभाग रूपसे होनेवाले एक आकाश द्रव्यरूपसे वह क्षेत्र है? यदि अभिन्न अंशके अविभागरूप एक द्रव्यरूप क्षेत्रको मानोगे तो जिस अंशके द्वारा एक अंगुलिका क्षेत्र है और उसी अंशसे हो गया वह दूसरी अंगुलिका क्षेत्र, सो अन्य अंशका तो अभाव हो गया फिर तो दो आदि अंशोंका अभाव होनेसे आकाश परमाणुकी तरह एकप्रदेशमात्र हो जायगा। यदि भिन्न भिन्न अंशोंमें अविभागरूपसे होनेवाले एक आकाश द्रव्यरूपसे वह क्षेत्र मानो तो अविभागी एक द्रव्यमें अंशकल्पनाकी बात आगई है। यदि उन दो अंगुलियोंका अनेक क्षेत्र मानोगे तो बतावो कि वह विभागसहित एक एक करके अनेक द्रव्यरूपसे वह क्षेत्र अनेक है या अविभागी एक द्रव्यका वह अनेक क्षेत्र है? प्रथम पक्षमें तो आकाश ही स्वतन्त्र अनन्त हो पड़ेंगे। द्वितीय पक्ष स्वीकार करो तो वही सिद्धान्त आगया कि अविभागी एक द्रव्यमें अंशकी कल्पना की गई है। यही अविभागी प्रदेश कहलाता है।

इति प्रवचनसार प्रवचन षष्ठ भाग समाप्त

दी पॉपूलर प्रेस, मोतीकटरा, आगरा।

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

Download PDF file from http://is.gd/varniji

समय पदार्थकी पर्यायें प्रतिसमय व्यक्त होती रहती हैं। उन समय नामकी पर्यायोंमें अर्थात् पूर्व उत्तर वृत्तियोंमें जो एक स्वरूप है, नित्य है ऐसा अर्थ कालनामक द्रव्य है।

द्रव्यसमय व पर्यायसमय—समयनामक या कालनामक द्रव्य न तो उत्पन्न होता है और न प्रलीन होता है, उसीको द्रव्यसमय कहते हैं। तथा इस द्रव्यसमयकी जो वृत्तियाँ हैं जो कि उत्पन्न होती हैं व प्रलीन होती हैं वे समयनामक परिणतियां हैं, पर्याय-समय हैं। यह पर्यायसमय अनंश है, अंशरहित है। अन्यथा आकाशप्रदेश भी अनंश न रह सकेगा। मंदगतिसे परमाणु जितने समयमें आकाशके एक अंशको उल्लंघन करता उतने समयको एक समय कहते हैं।

तीव्रगतिमान परमाणुके उदाहरणसे भी समयके अंशकी असिद्धि—कोई परमाणु तीव्रगतिसे एक समयमें ही १४ राजू पर्यन्त गमन कर लेता है इससे आकाश प्रदेशकी सिद्धिकी युक्तिमें वाधा नहीं समझना, क्योंकि यह तो विशिष्टगति परिणाम की बात है। जैसे कि परमाणु एकप्रदेशी होता है, यदि कोई अनन्त परमाणुवोंका स्कन्ध एक परमाणुप्रमाण एक प्रदेशमें रह जाय तो यह परमाणुवोंके विशिष्ट अवगाह रूप परिणमनकी बात हुई। इससे कहीं उस स्कन्धमें एक परमाणुका परिमाण लानेके लिये उस प्रदेशके अनन्त अंश नहीं वनाये जा सकते। इसी प्रकार कोई परमाणु लोक में नीचेके अन्तमें स्थित कालाणुसे व्याप्त आकाशप्रदेशसे तीव्रगतिसे चल कर लोकमें ऊपरके अन्तमें स्थित कालाणुसे व्याप्त आकाशप्रदेश पर एक समयमें ही पहुँच जाता है तो इससे उस समयनामक पर्यायके कहीं असंख्यात अंश न कर दिये जाँयगे। वह तो परमाणुका एक विशिष्ट गतिपरिणाम है।

निश्चयकाल और व्यवहारकाल—यहाँ निश्चयकालका भाव निश्चयकाल द्रव्य व निश्चयकालपर्याय इन दोनोंको संकेतित कर सकता है। निश्चयकालद्रव्य तो लोका-काशके एक एक प्रदेशपर अवस्थित कालाणु द्रव्य है। और, उस कालनामक पदार्थ की जो प्रतिसमय समयकी वर्तना है वह निश्चयकाल पर्याय है। फिर उन समय समूहोंके जो नाम व्यवहारमें रखे गये हैं वे सब व्यवहार काल हैं-जैसे आवली, उच्छ्वास प्राण, स्तोक, लव, मुहूर्त, अहोरात्र, पक्ष, मास, ऋतु अयन, वर्ष, पूर्वांग, पूर्व आदि ये सब व्यवहारकाल हैं। इनके अलावा उपमाप्रमाणसे व्यवहारपल्य, उद्धारपल्य, सागर, उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी, कल्पकाल, पुद्गलपरिवर्तन आदि भी व्यवहार काल हैं।

कालविवरणसे उपादेय शिक्षा—भैया, हम आप सबका अबतक इस लोकमें भ्रमते भ्रमते अनन्त परिवर्तन काल व्यतीत हो चुका है, इतने अनन्तकाल संसारसागर में गोते खाते रहनेका, जन्म मरण आदि चक्रमें पीडित होते रहनेका कारण निज परमात्मतत्त्वकी पराङ्मुखता ही है। हमें प्राप्त समागममें रंच मोह न करके सर्व प्रयत्नोंसे इस चैतन्यस्वभावमात्र पावन निज परमात्मतत्त्वकी श्रद्धा करना चाहिये और

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1